चाल तक काँटोंकी तरह खड़े हो गये। कल सुबहकी तरह आज भी प्यारी गुप-चुप कब सरक कर समीप आ बैठी, इसपर मेरा ध्यान ही नहीं गया। एकाएक एक उसासके शब्दसे गर्दन घुमाकर मैंने देखा कि वह ठीक मेरी पीठके पीछे बैठी हुई निर्निमेष दृष्टिसे बोलनेवालेके मुँहकी ओर देख रही है और उसके दोनों चिकने उजले गालोंपर झड़े हुए अश्रुओंकी दो धाराएँ सूखकर फूट उठी हैं। कब और किस लिए वह आँखोंका जल बह निकला था, शायद वह बिल्कुल ही जान नहीं सकी; नहीं तो उन्हें पोंछ डालती। किन्तु, उसी अश्रु-कलुषित तल्लीन मुखका पल-भरका दृष्टिपात ही मेरे हृदयमें एक अग्निकी रेखा अंकित कर गया। बात समाप्त होते ही वह उठकर खड़ी हो गई और कुमार-जीको सलाम करके, अनुमति माँगकर, धीरे धीरे बाहर चली गई।

आज सुबह ही मेरे विदा होनेकी बात थी। परन्तु, शरीर स्वस्थ नहीं था, इसलिए कुमारजीका अनुरोध स्वीकार करके मैं उस समय, जाना स्थगित करके, अपने तम्बूमें वापस लौट आया। इतने दिनोंके बाद आज प्यारीके आचरणमें पहले पहल मैंने दूसरा भाव देखा। इतने दिन उसने परिहास किया है, व्यंग किया है, और कलहका आभास तक भी उसके दोनों नेत्रोंकी दृष्टिमें कुछ दिन घनीभूत हो गया है,—यह सब मैंने अनुभव किया है। परन्तु, इस तरहकी उदासीनता पहले कभी नहीं देखी। फिर भी, व्यथित होनेके बदले मैं खुश ही हुआ। क्यों, सो जानता हूँ। यद्यपि युवती स्त्रियोंके मनकी गति-विधिको लेकर माथापच्ची करना मेरा पेशा नहीं है, और न इसके पहले यह काम मैंने कभी किया ही है, पर मेरे मनके भीतर जो बहुत जन्मोंकी अखण्ड धारावाहिकता छिपी हुई मौजूद है, उसके बहुदर्शनकी अभिज्ञतासे रमणी-हृदयका गूढ तात्पर्य स्पष्ट प्रतिभासित हो उठा। वह उसे अपना अपमान समझकर क्षुब्ध नहीं हुआ वरन् उसे प्रणय अभिमान समझकर पुलकित हो उठा। शायद, इसी छिपी हुई धारावाहिकताके गुप्त इशारेसे मैंने अपनी श्मशान-यात्राके यहाँ तकके इतिहासमें, इस बातका उल्लेख तक नहीं किया कि प्यारीने कल-रातको मुझे श्मशानसे लौटा लानेके लिए आदमी भेजे थे और वह स्वयं भी बात पूरी होते ही उसी तरह गुप-चुप बाहर चली गई थी। इसीलिए है यह अभिमान! कल रातको लौटकर उससे मुलाकात करके मैंने यह नहीं कहा कि वहाँ क्या हुआ था। उसे जिस बातको अकेले बैठकर सुननेका सबसे पहले अधिकार था उसीको आज वह सबसे पीछे बैठकर मानों-

देवात् ही सुन सकी है। परन्तु, अभिमान भी इतना मीठा होता है!—जीवनमें उसके स्वादको उस दिन सबसे पहले उपलब्ध करके मैं बच्चेकी तरह एकान्तमें बैठ गया और लगातार चक्र-चक्कर उसका उपभोग करने लगा।

आज दोपहरको मैं सो जाना चाहता था। बिस्तरपर लेटे लेटे बीच बीचमें तन्द्रा भी आने लगी परन्तु रतनके आनेकी आशा बार बार हिला हिलाकर उसे तोड़ देने लगी। इस तरह समय तो निकल गया परन्तु रतन नहीं आया! वह आयगा अवश्य, यह विश्वास मेरे दिलमें ऐसा दृढ़ हो रहा था कि, जब बिस्तर छोड़ कर बाहर आकर मैंने देखा कि सूर्य पश्चिमकी ओर ढल पड़ा है, तब मुझे मन ही मन यह निश्चय हो गया कि जब मैं तन्द्रामें पड़ा हुआ था तब रतन, मेरे यहाँ आया है और मुझे निद्रित समझकर लौट गया है।—मूर्ख! एक दफे पुकार ही लेना तो क्या हो जाता! दोपहरका निर्जन समय यों ही निरर्थक चला गया, यह सोचकर मैं कुढ़ तो उठा परन्तु संध्याके बाद वह फिर आयगा और एक छोटा-सा अनुरोध,—नहीं तो लिखा हुआ एक पुर्जा,—जो कुछ भी हो, चुप-चुप हाथमें थमा जायगा; इसमें मुझे जरा भी संशय नहीं था, किन्तु यह समय कटे किस तरह? सामनेकी ओर देखनेसे ही कुछ दूर पर विशाल जल-राशि एकदम मेरी आँखोंके ऊपर झक् झक् कर उठी। वह किसी विस्मृत जमींदारका विशाल तालाब था। यह तालाब करीब आध कोस विस्तृत था। उत्तरकी ओरसे वह [illegible] कर [illegible] गया था और घने जंगलसे ढँक गया था। गाँवके बाहर होनेसे शायद गाँवकी स्त्रियाँ इसके जलका उपयोग नहीं कर पाती थीं। बातों ही बातोंमें सुना था कि यह तालाब कितना पुराना है और किसने बनवाया था, इसका पता किसीको नहीं है। एक पुराना टूटा घाट था, उसीके एकान्त कोनेमें जाकर मैं बैठ गया। एक समय इसके चारों ओर बसा हुआ गाँव था जो न जाने कब [illegible] और महामारीके प्रकोपसे उजड़ होकर, फिर अपने वर्तमान स्थानमें, सरक आया है। छोड़े हुए मकानोंके ध्वंसके निशान चारों ओर [illegible] है। इतने [illegible] सूर्यकी तिरछी किरणोंकी कतारने धीरे धीरे [illegible] तालाबके [illegible] पानीमें सोना मथ दिया, मैं एकटक होकर देखता रहा।

इसके बाद धीरे धीरे सूर्य डूब गया। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] काला हो गया। पासके ही जंगलमेंसे दो-एक स्यार निकल [illegible] [illegible] इधर उधर पानी पीकर चले गये। [illegible] बैठे [illegible] [illegible] हो [illegible]

है,— जिस समयको काटनेके लिए मैं वहाँ गया था वह कट गया है, यह सब अनुभव करके भी मैं वहाँसे उठ न सका,—मानो उस टूटे घाटने मुझे जबरन बिठा रखा !

खयाल आया कि जहाँ पैर रखकर मैं बैठा हुआ हूँ वहींपर पैर रखकर न जाने कितने आदमी कितनी दफा आये हैं, गये हैं। इसी घाटपर वे स्नान करते, मुँह धोते, कपड़े छाँटते और जल भरते थे। इस समय वे कहाँके किस जलाशयमें ये समस्त नित्य-कर्म पूर्ण करते होंगे? यह गाँव जब जीवित था तब निश्चयसे वे लोग इस समय यहाँ आकर बैठते थे। कितने ही गान गाकर और कितनी ही बातें करके दिन-भरकी थकावट दूर करते थे। इसके बाद अकस्मात् एक दिन जब महाकाल महामारीका रूप धारण करके सारे गाँवको नोच ले गया तब न जाने कितने मरणोन्मुख व्यक्ति प्यासके मारे यहाँ दौड़े आये हैं और इसी घाटके ऊपर अपना अन्तिम श्वास छोड़कर उसके साथ चले गये हैं। शायद उनकी पिपासातुर आत्मा आज भी यहींपर चक्कर काटती फिरती होगी। यह भी कौन जोर देकर कह सकता है कि जो आँखोंसे नहीं दिखाई देता वह है ही नहीं? आज सुबह ही उस वृद्धने कहा था, "बाबूजी, मनमें यह कभी मत सोचना कि मृत्युके उपरान्त कुछ शेष नहीं रहता,— असहाय प्रेतात्माएँ हमारे ही समान सुख-दुख क्षुधा-तृषा लेकर विचरण नहीं करतीं।" इतना कहकर उसने वीर विक्रमाजीतकी कथा, और न जाने कितनी ही तांत्रिक साधु-सन्यासियोंकी कहानियाँ विस्तारसे कह सुनाई थीं। और कहा था कि, "यह भी मत सोचना कि समय और सुयोग मिलने पर वे दिखाई नहीं देती हैं या बात नहीं कर सकती हैं, अथवा नहीं करती हैं। तुम्हें उस स्थानपर और कभी जानेके लिए मैं नहीं कहता, परन्तु जो लोग यह काम कर सकते हैं उनके समस्त दुःख किसी भी दिन सार्थक नहीं होते, इस बातपर स्वप्नमें भी कभी अविश्वास मत करना।"

उस समय, सुबहके प्रकाशमें, जिन कहानियोंने केवल निरर्थक हँसीका उपादान जुटा दिया था, इस समय वे ही कहानियाँ निर्जन गहरे अंधकारके बीच कुछ दूसरे ही किस्मके चेहरे धारण करके दिखाई दीं। मनमें आने लगा कि जगतमें प्रत्यक्ष सत्य यदि कोई वस्तु है तो वह मृत्यु ही है। भली बुरी सुख-दुखकी ये जीवनव्यापी अवस्थाएँ मानों आतिशबाजी हैं, जो तरह तरहके साज-सरजामके समान केवल किसी एक विशेष दिन जलकर राख हो

जानेके लिए ही इतने यत्न और कौशल्यके साथ बनकर तैयार हुई हैं। तब मृत्युके उस पारका इतिहास यदि किसी तरह सुन लिया जा सके तो उसकी अपेक्षा बड़ा लाभ और क्या है ? फिर उसे कोई भी कहे और कैसे भी कहे।

हठात् किसीके पैरोंके शब्दसे मेरा ध्यान भंग हो गया। पलटकर देखा, केवल अंधकार है, कहीं कोई नहीं है। मै बदन झाडकर उठ खडा हुआ। गत रात्रिकी बात याद करके मन ही मन हँसकर बोला, नहीं, अब और यहाँ नहीं बैठ रहना चाहिए। कल दाहिने कानके ऊपर उसासा छोड गया था, आज आकर यदि बायें कानपर छोडना शुरु कर दे, तो यह कुछ अधिक सहज न होगा।

वहाँ बैठे बैठे कितनी देर हो गई और अब कितनी रात है, यह मैं ठीक तौरसे निश्चित नहीं कर सका। मालूम होता है कि आधी रातके आस पासका समय होगा। परन्तु अरे यह क्या ? चला जा रहा हूँ तो चला ही जा रहा हूँ, उस सकरी पगडंडीका जैसे अन्त ही नहीं होना चाहता! इतने बहुतसे तम्बुओंमेंसे एक दीपकका भी प्रकाश नजर नहीं आता! बहुत देरसे सामने एक बाँसका वृक्ष नजर रोके खडा था; एकाएक ख्याल आया कि इसे तो आते समय देखा नहीं था! दिशा भूलकर, कहीं और किसी ओर तो नहीं चल दिया हूँ ? कुछ और चलनेपर मालूम हुआ कि वह बाँसका वृक्ष नहीं है, किन्तु, कुछ इमलीके पेड, एक दूसरेसे सटे हुए, दिशाओंको ढके जमात बाँधकर खडे हैं और उन्हींके नीचेसे रास्ता टेढा मेढा होकर अदृश्य हो गया है। स्थान इतना अंधकारपूर्ण है कि अपना हाथ भी अपनेको नहीं दिखाई देता। छाती धडधडाने लगी।—अरे मैं जा कहाँ रहा हूँ ? आँख कान बन्द करके किसी तरह उन इमलीके वृक्षोंके पार जाकर देखता हूँ कि सामने अनन्त काला आकाश, जितनी दूर नजर जाती है उतनी दूर तक, विस्तृत हो रहा है। किन्तु सामने वह ऊँची-सी जगह क्या है ? नदीके किनारेका सरकारी बाँध तो नहीं है ? दोनो पैर मानों टूटनेसे लगे, फिर भी उन्हें किसी तरह घसीटकर मै उसके ऊपर चढ गया। जो सोचा था ठीक वही हुआ। उसके ठीक नीचे ही वह महा श्मशान था। फिर किसीके कदमोंका शब्द सामनेसे होकर नीचे श्मशानमें जाकर विलीन हो गया। इस बार मै किसी तरह लडखडाता हुआ चला और उसी धूल-रेतीके ऊपर बेहोशकी तरह धपसे बैठ गया। अब मुझे लेश-भर भी सन्देह नहीं रहा कि कोई मुझे एक महा श्मशानसे लेकर दूसरे महा श्मशानतक

रास्ता दिखाता हुआ पहुँचा गया। जिसके पद-शब्द सुनकर, उस फूटे घाट-पर, शरीर झाड़कर मैं उठ खड़ा हुआ था उसीके पद-शब्द, इतनी देर बाद, उस तरफ़, सामनेकी ओर, विलीन हो गये।

१०

हरेक घटनाका कारण जाननेकी जिद मनुष्यको जिस अवस्थामें होती है उस अवस्थाको मैं पार कर गया हूँ। इसलिए, किस तरह उस सूचीभेद्य अन्धकार-पूर्ण आधी रातको मैं अकेला, रास्तेको पहिचानता हुआ, तालाबके टूटे घाटसे इस महा श्मशानके समीप आ उपस्थित हुआ, और किसके कदमोंकी वह आवाज़, उस स्थानसे बुलाती और इशारा करती हुई, इतनी ही देरमें सामने विलीन हो गई, इन सब प्रश्नोंकी मीमांसा करने-जैसी बुद्धि मुझमें नहीं है। पाठकोंके समीप अपने इस दैन्यको स्वीकार करनेमें मुझे ज़रा भी लज्जा नहीं है। यह रहस्य आज भी मेरे समीप उतने ही अन्ध-कारसे ढँका हुआ है। परन्तु, इसीलिए, प्रेत-योनिको स्वीकार करना भी इस स्वीकारोक्तिका प्रच्छन्न तात्पर्य नहीं है। क्यों कि, अपनी आँखों मैंने देखा है,—हमारे गाँवमें एक पागल था। वह दिनको, घर घर घूमकर, भीख माँग-कर खाता था और रातको बाँसके ऊपर कपड़ा डालकर, और उसे साम-नेकी ओर ऊँचा करके, रास्ते रास्ते बगीचोंके झाड़ोंकी छायामें, घूमता फिरता था। उसके चेहरेको देखकर अँधेरेमें न जाने कितने लोगोंकी दँतौरी बँध बँध गई हैं। इसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं था, फिर भी यह उसका अँधेरी रातका नित्यका काण्ड था। मनुष्यको व्यर्थ ही डर दिखानेके लिए और भी जितने प्रकारके अद्भुत ढंग वह करता था उनकी सीमा नहीं थी। सूखी लक-ड़ियोंके गट्ठेको पेड़की डालसे बाँधकर उसमें आग लगा देता, मुखपर काली स्याही पोतकर विशालाक्षी देवीके मंदिरमें बहुत क्लेश सहते हुए खड़ा रहता और उठा-बैठा करता, गहरी रातके समय घरके पिछवाड़े बैठकर नाकके सुरसे किसानोंके नाम ले-लेकर पुकारा करता,—परन्तु, फिर भी, कोई किसी दिन उसे पकड़ न पाया। दिनके समय उसकी चाल-चलन, स्वभाव-चरित्र आदि देखकर उसपर ज़रा-सा सन्देह करनेकी बात किसीके भी मनमें उदय नहीं हुई। और यह केवल हमारे ही गाँवमें नहीं,—पासके आठ-दस गाँवोंमें भी वह यही करता फिरता था। मरते समय वह अपनी बदमाशी खुद

ही स्वीकार कर गया और उसके मरनेके बाद भूतका उपद्रव भी वहाँ बन्द हो गया। इस क्षेत्रमे भी शायद वैसा ही कुछ था,—शायद नहीं भी हो। परन्तु जाने दो इस बातको।

हाँ, कह रहा था कि, उस धूल और रेतीसे भरे हुए बाँधके ऊपर जब मैं हतबुद्धि-सा होकर बैठ गया तब केवल दो लघु पद-ध्वनियाँ भीतर जाकर धीरे धीरे विलीन हो गईं। खयाल आया, मानो उसने स्पष्ट करके बता दिया हो, —"राम राम, तूने यह क्या किया? मुझे इतनी दूरतक रास्ता बताकर ले आया, सो क्या वहाँ बैठ जानेके लिए? आ, आ, एक दफा हम लोगोंके भीतर चला आ। इस तरह अपवित्र अस्पृश्यके समान प्रागणके एकान्तमें मत बैठ,—हम सबके बीचमें आकर बैठ।" यह बात मैंने कानोंसे सुनी थी या हृदयके भीतर अनुभव की थी, सो अब याद नहीं कर सकता। परन्तु, उस समय भी जो मुझे होश बना रहा, इसका कारण यह है कि चैतन्यको जबर्दस्ती पकड रखनेसे वह यों ही एक-प्रकारसे बचा रहता है। बिल्कुल ही नहीं चला जाता, यह मैंने अच्छी तरह देखा है। इसलिए यद्यपि दोनों आँखोको खोलकर मै देखता रहा, परन्तु वह मानो तन्द्राका देखना था। वह न तो नींद ही थी और न जागरण ही था। उसमे निद्रितका विश्राम भी नहीं रहता और जाग्रतका उद्यम भी नहीं आता।

फिर भी मै इस बातको नहीं भूला कि बहुत रात बीत गई है, मुझे तम्बूमें लौटना है और उसके लिए कमसे कम एक बार चेष्टा तो करनी चाहिए; किन्तु, मनमे लगा कि यह सब व्यर्थ है। यहाँपर मैं अपनी इच्छासे तो आया नहीं हूँ, आनेकी कल्पना भी नही की; इसलिए, जो मुझे इस दुर्गम रास्तेपर रास्ता दिखलाकर लाया है, उसका कुछ विशेष प्रयोजन है। वह मुझे यों ही न लौट जाने देगा। पहले मैंने सुना था कि अपनी इच्छासे इनके हाथोंसे छुटकारा नहीं मिलता। चाहे जिस रास्ते, चाहे जिस तरह, जोर करके क्यों न निकलो, सब रास्ते गोरखधंधेकी तरह घुमा फिराकर पुरानी जगहपर ही लाकर हाजिर कर देते हैं!

इसलिए, चंचल होकर छटपटाना संपूर्ण तौरसे अनावश्यक समझकर, मैं किसी तरहकी हिलने डुलनेकी भी चेष्टा किये विना, जब स्थिर होकर बैठ गया तब जो वस्तु अकस्मात् देख पडी, वह मुझे किसी दिन भी विस्मृत नहीं हुई।

रात्रिका भी स्वतंत्र रूप होता है और उसे, पृथिवीके झाड़-पाले, गिरिपर्वत आदि जितनी भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं उनसे, अलग करके देखा जा सकता है, यह मानों आज पहले मेरी दृष्टिमें आया। मैंने आँख उठाकर देखा कि अन्तहीन काले आकाशके नीचे, सारी पृथिवीपर आसन जमाये, गम्भीर रात्रि आँखें मूँदे ध्यान लगाये बैठी है और सम्पूर्ण चराचर विश्व मुख बन्द किये, साँस रोके, अत्यन्त सावधानीसे स्तब्ध होकर उस अटल शान्तिकी रक्षा कर रहा है। एकाएक आँखोंके ऊपरसे मानों सौन्दर्यकी एक लहर दौड़ गई। मनमें आया कि किस मिथ्यावादीने यह बात फैलाई है कि केवल प्रकाशका ही रूप होता है, अन्धकारका नहीं? भला, इतनी बड़ी झूठ मनुष्यने किस तरह चुपचाप मान ली होगी? यह तो आकाश और मर्त्य, सबको परिव्याप्त करके, दृष्टिसे भीतर-बाहर अन्धकारका पूर बढ़ा आ रहा है। वाह वाह! ऐसा सुन्दर रूपका झरना और कब देखा है! इस ब्रह्माण्डमें जो जितना गम्भीर, जितना अचिन्त्य, जितना सीमाहीन है,—वह उतना ही अन्धकारमय है। अगाध समुद्र स्याही जैसा काला है, अगम्य गहन अरण्यानी भीषण अन्धकारमय है। सर्व लोगोंका आश्रय, प्रकाशका भी प्रकाश, गतिकी भी गति, जीवनका भी जीवन, सम्पूर्ण सौन्दर्यका प्राण-पुरुष भी, मनुष्यकी दृष्टिमें निविड़ अन्धकारमय है। मृत्यु इसीलिए मनुष्यकी दृष्टिमें काली है, और इसीलिए उसका पर-लोक-पंथ इतने दुस्तर अँधेरेमें मग्न है! इसीलिए राधाके दोनों नेत्रोंमें समाकर जिस रूपने प्रेमके पूरमें जगत्को बहा दिया, वह भी घनश्याम है! मैंने कभी ये सब बातें सोची नहीं, किसी दिन भी इस रास्ते चला नहीं; फिर भी न जाने किस तरह इस भयसे भरे हुए महाश्मशानके समीप बैठकर, अपने इस निरुपाय निःसंग अकेलेपनको लाँघकर, आज सारे हृदयमें एक अकारण रूपका आनन्द खेलने फिरने लगा और बिल्कुल एकाएक यह बात मनमें आई कि कालेमें इतना रूप है, सो पहले तो किसी दिन समझा नहीं! तब तो शायद मृत्यु भी काली होनेके कारण कुत्सित नहीं है; एक दिन जब वह मुझे दर्शन देने आवेगी तब शायद उसके इस प्रकारके, कभी समाप्त न होनेवाले, सुन्दर रूपसे मेरी दोनों आँखें जुड़ा जायँगी। और वह अगर दर्शन देनेका दिन आज ही आ गया हो, तो हे मेरे काले! ओ मेरी समीपस्थ पदध्वनि! हे मेरे सर्व-दुःख-भय-व्यथाहारी अनन्त सुन्दर! तुम अपने अनादि अन्धकारसे सर्वांग भरकर मेरी इन दोनों

आँखोंकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष होओ, मैं तुम्हारे इस अन्ध अन्धकारसे घिरे हुए निर्जन मृत्यु-मंदिरके द्वारपर, तुम्हे निर्भयतासे वरण करके बड़े आनन्दसे तुम्हारा अनुकरण करता हूँ। सहसा मेरे मनमें आया,—तब उसके इस निर्वाक् आह्वानकी उपेक्षा करके अत्यन्त ही अन्तेवासीके समान, मैं यहाँ बाहर किस लिए बैठा हूँ ? एक दफा भीतर बीचमें क्यों न जा बैठूँ !

नीचे उतरकर मैं श्मशानके ठीक बीचो बीच बिल्कुल जमकर बैठ गया। कितनी देरतक इस तरह स्थिर बैठा रहा, इसका मुझे उस समय होश नहीं था। होश आनेपर देखा कि उतना अन्धकार अब नहीं रहा है,—आकाशका एक प्रान्त मानों स्वच्छ हो गया है; और, उसके पास ही शुक्र तारा चमक रहा है। कुछ दबी हुई-सी बातचीतका कोलाहल मेरे कानोंमें पहुँचा। अच्छी तरह निरीक्षण करके देखा, कि दूरपर सेमरके वृक्षकी आड़में, बाँधके ऊपरसे होकर कुछ लोग चले आ रहे हैं, और उनकी दो-चार लालटेनोंका प्रकाश भी आस-पास इधर-उधर हिल-डुल रहा है। फिरसे, बाँधके ऊपर चढ़कर, उस प्रकाशमें ही मैंने देखा कि दो बैलगाड़ियोंके आगे-पीछे कुछ लोग इसी ओर बढ़े आ रहे हैं। समझ पड़ा कि कुछ लोग इस रास्ते होकर स्टेशनकी ओर जा रहे हैं।

मुझे उस समय यह सुबुद्धि सूझ आई कि रास्ता छोड़कर मेरा दूर खिसक जाना आवश्यक है। क्योंकि, आगन्तुकोंका दल चाहे कितना भी बुद्धिमान् और साहसी क्यों न हो, एकाएक इस अँधेरी रात्रिमें, इस तरहके स्थानमें मुझे अकेला भूतकी तरह खड़ा देखकर चाहे और कुछ न करे, परन्तु एक विकट चीख-पुकार अवश्य मचा देगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मैं लौटकर अपनी पुरानी जगहपर जा खड़ा हुआ; और थोड़े समय बाद ही दो चटाई लगी हुई बैलगाड़ियाँ, पाँच छह आदमियोंके पहरेमें, मेरे सामने आ पहुँचीं। एक बार खयाल आया कि आगे चलनेवाले दो आदमी मेरी ओर देखकर, क्षण कालके लिए स्थिर हो, खड़े रहे और अत्यधिक धीमे स्वरमें मानो कुछ कह सुनकर आगे चले गये, और थोड़ी-सी ही देरमें वह सारा दल, बाँधके किनारेकी एक झाड़ीकी ओटमें, अदृश्य हो गया। यह अनुभव करके कि रात अब अधिक बाकी नहीं रही है, जब मैं लौटनेकी तैयारी कर रहा था, ठीक उसी समय उन वृक्षोंकी ओटमेंसे आती हुई खूब ऊँचे कण्ठकी पुकार कानोंमें आई, " श्रीकान्त बाबू—"

मैंने उत्तर दिया, " कौन है रे, रतन ? "

"किसीके कितने ही अनुरोधसे आजकी रात वहाँ न काटोगे, बोलो ?"

"नहीं, नहीं, काटूँगा।"

प्यारीने अपनी अँगूठी उतारकर मेरे पैरोंपर रख दी, गल-वस्त्र होकर प्रणाम किया और पैरोंकी धूल अपने सिरपर लेकर उस अँगूठीको मेरी जेबमें डाल दिया। बोली, "तब जाओ—मैं समझती हूँ कि डेढ़ेक कोस जगह तुम्हें अधिक चलना होगा।"

बैलगाड़ीसे उतर पड़ा। उस समय प्रभात हो गया था।

प्यारीने अनुनय करके कहा, "मेरी और भी एक बात तुम्हें रखनी होगी। घर लौटते ही मुझे एक पत्र लिखना होगा।"

मैंने मंजूर करके प्रस्थान किया। एक दफा भी लौटकर पीछेकी ओर नहीं देखा कि वे लोग खड़े हैं अथवा आगे चल दिये हैं। परन्तु बड़ी दूर तक अनुभव करता रहा कि उन दो चक्षुओंकी सजल-करुण दृष्टि मेरी पीठके ऊपर बार बार पछाड़ खा-खाकर गिर रही है।

अड्डेपर पहुँचते प्रायः आठ बज गये। रास्तेके किनारे, प्यारीके उखड़े हुए तम्बूकी, बिखरी हुई परित्यक्त वस्तुओंपर मेरी नजर पड़ते ही एक निष्फल क्षोभ छातीमें मानो हाहाकार कर उठा। मुँह फेरकर जल्दी जल्दी पैर रखते हुए मैंने अपने तम्बूमें प्रवेश किया।

पुरुषोत्तमने पूछा, "आप बड़े भोर ही घूमने बाहर चले गये थे ?"

हाँ-ना किसी तरहका जवाब दिये बगैर ही मैं बिस्तरपर आँखें बंद करके लेट रहा।

११

प्यारीके निकट जो वादा किया था उसकी मैंने पूरी रक्षा की, घर लौटते ही मैंने यह खबर जताकर उसे एक चिट्ठी लिख दी। जवाब भी जल्द ही आ गया। मैं एक बातपर बराबर ध्यान दे रहा था कि किसी भी दिन प्यारीने मुझे अपने पटनेके मकानके लिए, जोर डालना तो दूर रहा, साधारण तौरसे मौखिक निमन्त्रण भी नहीं दिया। इस पत्रमें भी इसका कोई इशारा न था। सिर्फ नीचेकी ओर एक निवेदन था, जिसे कि आज भी मैं नहीं भूला हूँ, "सुखके दिनोंमें नहीं, तो दुखके दिनोंमें मुझे न भूलिए,—यही मेरी प्रार्थना है।"

दिन कटने लगे। प्यारीकी स्मृति धुँधली होकर प्रायः विलीन हो गई। परन्तु एक अचरज-भरी बात बीच-बीचमे मेरी दृष्टिमें पड़ने लगी कि अबकी दफा शिकारसे वापिस लौटनेके बादसे मेरा मन मानो कुछ अनमना-सा रहने लगा है, जैसे मानों एक अभावकी वेदना, दबी हुई सर्दीके समान, शरीरके रोम-रोममें परिव्याप्त हो गई है। बिस्तरोंपर जाते ही वह चुभने लगती है।

याद आता है कि वह होलीकी रात थी। माथेपरसे अबीरका चूर्ण साबुनसे धोकर तबतक साफ नहीं किया था। क्लान्त विवश शरीरसे बिस्तरोंपर पड़ा था। पासकी खिड़की खुली हुई थी, उसीमेंसे सामनेके पीपलके पत्तोंकी फाँकोंमेंसे आकाशव्यापी ज्योत्स्नाकी ओर ताक रहा था। इतना ही याद आ रहा है। परन्तु क्यों दरवाजा खोलकर स्टेशनकी ओर चल दिया और पटनेका टिकिट कटाकर ट्रेनपर चढ गया,—वह याद नहीं आता। रात बीत गई। परन्तु दिनको जैसे ही मैंने सुना कि 'बाढ' स्टेशन है और पटना आनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है, वैसे ही एकाएक वहीं उतर पड़ा। जेबमे हाथ डालकर देखा तो घबड़ानेका कोई कारण नजर नहीं आया,—एक दुअन्नी और दसेक पैसे उस समय भी मौजूद थे। खुश होकर दूकानकी खोजमे स्टेशनसे बाहर हो गया। दूकान मिल गई। चिउड़ा, दही और शक्करके संयोगसे अत्युत्कृष्ट भोजन सम्पन्न करनेमे करीब आधा खर्च हो गया। होने दो, जीवनमे इस तरह कितना ही खर्च हुआ करता है,—इसके लिए रंज करना कायरता है।

गाँव घूमनेके लिए बाहर हुआ। घण्टे-भर भी न घूमा था कि, अनुभव हुआ, इस गाँवका दही और चिउड़ा जिस परिमाणमें उपादेय है उसी परिमाणमें पीनेका पानी निकृष्ट है। मेरे इतने प्रचुर भोजनको इतने से समयमे इस तरह पचाकर उसने नष्ट कर दिया कि, ऐसा मालूम होने लगा कि, मानो दस बीस दिनसे अन्नका दाना भी मुँहमे नहीं पड़ा है! ऐसे खराब स्थानमें वास करना एक मुहूर्त-भरके लिए भी उचित नहीं है, ऐसा सोचकर स्थान त्याग करनेकी कल्पना कर ही रहा था कि,—देखता हूँ पासमें ही एक आमके बगीचेके भीतरसे धुआँ निकल रहा है।

मैंने न्याय-शास्त्र सीखा था। धुएँको देखकर अग्निका निश्चयसे अनुमान कर लिया, इतना ही नहीं, वरन् अग्निके हेतुका अनुमान करते भी मुझे देर नहीं लगी। इसलिए सीधा उसी ओर चल दिया। पहले ही कह चुका हूँ कि

पानी यहाँका बहुत ही खराब है।

वाह, यही तो चाहिए था! सच्चे संन्यासीका आश्रम मिल गया! बड़ी भारी धूनीके ऊपर लोटेमें चायके लिए पानी चढ़ा है। बाबा आधी आँखें मूँदे सामने बैठे हैं, उनके आसपास गाँजेकी सामग्री रक्खी है। एक सन्यासी बच्चा बकरी दुह रहा है, सेवाके लिए 'चाय' चाहिए। दो ऊँट, दो टट्टू और एक बछड़ेवाली गाय, पास पास वृक्षोंकी डालोंसे बँधे हुए हैं। पासहीमें एक छोटा-सा तम्बू है। झुककर देखा, भीतर मेरी ही उम्रका एक चेला दोनों पैरोंके बीच पत्थरका खल दबाये नीमके सोंटेसे भंग तैयार कर रहा है। देखकर मै भक्तिसे सराबोर हो गया और पलक मारते ही बाबाजीके पद-तलमें एक बारगी लोट गया। पद-धूलि मस्तकपर धारण कर हाथ जोड मन ही मन बोला, "कैसी असीम करुणा है भगवान् तुम्हारी! कैसे स्थानमें मुझे ले आये! चूल्हेमें जाय प्यारी,—मुक्ति-मार्गके इस सिंह-द्वारको छोड़कर तिलार्ध भी यदि और कहीं जाऊँ तो, मेरे लिए, अनन्त नरकमें भी और जगह न रहे।"

"साधुजी बोले, "क्यों बेटा?"

मैंने निवेदन किया, "मैं गृहत्यागी, मुक्तिपथान्वेषी हतभाग्य शिशु हूँ; मुझपर दया करके अपनी चरण-सेवाका अधिकार दीजिए।"

साधुजीने मृदु हँसी हँसकर दो दफा सिर हिलाकर संक्षेपमें कहा, "बेटा, घर लौट जा, यह पथ अति दुर्गम है।"

मैंने करुण कण्ठसे उसी क्षण उत्तर दिया, "बाबा, महाभारतमें लिखा है, महापापिष्ठ जगाई और माधाई वसिष्ठ मुनिके चरण पकड़कर स्वर्ग चले गये, तो क्या मैं आपके पैर पकडकर मुक्ति भी नहीं पाऊँगा? निश्चयसे पाऊँगा।"

साधुजी प्रसन्न होकर बोले, "बात तेरा सच्चा हय। अच्छा बेटा, रामजीकी खुसी।" जो दूध दुह रहा था उसने आकर चाय तैयार करके बाबाजीको दी। उनकी 'सेवा' हो गई, हम लोगोंने प्रसाद पाया।

भाँग तैयार हो रही थी सन्ध्याकालके लिए। परन्तु उस समय भी बेला बाकी थी इसलिए और तरहके आनन्दका उद्योग करते हुए 'बाबाने अपने दूसरे चेलेको गाँजेकी चिलम इशारेसे दिखा दी, तथा उसे भरनेमें देर न हो इसके लिए विशेष 'उपदेश' दे दिया।

आध घण्टा बीत गया। सर्वदर्शी बाबाजी मेरे प्रति परम संतुष्ट होकर बोले, "हाँ बेटा, तुममें अनेक गुण हैं। तुम मेरे चेला होनेके अति उपयुक्त पात्र हो।

मैंने, परम आनन्दके साथ, और एक दफा बाबाके चरणोंकी धूलि मस्तक पर धारण कर ली।

दूसरे दिन मैं प्रातःस्नान करके आया। देखा कि गुरुजीके आशीर्वादसे अभाव किसी चीजका नहीं है। प्रधान चेला जो थे उन्होंने, एक नया टुकड़ा गेरुए कपड़ोंका सट्, दस जोड़ी छोटी बड़ी रुद्राक्षकी मालाएँ और एक जोड़ा पीतलके कड़े बाहर निकाल दिये। जहाँ जो वस्तु धारण करनेकी थी उसे उन स्थानपर सजाकर, थोड़ी-सी धूनीकी राख मस्तकपर और मुँहपर मल ली। आँख मीचकर मैंने कहा, "बाबाजी, शीशा-वीसा कुछ है? एक दफा मुँह देखनेकी प्रबल इच्छा हो रही है।" मैंने देखा कि उन्हें भी रसका ज्ञान है। फिर भी उन्होंने कुछ गम्भीर होकर उपेक्षासे कहा, "है एक ठो।"

"तो फिर, छुपाकर ले न आइए एक दफा।"

दो मिनटके बाद आईना लेकर मैं एक वृक्षकी आड़में चला गया। पश्चिमके नाई जिस तरहका आईना हाथमें देकर क्षौर-कर्म सपादित करते हैं, उसी तरहकी वह छोटीसी टीन चढ़ी हुई आरसी थी। खैर जैसी भी हो, मैंने देखा कि वह विशेष तरद्दुद किये जाने और सदा व्यवहारमें आनेके कारण खूब साफ सुथरी थी। चेहरा देखकर हँसे बिना न रहा गया। कौन कह सकता था कि मैं वही श्रीकान्त हूँ जो कुछ ही समय पूर्व राजे-रजवाड़ोंकी मजलिसमें बैठकर बाईजीका गान सुना करता था? खैर, जाने दो।

मैं घण्टे-भरके बाद गुरुमहाराजके समीप दीक्षाके लिए लाया गया। महाराज चेहरा देखकर अतिशय प्रीतिके साथ बोले, "बेटा, एकाध महीना ठहर जाओ।"

मैं धीरे-से 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी पदधूलि ग्रहण करके, हाथ जोड़कर, भक्तिसे भरकर एक तरफ बैठ गया।

आज बातों ही बातोंमें उन्होंने आध्यात्मिकताके अनेक उपदेश दिये। इसकी दुरूहताके विषयमें गंभीर वैराग्य और कठोर साधनाके विषयमें,—आजकलके भण्ड पाखण्डी लोग इसे किस तरह कलंकित करते हैं उसका विशेष विवरण, तथा भगवत्के पाद-पद्मोंमें मतिको स्थिर करनेके लिए क्या क्या करना आवश्यक है,—इस काममें वृक्षजातीय शुष्क वस्तु विशेषके धुएँको बार-बार मुख-विवरके द्वारा शोषण करके नासा-रन्ध्र-पथसे शनैः शनैः विनिर्गत करनेमें कितना आश्चर्यकारी उपकार होता है,—आदि सब उन्होंने

अच्छी तरह समझा दिया, और इस विषयमें मेरी अवस्था अत्यन्त आशाप्रद है, यह इशारेसे बताकर उन्होंने मेरे उत्साहको खूब बढ़ाया! इस तरह उस दिन मोक्ष-पदके अनेक निगूढ़ तात्पर्योंको जानकर मैं, गुरुमहाराजके तीसरे चेलेके रूपमें बहाल हो गया।

गहरे वैराग्य और कठोर साधनाके लिए, महाराजके आदेशसे, हम लोगोंकी सेवाकी व्यवस्था कुछ कठोर किस्मकी थी। परिणाममें वह जैसी थी स्वादमें भी वैसी ही थी। चाय, रोटी, घी, दूध, दही, चिवड़ा, शक्कर इत्यादि कठोर सात्विक भोजन और उन्हें पचानेके अनुपान। भगवत्पादारविंदोंसे हमारा चित्त विक्षिप्त न हो, इस ओर भी हम लोगोंकी लेशमात्र लापरवाही नहीं थी। इसके फलस्वरूप मेरे सूखे काठमें फूल लग गये और कुछ तोंद बढ़नेके लक्षण भी दिखाई देने लगे।

एक काम था,—भिक्षाके लिए बाहर जाना संन्यासीके लिए सर्वप्रधान कार्य न होनेपर भी प्रधान कार्य था! क्यों कि सात्त्विक भोजनके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध था। किन्तु महाराज स्वयं यह नहीं करते थे, उनके सेवक ही पारी पारीसे किया करते थे। संन्यासीके अन्य दूसरे कर्तव्योंमें तो उनके दूसरे दो चेलोंको मैं बहुत जल्द लाँघ गया; परन्तु केवल इस काममें बराबर लँगड़ाता रहा! इसे किसी दिन भी अपने लिए सहज और रुचिकर न बना सका। फिर भी, एक सुभीता यह था कि, वह हिन्दुस्तानियोंका देश था। मैं भले बुरेकी बात नहीं कहता,—मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि, बंगाल देशकी नाईं वहाँकी औरतें 'बाबा हाथ-जोड़ती हूँ, और एक घर आगे जाकर देखो' कहकर उपदेश नहीं देतीं; और पुरुष भी 'नौकरी न करके तुम भिक्षा क्यों माँगते हो?' यह कैफियत तलब नहीं करते। धनी-निर्धन, बिना किसी भेदभावके सब ही, प्रत्येक घरसे, भिक्षा देते हैं,—कोई विमुख नहीं जाता। इसी तरह दिन जाने लगे, पन्द्रह दिन तो उस आमके बागमें ही कट गयें। दिनके समय तो कोई आपत-विपत नहीं थी, केवल रात्रिको मच्छरोंके काटनेकी जलनके मारे मन ही मन लगता था कि, भाड़में जाय मोक्ष-साधना। यदि शरीरके चमड़ेको कुछ और मोटा न किया जायगा, तो अब जान न बचेगी। अन्यान्य विषयोंमें बंगाली लोग चाहे जितने भी श्रेष्ठ क्यों न हों, परन्तु बंगाली चमड़ेकी अपेक्षा हिन्दुस्तानी चमड़ा, इस विषयमें संन्यासके लिए बहुत अधिक अनुकूल है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। उस दिन प्रातः स्नान करके सात्त्विक भोजन प्राप्त करनेके प्रयत्नमें बाहर जा ही रहा

था कि गुरुमहाराजने बुलाकर कहा,

"भारद्वाज मुनि बसहि प्रयागा ! जिनहि रामपद अति अनुरागा ॥"

अर्थात् "स्ट्राइक दि टेण्ट" (तम्बू उखाड़ लो),—प्रयागकी यात्रा करनी होगी। परन्तु, यह कार्य कुछ सहज नहीं था, संन्यासीकी यात्रा जो ठहरी! मधे हुए टट्टुओंको खोजते और उनपर सामान लादते, ऊँटपर महाराजकी जीन कसते, गाय-बकरियोंको साथ लेते, गट्ठे गठरियाँ बाँधते, सिलसिलेसे लगाते लगाते, एक पहर बीत गया। इसके बाद खाना खाकर दो कोस दूर संध्याके पहले ही बिठौरा गाँवके गेवडे एक विराट वटवृक्षके नीचे डेरा जमाया गया। जगह बहुत ही सुन्दर थी, गुरुमहाराजको खूब पसन्द आई। यह तो हुआ, परन्तु भरद्वाज मुनिके उस स्थान तक पहुँचते पहुँचते कितने महीने लग जायँगे, इसका मैं अनुमान नहीं कर सका।

इस बिठौरा गाँवका नाम अभीतक मुझे क्यों याद रहा है सो यहाँ कहता हूँ। उस दिन पूर्णिमा तिथि थी; इसलिए, गुरुके आदेशसे हम तीनों जने तीन दिशाओंमें भिक्षाके लिए बाहर निकल पड़े थे। अकेला होता तो उदर-पूर्तिके लिए कम कोशिश न करता। परन्तु, आज मेरी वह चाल नहीं थी, इसलिए बहुत कुछ निरर्थक यहाँ वहाँ घूम रहा था। एकाएक एक मकानके खुले दरवाजेके भीतरसे मुझे एक बंगाली लड़कीका चेहरा दिखाई पड़ गया। उसके कपड़े यद्यपि देशी करघेपर बुने हुए टाटकी तरह मोटे थे, किन्तु उन्हें पहिननेके विशेष ढंगने ही मेरे कुतूहलको उत्तेजित कर दिया। मैंने सोचा, पाँच-छः दिनसे इस गाँवमें हूँ, करीब करीब सब घरोंमें हो आया हूँ, परन्तु बंगाली स्त्री तो दूरकी बात, बंगाली पुरुषका चेहरा तक भी नजर नहीं आया। साधु-संन्यासियोंके लिए कहीं रोक-टोक नहीं। भीतर प्रवेश करते ही वह स्त्री मेरी ओर देखने लगी। उसका मुँह मैं आज भी याद कर सकता हूँ। इसका कारण यह है कि दस-ग्यारह वर्षकी लड़कीकी आँखोंमें इतनी करुण, इतनी मलिन-उदास दृष्टि और कहीं कभी देखी है, ऐसा मुझे याद नहीं आता। उसके मुँहसे, उसके होठोंसे, उसकी आँखोंसे,—उसके सर्वांगसे मानों दुःख और निराशा फूटी पड़ती थी। मैंने एकबारगी बँगलामें कहा, "कुछ भिक्षा देना, मा।" पहले तो वह कुछ न बोली। इसके बाद उसके होंठ एक दो बार काँपकर फूल उठे और वह झर-झरकर रो उठी।

मैं मन ही मन कुछ लजाकर रह गया। क्योंकि, सामने कोई न था तो भी, पासके घरमेंसे बिहारी औरतोंकी बातचीत सुनाई पड़ रही थी। उनमेंसे यदि कोई एकाएक बाहर आकर इस अवस्थामें हम दोनोंको देख ले, तो वह क्या सोचेगी, क्या कहेगी यह कुछ भी मैं न सोच सका।— खड़ा रहूँ, या प्रस्थान कर जाऊँ, यह निश्चय कर सकनेके पूर्व ही उस लड़कीने रोते रोते एक साँसमे ही हजार प्रश्न पूछ डाले, " तुम कहाँसे आ रहे हो ? कहाँ रहते हो ? तुम्हारा घर क्या वर्द्धमान जिलेमें है ? तुम वहाँ कब जाओगे ? तुम्हें क्या राजापुर मालूम है ? वहाँके गौरी तिवारीको चीन्हते हो ? "

मैं बोला, " तुम्हारा घर क्या वर्द्धमान जिलेके राजापुरमें है ? "

उस लड़कीने हाथोंसे आँखोंका जल पोंछते हुए कहा, " हाँ, मेरे पिताका नाम गौरी तिवारी है और भाईका नाम रामलाल तिवारी है। उन्हें क्या तुम चीन्हते हो ? तीन महीने हुए मैं ससुराल आई हूं, अभीतक एक भी चिट्ठी मुझे नहीं मिली,—पिता, भाई मा गिरिबाला और बाबू कैसे हैं, कुछ भी नहीं जानती। वह जो पीपलका वृक्ष है,—उसके नीचे मेरी बहिनकी ससुरालका मकान है। उस सोमवारको जीजी गलेमें फाँसी लगाकर मर गई,— पर वे लोग कहते हैं कि—नहीं, वे हैजेसे मरी हैं। "

मैं विस्मयके मारे हतबुद्धि-सा हो गया। यह क्या बात है ? ये लोग, देखता हूँ कि, पूरे हिन्दुस्तानी हैं; परन्तु, लड़की एकबारगी शुद्ध बंगालिन है। इतनी दूर, इन घरोंमें, इन लड़कियोंकी ससुरालें क्यों कर हुई, और इनके पति, सास-ससुर आदि यहाँ क्या करने आये !

मैंने पूछा, " तुम्हारी बहिनने गलेमें फाँसी क्यों लगाई ?

वह बोली, " जीजी राजापुर जानेके लिए रात-दिन रोती थीं, खाती नहीं थीं, सोती नहीं थीं। इसी लिए उनके बाल धन्नीसे बाँधकर उन्हें सारे दिन और सारी रात खड़ा कर रक्खा था। इसीलिए गलेमें रस्सी डालकर मर गई।"

मैंने पूछा, " तुम्हारे भी सास-ससुर क्या हिन्दुस्तानी हैं ? "

उस लड़कीने फिर एक बार रोकर कहा, " हाँ। मैं उन लोगोंकी बातचीत कुछ भी नहीं समझ पाती, उन लोगोंका खाना मैं मुँहमें नहीं डाल सकती —मै तो दिन-रात रोया करती हूँ। परन्तु, पिता न तो हमें चिट्ठी ही लिखते हैं और न लिवा ही ले जाते हैं। "

मैंने पूछा, " अच्छा, तुम्हारे पिताने तुम्हें इतनी दूर व्याहा ही क्यों ? "

लड़की बोली, "हम लोग तिवारी जो हैं। हमारी जातिके ब्याह-योग्य लड़के उस देशमें तो मिलते नहीं।"

"तुम्हें क्या वे मारते-पीटते भी हैं?"

"और नहीं तो क्या? यह देखो न!" इतना कहकर उस लड़कीने भुजाओंमें, पीठके ऊपर, मारके निशान दिखाये और फफक फफक कर रोते हुए कहा, "मैं जीजीकी तरह गलेमें फाँसी लगाकर मर जाऊँगी।"

उसका रोना देखकर मेरे भी नेत्र सजल हो उठे और प्रश्नोत्तर या भीखकी अपेक्षा किये बगैर ही मैं बाहर हो गया। किन्तु, वह लड़की मेरे पीछे पीछे चली आई और कहने लगी, "मेरे पिताके पास जाकर तुम कहोगे न? वे मुझे यहाँसे एक दफा ले जायँ, नहीं तो मैं—" किसी तरह थोड़ा-सा सिर हिलाकर स्वीकार करके तेज चालसे अदृश्य हो गया। उस लड़कीका हृदयभेदी आवेदन मेरे दोनों कानोंमें गूँजने लगा।

रास्तेके मोड़के ऊपर ही एक बनियेकी दूकान थी। प्रवेश करते ही दूकानदारने आदरके साथ मेरी अभ्यर्थना की। खाद्य द्रव्यकी भीख न माँगकर जब मैं एक चिट्ठी लिखनेका कागज और कलम दावात माँग बैठा, तब उसने आश्चर्य तो किया, परन्तु इन्कार नहीं किया। उसी जगह बैठकर मैंने गौरी तिवारीके नामपर एक पत्र लिखकर डाल दिया। समस्त विवरण विवृत करनेके बाद अन्तमें यह बात लिखना भी मैं नहीं भूला कि लड़कीकी बहिन हालमें ही फाँसी लगाकर मर गई है और वह खुद भी, मार-पीट अत्याचार सहन न कर सकनेके कारण उसी पथपर जानेका संकल्प कर चुकी है। तुम खुद आकर कुछ उपाय न करोगे तो क्या हो जायगा, सो कहा नहीं जा सकता। बहुत संभव है कि तुम्हारी चिट्ठी-पत्री ये लोग तुम्हारी लड़कीको न देते हों। उसपर ठिकाना लिखा, 'वर्द्धमान जिलेमें राजापुर ग्राम।' मालूम नहीं कि वह पत्र गौरी तिवारीको पहुँचा या नहीं, और पहुँचा भी, तो उसने कुछ किया या नहीं। परन्तु वह घटना मेरे मनपर इस तरह मुद्रित हो गई है कि, इतने समय बाद भी, पूरी तरह याद बनी हुई है, तथा, इस आदर्श हिन्दू समाजके सूक्ष्मातिसूक्ष्म जाति-भेदके विरुद्ध एक विद्रोहका भाव आज भी मेरे मनसे नहीं जाता।

संभव है, यह जाति-भेदका सिद्धान्त बहुत ही अच्छा हो, जब कि इसी उपायसे सनातन हिन्दू जाति आजतक बची हुई है, तब इसकी प्रचण्ड

उपकारिनाके सम्बन्धमें संशय करनेके लिए या प्रश्न करनेके लिए और कुछ शेष नहीं रहता। कहीं कोई दो बदनसीब लड़कियाँ दुःख न सह सकनेके कारण गलेमें फाँसी लगाकर मर जायँगी, इस डरसे इसका कठोर बन्धन बिन्दुमात्र शिथिल करनेकी कल्पना करना भी पागलपन है। किन्तु उस लड़कीका रोना जो मनुष्य अपनी आँखों देख आया है उसके लिए यह साध्य नहीं हो सकता कि, वह इस प्रश्नको अपने पासमें आनेसे रोक सके कि किसी तरह टिके रहना,—अपना अस्तित्व मात्र बनाये रखना ही क्या जीवन-की चरम सार्थकता है? इस तरहकी तो बहुत-सी जातियाँ अपना अस्तित्व बनाये हुए मौजूद हैं। कोरकू हैं, कोल भील-संथाल हैं, प्रशान्त महासागरके अनेक छोटे-मोटे द्वीपोंकी अनेक छोटी-मोटी जातियोंकी मनुष्य सृष्टि शुरूसे अभीतक वैसी ही बनी हुई हैं। आफ्रिकामें हैं, अमेरिकामें हैं;—उन जातियोंमें भी इस तरहके सब कठोर सामाजिक आईन-कानून मौजूद हैं जिन्हें सुनकर शरीरका रक्त पानी हो जाता है। उम्रके लिहाजसे वे जातियाँ यूरोपकी अनेक जातियोंके अति वृद्ध पितामहोंकी अपेक्षा भी प्राचीन हैं, और हमसे भी अधिक पुरातन हैं। किन्तु इसलिए ये जातियाँ हमारी अपेक्षा सामाजिक आचार-व्यवहारमें श्रेष्ठ हैं, ऐसा अद्भुत संशय, मैं समझता हूँ, किसीके मनमें न उठता होगा। सामाजिक समस्याएँ झुंड बाँधकर सामने नहीं आतीं। यों ही एकाध क्वचित् कदाचित् ही आविर्भूत होती है। अपनी दोनों बंगाली लड़कियोंको हिन्दुस्थानियोंके घर ब्याहते समय गौरी तिवारीके मनमें शायद इस तरहका प्रश्न आया था। किन्तु, वह बेचारा इस दुरूह प्रश्नसे छुटकारा पानेका कोई रास्ता न खोज सकनेके कारण ही अन्तमें, सामाजिक यूपकाठके ऊपर दोनों कन्याओंका बलिदान देनेके लिए बाध्य हुआ था। जो समाज इन दोनों निरुपाय क्षुद्र बालिकाओंके लिए भी स्थान न दे सका, जो समाज अपनेको इतना-सा भी उदार बनानेकी शक्ति नहीं रखता, उस लँगड़े निर्जीव समाजके लिए अपने मनमें मैं किंचित्-मात्र भी गौरवका अनुभव नहीं कर सका। कहीं किसी एक बड़े भारी लेखकके लेखमें पढ़ा था कि हमारे समाजने जिस एक बड़े सामाजिक प्रश्नका उत्तर जगत्के सामने 'जाति-भेद' के रूपमें उपस्थित किया है, उसका अन्तिम फैसला आज तक भी नहीं हुआ है।—ऐसा ही कुछ उसमें कहा गया था। किन्तु उस समस्त युक्तिहीन उच्छ्वासका उत्तर देनेकी भी मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। 'हुआ नहीं

है' और 'होगा नहीं' ऐसा प्रबल कण्ठसे घोषित करके जो लोग अपने ही प्रश्नके उत्तरको खुद ही दबा देते हैं उनको जवाब देनेकी भी प्रवृत्ति नहीं होती। खैर, जाने दो।

दुकानसे उठकर और ढूँढ-खोजकर डाक-बक्समें उस बेरंग पत्रको डाल कर जब मैं अपने डेरेपर आ पहुँचा, तब मेरे अन्यान्य सहयोगी आटा, दाल आदि संग्रह करके लौटे न थे।

मैंने देखा कि 'साधु-बाबा' आज मानों कुछ खीझे हुए हैं। कारण भी उन्होंने स्वयं प्रकट कर दिया; बोले, "यह गाँव साधु-संन्यासियोंके प्रति उतना अनुरक्त नहीं है, सेवादिकी व्यवस्था भी वैसी सन्तोषजनक नहीं करता; इस लिए कल ही इस स्थानका त्याग कर देना होगा!" 'जो आज्ञा' कहकर मैंने उसी क्षण उसका अनुमोदन कर दिया। मनके भीतर पटना देखनेका जो प्रबल कुतूहल छिपा था, अपने पास आज मैं उसे और अधिक दबाकर न रख सका।

सिवाय इसके, बिहारके गाँवमें किसी तरहका आकर्षण भी ढूँढे नहीं मिलता था। इसके पहले मैं बंगालके अनेक गाँवोंमें विचरण कर चुका हूँ, किन्तु, उनके साथ इनकी कोई तुलना ही नहीं हो सकती। नर-नारी, पेड़-पौधे, जल-वायु,—कोई भी चीज अपनी सी नहीं मालूम होती थी। सारा मन सुबहसे लेकर रात्रिपर्यंत केवल 'भागूँ भागूँ' किया करता था।

सन्ध्याके समय मुहल्लेसे उस तरह झाँझ-करतालके साथ कीर्तनका सुर कानोंमें नहीं आता। देव-मन्दिरोंमें आरतीके काँसेके घण्टे आदि भी उस तरहका गम्भीर मधुर शब्द नहीं करते। इस देशकी स्त्रियाँ शंखोंको भी वैसी मीठी तरहसे बजाना नहीं जानतीं, तब यहाँ मनुष्य किस सुखके लिए रहते हैं? और मन ही मन ऐसा लगने लगा कि यदि इन सब गाँवोंमें मैं न आ पड़ा होता तो अपने गाँवोंका मूल्य किसी दिन भी इस तरह न जान पाता। हमारे यहाँके पानीमें काई भरी रहती है, हवामें मलेरिया है, प्रायः सभी मनुष्योंके पेटमें पिलही बढ़ी हुई है, घर-घर मुकदमे-मामले हुआ करते हैं, महल्ले महल्लेमें दलबन्दियाँ हैं; सो सब रहने दो, परन्तु फिर भी उसके बीच भी कितना रस, कितनी तृप्ति थी।—इस समय मानों, उसके विषयमें कुछ न जानते हुए भी मैं सब कुछ जानने लगा।

दूसरे दिन तम्बू उखाड़कर यात्रा शुरू कर दी गई; और साधु बाबा यथा-

शक्ति भरद्वाज मुनिके आश्रमकी ओर दलबल-सहित अग्रसर होने लगे। किन्तु चाहे रास्ता सीधा पड़ेगा इस खयालसे हो, अथवा मुनिने मेरे मनकी बात जान ली,—इस कारणसे हो, पटनाके दस कोसके भीतर उन्होंने और फिर कहीं तम्बू नहीं गाड़ा। मनमें एक वासना थी।—खैर उसे इस समय रहने दो। पाप-ताप मैंने बहुतसे किये हैं; साधु-संग भी कुछ दिन करके पवित्र हो लूँ।

एक दिन सन्ध्याके कुछ पहले जिस जगह हमारा डेरा पड़ा, उसका नाम था छोटी बगिया। आरा स्टेशनसे यह स्थान आठ कोस दूर है। इस गाँवके एक प्रसिद्ध बंगाली सज्जनसे मेरा परिचय हो गया था। उनकी सदाशयताका यहाँ कुछ वर्णन करूँगा। उनके पैतृक नामको गुप्त रखकर 'राम बाबू' कहना ही अच्छा है, क्योंकि अबतक वे जीवित हैं। और बादमें, अन्यत्र यद्यपि उनसे मेरा साक्षात्कार हुआ था, फिर भी वे मुझे पहिचान नहीं सके थे। इसमें कुछ अचरज भी नहीं है। परन्तु उनका स्वभाव मैं जानता हूँ। गुप्त रूपसे उन्होंने जो सत्कार्य किये हैं उनका प्रकाश्य रूपमें उल्लेख किये जानपर वे विनयसे संकुचित हो उठेंगे, यह मैं अच्छी तरसे जानता हूँ। इस लिए उनका नाम है 'राम बाबू'। किस तरह राम बाबू उस गाँवमें आये थे और किस तरह उन्होंने जमा-जमीन संग्रह करके खेती-बारी की थी, सो मुझे नहीं मालूम। इतना ही मैं जानता हूँ कि उन्होंने दूसरी दफा विवाह किया था और तीन-चार पुत्र-कन्याओंके साथ वे वहाँ सुखसे वास करते थे।

सुबहके समय सुना गया कि इन्हीं छोटी बगिया और बड़ी बगिया नामक गाँवोंमें उस समय शीतलाने महामारीके रूपमें दर्शन दिये हैं। देखा गया है कि गाँवके दुःसमयमें ही साधु संन्यासियोंकी सेवा विशेष सन्तोषजनक होती है। इसीलिए साधु बाबाने अविचलीत चित्तसे वहाँपर अवस्थान करनेका संकल्प कर लिया।

अच्छी बात है। संन्यासी जीवनके सम्बन्धमें यहाँपरमें एक बात कह देना चाहता हूँ। जीवनमें इनमेंसे मैंने अनेकोंको देखा है। चारेक दफा मैं, उनके साथ ऐसे ही घनिष्ठ भावसे घुल मिलकर भी रहा हूँ। दोष जो उनमें हैं सो हैं ही, मैं तो गुणोंकी बात ही कहूँगा। 'केवल पेटके लिए साधुजी' तो आपमेंसे अनेक जानते होंगे, परन्तु इन लोगोंमें भी ये दो दोष मेरी नजर नहीं आये, और मेरी नजर भी कुछ बहुत स्थूल नहीं है। स्त्रियोंके सम्बन्धमें इन लोगोंका संयम कहो या उत्साहकी स्वल्पता कहो,—खूब अधिक

है, और प्राणोंका भय भी इन लोगोंमें बिल्कुल ही कम होता है। 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्' तो है, परन्तु क्या करनेसे 'बहुदिनं जीवेत्' यह ख्याल नहीं होता। हमारे साधु बाबा भी ऐसे ही थे! पहली वस्तुके याने 'सुख'के लिए दूसरी अर्थात् 'जीवेत्'को उन्होंने तुच्छ कर दिया था!

थोड़ी-सी धूनीकी राख और दो बूँद कमण्डलुके जलके बदलेमें जो सब वस्तुएँ दनादन डेरेमें आने लगीं वह, क्या तो सन्यासी और क्या गृहस्थ, किसीके लिए भी विरक्तिका कारण नहीं हो सकती!

राम बाबू स्त्रीसहित रोते हुए आये। चार रोजके बुखारके बाद आज सुबह बड़े लड़केको शीतला दिखाई पड़ी है और छोटा बच्चा कल रातसे ज्वरमें बेहोश पड़ा है। यह जानकर कि वे बंगाली हैं मैंने स्वयं उनके निकट जाकर उनसे परिचय किया।

इसके बाद कथाके सिलसिलेमें मैं महीने-भरका विच्छेद कर देना चाहता हूँ। क्योंकि किस तरह यह परिचय घनिष्ठ होता गया, किस तरह दोनों बच्चे चंगे हुए,—इसकी बहुत लम्बी कथा है। कहते कहते मेरा भी धीरज छूट जायगा, फिर पाठकोंकी बात तो दूर रही। फिर भी, बीचकी एक बात कहे देता हूँ। करीब पन्द्रह दिन बाद, जब कि रोगका प्रकोप बहुत बढ़ा चढ़ा था, साधुजीने अपना डेरा उठानेका प्रस्ताव किया। राम बाबूकी स्त्री रोकर बोल उठी, "सन्यासी भइया, तुम तो सचमुचके सन्यासी नहीं हो,—तुम्हारे शरीरमें तो दया-माया है। नवीन और जीवनको यदि तुम छोड़कर चले जाओगे, तो वे कभी नहीं बचेंगे। कहाँ, जाओ देखूँ, कैसे जाते हो?' इतना कहकर उसने मेरे पैर पकड़ लिये। मेरी आँखोंमें भी आँसू निकल पड़े। राम बाबू भी स्त्रीकी प्रार्थनामें योग देकर अनुनय-विनय करने लगे। इसलिए मैं नहीं जा सका। साधु बाबासे मैं बोला, "प्रभो, आप अग्रसर हूजिए, मैं रास्तेके बीचमें, नहीं तो प्रयागमें पहुँचकर, आपकी पदधूलि अवश्य ही माथे चढ़ा सकूँगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।" प्रभु कुछ क्षुण्ण हुए। अन्तमें बार बार अनुरोध करके अकारण कहीं विलम्ब न लगा देना, इस सम्बन्धमें बार बार सावधान करके, वे सदल बल यात्रा कर गये। मैं राम बाबूके घरमें ही रह गया। इन थोड़ेसे दिनोंके बीचमें ही मैं इस तरह प्रभुका सबमें अधिक स्नेह-पात्र हो गया था कि, यदि और टिका रहता तो उनकी सन्यास-लीलाके अवसानपर, उत्तराधिकार-सूत्रसे मैं उस टट्टू और दोनों

झोंटोंपर दखल प्राप्त कर सकता, इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया था खैर जाने दो,—हाथकी लक्ष्मी पैरसे ठेलकर, गई बातको लेकर, परिताप करनेमें अब कोई लाभ नहीं है।

दोनों लड़के चंगे हो गये। मारी इस दफे सचमुच ही महामारीके रूपमें दिखाई दी। वह कैसा व्यापार था जिसने अपनी आँखों नहीं देखा वह किसी का लिखा हुआ पढ़कर, कहानी सुनाकर या कल्पना करके हृदयगम कर सके यह असंभव है। अतएव इस असंभव कार्यको संभव करनेका प्रयास मैं नहीं करूँगा। लोगोंने भागना शुरू किया; इसमें और कोई विवेक-विचार नहीं रहा! जिस घरमें मनुष्यका चिह्न दिखाई देता था उसमे झाँककर देखनेसे नजर आता था कि केवल माँ अपनी पीड़ित सन्तानको आगे लिए बैठी है।

राम बाबूने भी अपनी घरू बैलगाड़ीमें माल असबाब लाद दिया। वे तो कई दिन पहले ही ऐसा करना चाहते थे, किन्तु, बाध्य होकर ही न कर सके। पाँच-छः दिन पहलेसे ही मेरी सारी देह एक ऐसे बुरे आलस्यसे भर गई थी कि कुछ भी भला नहीं लगता था। मालूम होता था कि रात्रि-जागरण और परिश्रमके कारण ही ऐसा हो रहा है। उस दिन सुबहसे ही सिर दुखने लगा। बिल्कुल अरुचि होते हुए भी दोप्रहरके समय जो कुछ खाया शामके वक्त उसे कै कर दिया। रातके ९-१० बजे मालूम हुआ कि बुखार चढ़ आया है। उस दिन सारी रात, उन लोगोंका उद्योग आयोजन चल रहा था, सभी जाग रहे थे। बहुत रात बीते राम बाबूकी स्त्री बाहरसे मेरे कमरेके भीतर झाँककर बोलीं, "संन्यासी भइया, तुम क्या हमारे साथ ही आरातक नहीं चलोगे?"

मैं बोला, "जरूर चलूँगा। किन्तु तुम्हारी गाड़ीमें मुझे थोड़ी-सी जगह देनी होगी।"

बहिनने उत्सुक होकर प्रश्न किया, "सो कैसे संन्यासी भइया? गाड़ियाँ तो दोसे अधिक नहीं मिल सकीं। उनमें तो हम लोगोंभरके लिए भी जगह नहीं है।"

मैंने कहा, "मुझमें तो चलनेकी ताकत नहीं है बहिन, सुबहसे ही खूब बुखार चढा है।"

"बुखार! कहते क्या हो?" इतना कहकर उत्तरकी भी अपेक्षा न करके मेरी नूतन बहिन अपना मुँह श्याम करके चली गई।

कितनी देरतक मैं सोता रहा, सो नहीं कह सकता। जागकर देखा तो

दिन चढ आया है। मकानके भीतरके सभी कमरोंमें ताला लगा हुआ है, मनुष्य प्राणीका नाम भी नहीं है।

बाहरके जिस कमरेमें मैं था उसके सामनेसे ही इस गाँवका कच्चा रास्ता आरा स्टेशन तक गया है। इस रास्तेपरसे प्रतिदिन कमसे कम ५-६ बैलगाडियाँ, मृत्यु-भीत नर-नारियोंका माल-असबाब लादकर, स्टेशन जाया करती थीं। दिन-भर अनेक प्रयत्न करनेके बादमें शामको इनमेंसे एकमें स्थान पाकर जा बैठा। जिन वृद्ध बिहारी सज्जनने दया करके मुझे अपने साथ ले लिया था उन्होंने बडे तडके ही मुझे स्टेशनके पास एक वृक्षके नीचे उतार दिया। उस समय बैठनेकी भी मुझमें सामर्थ्य नहीं था। वहीं मैं लेट गया। पासमें ही एक टीनका परित्यक्त शेड था। पहले वह मुसाफिरखानेके काममें आता था; किन्तु, वर्तमान समयमें झड-बादलके दिन गाय-बछडोंके उपयोगमें आनेके सिवाय, और किसी काममें नहीं आता था। ये वृद्ध सज्जन स्टेशनसे एक बंगाली युवकको बुला लाये। मैं उसीकी दयासे, कई एक कुलियोंकी सहायतासे, उस शेडके नीचे लाया गया।

मेरा बडा दुर्भाग्य है कि मैं उस युवकका कोई परिचय नहीं दे सकता, क्योंकि, मैं उस समय उसकी कुछ भी पूछताछ नहीं कर सका था। पाँच छः महीने बाद, पूछनेका जब सुयोग और शक्ति मिली तब, मालूम हुआ कि शीतलाके रोगसे पीडित होकर इस बीचमें ही वह इस लोकसे कूच कर गया है। उसके सम्बन्धमें पूछनेपर इतना ही मालूम हो सका कि वह पूर्वीय बंगालका था और पन्द्रह रुपये महीने वेतनपर स्टेशनमें नौकरी करता था। कुछ देर ठहरकर अपना सैकड़ों जगहसे फटा हुआ बिछौना लाकर उसने हाजिर किया और वह बार बार कहने लगा कि मैं अपने हाथसे पकाकर खाता हूँ और दूसरेके घर रहता हूँ। दोपहरके समय एक कटोरा गरम दूध लाकर उसने जबरन् पिलाकर कहा, “डरनेकी बात नहीं है, आप अच्छे हो जायेंगे। परन्तु आत्मीय बन्धु बान्धव आदि किसीको भी यदि खबर देनी हो तो, ठिकाना बतानेपर, मैं तार दे सकता हूँ।”

उस समय मैं खूब होशमें था। इसलिए यह भी अच्छी तरह समझता था कि ऐसी अवस्था बहुत देर तक नहीं रहेगी। इस तरहका ज्वर यदि और भी ५-६ घण्टे स्थायी बना रहा तो होश अवश्य गँवाना पड़ेगा। अतएव, जो कुछ करना है, वह इतने समयके भीतर न करनेपर, फिर नहीं किया जायगा।

सो तो ठीक, परन्तु खबर देनेके प्रस्तावपर मैं सोच विचारमें पड़ गया। क्यों, सो खोलकर बतानेकी जरूरत नहीं। परन्तु सोचा, गरीबका पैसा टेलिग्राममें अपव्यय करनेसे लाभ ही क्या है ?

शामके बाद वह भद्र पुरुष अपनी ड्यूटीसे अवकाश लेकर एक घड़ा पानी और एक किरासिनकी डिब्बी लेकर उपस्थित हुआ, उस समय ज्वरकी यंत्रणासे मस्तक क्रमशः बिगड़ रहा था। उसे पासमें बुलाकर मैंने कहा, "जब तक मुझे होश है तबतक बीच बीचमें आकर देख जाना; इसके बाद जो होना हो सो हो, आप और कोई कष्ट न करना।"

वह अत्यन्त मुँह-चोर प्रकृतिका भद्र पुरुष था। बात बनाकर कहनेकी उसमें क्षमता नहीं थी। जवाबमें केवल 'नहीं' कहकर ही वह चुप हो रहा। मैंने कहा, "आपने चाहा था कि किसीको खबर करा दूँ। मैं संन्यासी आदमी हूँ, वास्तवमें मेरा कोई भी नहीं। फिर भी पटनेमें प्यारी बाईके ठिकाने पर यदि एक पोस्ट कार्ड लिख दोगे कि श्रीकान्त आरा स्टेशनके बाहर एक टीन-शेडके नीचे मरणापन्न होकर पड़ा है तो—"

वह युवक अत्यन्त व्यस्त होकर बोल उठा, "मैं अभी दिये देता हूँ। चिट्ठी और टेलिग्राम दोनों ही भेजे देता हूँ," इतना कहकर वह उठकर चला गया। मैंने मन ही मन कहा, 'भगवान्, वह खबर पा जाय!'

* * * *

होश आनेपर पहले तो मैं अपनी अवस्था अच्छी तरह समझ भी न सका। मस्तकपर हाथ ले जाकर अनुभव किया कि यह तो आइस-बेग है। आँखें मिलमिलाकर देखा कि मकानके भीतर एक खाटपर पड़ा हूँ। सामने स्टूलके ऊपर एक दीपकके पास दो-तीन दवाकी शीशियाँ और उसके पास एक रस्सीकी खाटपर कोई मनुष्य लाल चेकका रैपर शरीरपर लपेटे हुए सो रहा है। बहुत देर तक मैं कुछ भी याद न कर सका। इसके बाद, एक एक करके, जान पड़ने लगा, मानों नींदमें कितने ही स्वप्न देखे हैं। अनेक लोगोंका आना-जाना उठाकर मुझे डोलीमें डालना, मस्तक उठाकर दवाई पिलाना, ऐसे कितने ही व्यापार दिखाई पड़े।

कुछ देर बाद, जब वह मनुष्य उठकर बैठ गया तब, देखा कि कोई बंगाली सज्जन हैं, उम्र: अठारह-उन्नीससे अधिक नहीं। उस समय सिरहानेके निकटसे मृदु-स्वरमें जिसने उसको सम्बोधन किया उसका स्वर मैंने पहचान लिया।

प्यारीने अति मृदु कण्ठसे पुकारा, " बंकू, बरफको एक बार और बदल क्यों नहीं दिया बेटा ? "

लड़का बोला, " बदले देता हूँ, तुम थोड़ा-सा सो लो न माँ। डॉक्टर बाबू जब कह गये हैं कि शीतला नहीं है, तब डरने की कोई बात नहीं है माँ।"

प्यारी बोली, " अरे भइया, डॉक्टरके कहनेसे, कि डरकी कोई बात नहीं है, औरतोंका भय कहीं जाता है ? तुझे चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है बंकू, तू तो बरफ बदल कर सो जा,—फिर रातको मत जागना। "

बंकूने आकर बरफ बदल दिया और लौटकर वह फिर उसी खटियापर जा पड़ा। थोड़ी ही देर बाद जब उसकी नाक बजने लगी तब मैंने धीरेसे पुकारा " प्यारी ! "

प्यारीने मुँहके ऊपर झुक पड़कर सिर परके जलबिंदु आँचलसे पोंछते हुए कहा, " मुझे क्या तुम चीन्ह सकते हो ? अब कैसे हो ? कल—"

" अच्छा हूँ। कब आईं ? यह क्या आरा है ? "

" हाँ आरा ही है। कल हम लोग घर चलेंगे।"

" कहाँ ? "

" पटने। सिवाय अपने घर ले जानेके, अभी क्या और कहीं, मैं तुम्हें छोड़ जा सकती हूँ ? "

" यह लड़का कौन है, राजलक्ष्मी ? "

" मेरी सौतका लड़का है। किन्तु, बंकू मेरे पेटका लड़का-सा ही है। मेरे पास रहकर ही पटना कालेजमें पढ़ता है। आज अब और बात मत करो। सो जाओ,—कल सब कहूँगी। " इतना कहकर उसने मेरे मुँहपर, हथेली रखकर मेरा मुँह बंद कर दिया।

मैं हाथ बढ़ाकर राजलक्ष्मीके दाहिने हाथको मुट्ठीमें लेकर करवट बदल-कर सो रहा।

१२

जिस ज्वरसे पीड़ित होकर मैं बेहोश हो अभ्यागत हो गया था वह शीतलाका नहीं था, कुछ और ही था। डॉक्टरी शास्त्रमें निश्चयसे ही उसका कोई बड़ा भारी कठिन नाम था, परन्तु मुझे वह याद नहीं रहा। खबर पाकर प्यारी, अपने लड़के, दो नौकर और दासीको लेकर, आ उपस्थित

हुई। उसी दिन एक ठहरनेका स्थान किरायेपर लेकर मुझे उसमें स्थानान्तरित कर दिया और शहरके भले बुरे सब चिकित्सकोंको बुलाकर वहाँ इकट्ठा कर लिया। अच्छा ही किया। नहीं तो, और कोई नुकसान चाहे भले ही न होता, परन्तु ' भारतवर्ष ' के * पाठक-पाठिकाओंके धैर्यकी महिमा तो संसारमें अविदित ही रह जाती!

सुबह प्यारीने कहा, " बंकू, और देरी मत कर बेटा, इसी समय एक सेकण्ड क्लासका डब्बा रिज़र्व करा आ। मैं एक क्षण भी इन्हें यहाँ रखनेका साहस नहीं कर सकती।"

बंकूकी अतृप्त निद्रा उस समय भी उसके दोनों नेत्रोंमें भर रही थी; उसने उन्हें मूँदे ही मूँदे अव्यक्त स्वरमें जवाब दिया, " तुम पगला गई हो माँ ऐसी अवस्थामें क्या रोगीको यहाँसे वहाँ ले जाया जा सकता है ?"

प्यारीने कुछ हँसकर कहा, " पहले तू उठ, आँख मुँहपर जल डाल, देखूँ इसके बाद यहाँ-वहाँ ले जानेकी बात समझ ली जावेगी। राजा बेटा मेरे, उठ!"

बंकू और कोई उपाय न देख, शय्या त्याग, मुँह हाथ धो, कपड़े बदल स्टेशन चला गया। उस समय भी बहुत जल्दी थी—घरमें और कोई नहीं था! धीरे धीरे पुकारा, " प्यारी!" मेरे सिरहानेकी ओर एक खटिया सटकर बिछी हुई थी। उसीपर थकावटके कारण, शायद इसी बीच, वह कुछ आँखे मूँदकर लेट गई थी। चट पट उठ बैठी और मेरे मुँहपर झुक गई। कोमल कण्ठसे उसने पूछा, " नींद खुल गई ?"

" मैं तो जाग ही रहा हूँ।" प्यारीने उत्कण्ठित यत्नके साथ मेरे सिर और कपालपर हाथ फेरते फेरते कहा, " ज्वर तो इस समय बहुत कम है। आँखें मूँदकर थोड़ा-सा सोनेकी चेष्टा क्यों नहीं करते ?"

" सो तो मैं बराबर ही करता हूँ प्यारी, आज ज्वरको कितने दिन हुए ?"

" तेरह दिन " कहकर उसने बड़ी बूढी पुरखिनकी तरह गंभीर भावसे कहा, " देखो, लड़के-वालोंके सामने मुझे यह नाम लेकर मत पुकारा करो।

* श्रीकान्तका यह भ्रमण-वृत्तान्त पहले बंगालके प्रसिद्ध मासिकपत्र ' भारत-वर्ष ' मे धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था।

बहुत दिनोंतक 'लक्ष्मी' कहकर पुकारा किये हो, वही नाम लेकर क्यों नहीं पुकारते ! "

दो दिनसे मैं खूब होशमें था। मुझे भी सब बातें याद आ गई थीं। मैंने कहा, "अच्छा।" इसके बाद, जिस बातके कहनेके लिए बुलाया था उसे मन ही मन अच्छी तरह सजाकर कहा, "मुझे ले जानेकी चेष्टा कर रही हो, किन्तु, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं, अब और नहीं देना चाहता।"

"तो फिर क्या करना चाहते हो?"

"मैं सोचता हूँ, अब जैसा मैं हूँ, उससे जान पड़ता है कि तीन-चार दिनमें ही, अच्छा हो जाऊँगा! तुम लोग चाहे तो इतने दिन और ठहरकर घर चले जाओ।"

"तब तुम क्या करोगे, सुनूँ तो?"

"जो कुछ होना होगा सो हो जायगा।"

'सो हो जायगा' कहकर प्यारी कुछ हँस दी। इसके बाद सामने आकर, खाटपर एक ओर बैठकर, मेरे मुँहकी ओर देखकर, क्षण-भर चुप रहकर फिर कुछ हँसकर बोली, "तीन चार दिनमें तो नहीं, दस-बारह दिनमें यह रोग चला जायगा, यह मैं जानती हूँ; परन्तु असली रोग कितने दिनोंमें दूर होगा, सो क्या मुझे बता सकते हो?"

"असली रोग और क्या?"

प्यारीने कहा, "सोचोगे कुछ, कहोगे कुछ, और—करोगे कुछ, हमेशासे तुम्हें यही एक रोग है। तुम जानते हो कि एक महीनेके पहले मैं तुम्हें आँखोंकी ओट न कर सकूँगी,—फिर भी कहोगे 'तुम्हें कष्ट दिया, तुम जाओ' अरे ओ दयामय! मेरा यदि तुम्हें इतना अधिक दर्द है तो, और चाहे जो होओ पर,—संन्यासी तो तुम नहीं हो—संन्यासी बनकर यह क्या हंगामा खड़ा किया है! आकर देखती हूँ, तो जमीनपर फटी कथरीपर घोर बेहोशीमें पड़े हो, धूल-कीचड़में जटायें बन गई हैं, सारे अंगमें रुद्राक्षकी माला है और दोनों हाथोंमें पीतलके कड़े हैं! भैया री भैया! चेहरा देखकर रोए बिना न रह सकी!" इतना कहते कहते उमड़ा हुआ अश्रुजल उसकी दोनों आँखोंमें झलक आया। चटपट उसे हाथसे पोंछकर वह बोली, "बंकू बोला, ये कौन हैं माँ? मन ही मन बोली—तू बच्चा है, तेरे आगे वह बात क्या कहूँ भइया! ओह, वह दिन भी कैसा विचित्र था, भैया री, कभी इस [illegible] पाठशालामें हमारी चार आँखें हुई थीं! जो दुःख तुमने मुझे दिया है,

उतना दुःख दुनिया-भरमें किसीने कभी किसीको नहीं दिया होगा,—और न देगा ही। शहरमे शीतला दिखाई दी हैं,—सबको लेकर अच्छी भली भाग जा सकूँ तो जानमें जान आवे।" इतना कहकर उसने एक दीर्घ श्वास छोड़ा।

उसी रातको आरा छोड़ दिया। एक कम उम्रका डाक्टर अनेक तरहकी औषधियाँ लेकर हम लोगोंको पटनातक पहुँचानेके लिए साथ गया।

पटना पहुँचकर बारह तेरह दिनके भीतर ही एक तरहसे मैं चंगा हो गया। एक दिन सुबह अकेला प्यारीके मकानके प्रत्येक कमरेमें घूम आया। उसका माल-असबाब देखकर मैं कुछ विस्मित हुआ। मैंने इसके पहले वैसा देखा न हो सो बात नहीं थी। चीजें सब अच्छी और कीमती थीं, यह ठीक है; परन्तु इस मारवाड़ी मुहल्लेके बीच, इन सब धनी और अल्पशिक्षित शौकीन मनुष्योंके संसर्गमें, इतनी साधारण चीज़ोंसे वह सन्तुष्ट कैसे रहती थी? इसके पहले मैंने इस तरहके जितने घरद्वार देखे थे इनके साथ कहीं किसी भी अंशमें इसकी समानता नहीं थी। उनमे अन्दर घुसते ही विचार होता था कि इनमें मनुष्य क्षण भर भी रहते कैसे होगा? उन मकानोंके झाड़ फानूस, चित्र दिवालगीरी, आइना और ग्लास-केसोंमें आनन्दके बदले आशंका ही उत्पन्न होती थी,—सहज श्वास प्रश्वास तकके लिए भी, मालूम होता था कि, अवकाश न मिलेगा।—बहुतसे लोगोंकी बहुविध कामना-साधनाकी उपहार-राशि इस तरह ठसाठस एकके ऊपर एक भरी हुई नजर आती थी कि देखते ही ऐसा मालूम होता था कि इन अचेतन वस्तुओंके समान ही उनके अचेतन दाता भी मानों इस मकानके भीतर जरा-सी जगहके लिए ऐसी ही भीड़ करके परस्पर एक दूसरेके साथ ठेलमठेल संघर्ष कर रहे हैं। किन्तु, इस मकानके किसी भी कमरेमें आवश्यकीय चीजोंके अतिरिक्त एक भी फालतू चीज नज़र नहीं आई। और जो भी चीजें नजर आई वे स्वयं गृहस्वामिनीके कामके लिए लाई गई हैं, और उसकी निजी इच्छा और अभिरुचिको लाँघकर, और किसीकी भी प्रलुब्ध अभिलाषासे अनधिकार-प्रवेश करके जगह छेके नहीं बैठी हैं यह बात सहजमे ही मालूम हो गई। और भी एक बातने मेरी दृष्टिको आकर्षित किया। इतनी सुप्रसिद्ध 'बाईजी' के घरमें गाने बजानेका कहीं कोई आयोजन भी नहीं है। इस कमरे, उस कमरेमें घूमता हुआ दूसरी मंजिलके एक कोनेके कमरेके सामने आकर मैं खड़ा हो गया। यह बाईजीका खुदका शयन-मन्दिर है, यह उसके भीतर झाँकते ही मालूम

हो गया। परन्तु मेरी कल्पनाके साथ इसका कितना अन्तर था! जो कुछ सोच रखा था, उसमेंका कुछ भी नहीं था। मेज सफेद पत्थरकी थी, दीवालें दूधकी तरह सफेद चमचमा रहीं थीं। कमरेके एक किनारे एक छोटेसे तख्तके ऊपर बिस्तर बिछे थे, एक लकड़ीकी अरगनीपर कुछ वस्त्र टँके थे और उसके पीछे एक लोहेकी आलमारी थी। और कहीं कुछ नहीं था। जूते पहिने हुए अन्दर प्रवेश करनेमें भी मानों मुझे एक तरहके सङ्कोचका अनुभव हुआ, उन्हें चौखटके बाहर खोलकर मैंने भीतर प्रवेश किया। मालूम होता है, थकावटके कारण ही उसकी शय्यापर मैं जाकर बैठ गया था। यदि कमरेमें और कोई वस्तु बैठनेके लिए होती तो मैं उसीपर बैठता। सामनेकी ओर खुली हुई खिड़कीको ढँके हुए एक बड़ा नीमका पेड़ था। उसीमेंसे छन छन कर हवा आ रही थी। उस ओर देखता हुआ मैं हठात् जैसे कुछ अन्यमनस्क-सा हो गया था। एक मीठी आवाजसे चौंककर मैंने देखा, गुन-गुन गाना गाती गाती प्यारी कमरेमें घुस आई है। वह गंगाजीमें स्नान करने गई थी और अब वहाँसे लौटकर अपने कमरेमें गीले कपड़े उतारने आई है। उसने इस ओर एक दफा भी नहीं देखा है। उसके सीधे अरगनीके पास जाकर सूखे वस्त्रपर हाथ डालते ही मैंने व्यक्त होकर आवाज दी, "घाटपर कपड़े लेकर क्यों नहीं जातीं?"

प्यारीने चौंककर हँस दिया। बोली, "ऐं! चोरकी तरह मेरे कमरेमें घुसे बैठे हो? नहीं नहीं, बैठे रहो, बैठे रहो,—जाओ मत। मैं उस कमरेमेंसे कपड़े बदल आती हूँ।" इतना कहकर वह हलके पैरों गरदकी धोती हाथमें लेकर बाहर चली गई।

पाँचेक मिनटके बाद वह प्रसन्न मुखसे लौट आई और हँसकर बोली, "मेरे कमरेमें तो कुछ भी नहीं है; तब क्या चुराने आये हो, बोलो तो? मुझे तो नहीं?" मैं बोला, "तुमने क्या मुझे ऐसा अकृतज्ञ समझ रखा है? तुमने मेरे लिए इतना किया, और अन्तमें तुम्हारी ही चोरी करूँ, मैं इतना लोभी नहीं हूँ।"

प्यारीका मुँह मलीन हो गया। बोलते समय मैंने नहीं सोचा था कि इस बातसे उसे व्यथा पहुँचेगी। उसे व्यथा पहुँचानेकी न तो मेरी इच्छा ही थी, और न ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक ही था। लाज तोड़ने तब जब कि

मैंने दो एक दिनमें वहाँसे प्रस्थान करनेका संकल्प कर लिया था। बिगड़ी हुई बातको किसी तरह बना लेनेकी गरजसे मैंने जबर्दस्ती हँसकर कहा, "अपनी वस्तुकी भी क्या कोई चोरी करने जाता है? तुममें इतनी भी बुद्धि नहीं है?"

किन्तु इतने सहजमें उसे भुलाया न जा सका। उसने मलीन मुखसे कहा, "तुम्हें और अधिक कृतज्ञ होनेकी जरूरत नहीं; दया करके तुमने जो उस समय खबर लगा दी, मेरे लिए वही बहुत है।"

उसके शुद्ध स्नात, प्रसन्न हँसते चेहरेको इस धूपसे उज्ज्वल प्रभात-कालमें ही मैंने म्लान कर दिया, यह देखकर हृदयमें एक वेदना-सी जाग उठी। उस थोड़ी-सी हँसीके भीतर जो एक माधुर्य था उसके नष्ट होते ही हानि सुस्पष्ट हो उठी। उसे वापिस लौटानेकी आशासे मैं उसी क्षण अनुतप्त स्वरमें बोल उठा, "लक्ष्मी, तुम्हारे निकट तो कुछ भी छिपा नहीं है—सब कुछ तो जानती हो। तुम वहाँ नहीं गई होती तो मुझे उसी धूल और रेतीके ऊपर ही मर जाना पड़ता, कोई उतनी दूर जाकर एक दफा अस्पताल ले जानेकी भी चेष्टा न करता। वह जो तुमने पत्रमें लिखा था कि, 'सुखके दिनोंमें न सही तो दुःखके दिनोंमें ही मुझे याद कर लेना,' यह बात मुझे मेरी आयु बाकी थी इसीलिए याद आ गई, यह मैं इस समय अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूँ।"

"कर रहे हो?"

"निश्चयसे।"

"तो फिर कहो कि मेरे ही लिए तुमने पुनः प्राण पाये हैं?"

"इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है।"

"तो क्या मैं उनपर दावा कर सकती हूँ, बोलो?"

"कर सकती हो। परन्तु मेरे प्राण इतने तुच्छ हैं कि उनपर तुम्हारा लोभ होना ही उचित नहीं है।"

प्यारीने इतनी देर बाद कुछ हँसकर कहा, "फिर भी गनीमत है कि अपने मूल्यको इतने दिनोंमें तुमने समझ तो लिया।" किन्तु दूसरे ही क्षण गंभीर होकर कहा, 'दिल्लगी रहने दो, बीमारी तो एक तरहसे अच्छी हो गई, अब जानेकी कब सोच रहे हो?"

उसके प्रश्नको अच्छी तरह न समझ सका। मैंने गंभीर होकर कहा, "कहीं जानेकी तो मुझे जल्दी है नहीं। इसलिए यही सोचता हूँ, और भी कुछ दिन ठहर जाऊँ।"

प्यारी बोली, "किन्तु मेरा लड़का आजकल अक्सर बाँकीपुरसे आया करता है। बहुत दिन ठहरोगे तो शायद वह कुछ खयाल करने लगे।"

मैंने कहा, "करने दो न। उससे डरकर तो कुछ तुम चलती नहीं! ऐसा आराम छोड़कर यहाँसे शीघ्र ही तो मैं कहीं जाता नहीं।"

प्यारीने विपण्ण मुखसे कहा, "यह भी कहीं हो सकता है?" इतना कहकर वह एकाएक वहाँसे उठकर चल दी।

दूसरे दिन शामके वक्त मैं अपने कमरेके पश्चिमकी तरफके बरामदेमें एक इजीचेअरपर लेटा हुआ सूर्यास्त देख रहा था। इसी समय बंकू आ उपस्थित हुआ। अभीतक उसके साथ अच्छी तरह बातचीत करनेका सुयोग नहीं मिला था। एक चेअरपर बैठनेका इशारा करके मैं बोला, "बंकू, क्या पढ़ते हो तुम?"

लड़का अत्यन्त सीधा-सादा भलामानुस था। बोला, "गये साल मैंने एन्ट्रेन्स पास किया है।"

"तो अब बांकीपुर कालेजमें पढ़ते हो?"

"जी हाँ।"

"तुम कितने भाई बहिन हो?"

"भाई और नहीं है। चार बहिनें हैं।"

"उनका ब्याह हो गया?"

"जी हाँ, मैंने ही उन्हें ब्याह दिया है।"

"तुम्हारी अपनी माँ जीती हैं?"

"जी हाँ, वे देशके ही मकानमें रहती हैं।"

"तुम्हारी ये माँ, कभी तुम्हारे देशके मकानमें गई हैं?"

"बहुत बार, अभी तो पाँच छः ही महीने हुए, आई हैं।"

"इससे देशमें कोई गड़बड़ नहीं मचती?"

बंकू कुछ देर चुप रहकर बोला, "मचती रहे। हम लोगोंको 'जातिने अलग' कर रखा है, सो इससे कुछ हम अपनी माँको छोड़ थोड़े ही सकते हैं? और ऐसी माँ भी कितने लोगोंको नसीब होती है।"

मुँहमें आया कि पूछूँ, "माँके ऊपर इतनी भक्ति कैसे हुई?" किन्तु दबा गया।

बंकू कहने लगा, "अच्छा आप ही कहिए, गाने बजानेमें क्या दोष है? हमारी माँ केवल वही करती हैं। कुछ पराई निन्दा, पराई चर्चा तो

करती नहीं ? बल्कि, गाँवमें जो लोग हमारे परम शत्रु हैं उन्हींके आठ दस लड़कोंको पढ़ाई-लिखाईका खर्च देती हैं; शीत कालमें कितने ही लोगोंको कपड़े देती हैं, कम्बल देती हैं, यह क्या बुरा करती हैं ? ”

मैंने कहा, “ नहीं, वह तो बहुत ही भला काम है । ”

बंकूने उत्साहित होकर कहा, “ तब कहिए, हमारे गाँवके समान पाजी गाँव क्या और कोई है ? यही देखो न उस वर्ष ईंटे पकाकर हम लोगोंने मकान बनवाया । गाँवमें पानीकी भयानक तकलीफ देखकर माँ मेरी माँसे बोलीं, जीजी, और कुछ रुपये खर्च करके ईंटें पकानेके भट्टेकी जगह ही एक तालाब ही न बनवा दिया जाय ? तीन-चार हजार रुपये खर्च करके तालाब बनवा दिया । घाट भी बँधवा दिया । किन्तु, गाँवके लोगोंने माँको उस तालाबकी प्रतिष्ठा न करने दी । ऐसा बढ़िया पानी—किन्तु कोई पीएगा नहीं, कोई छुएगा नहीं, ऐसे बदजात आदमी हैं । केवल इसी ईर्षाके मारे सब मरे जाते हैं कि हमारा मकान पक्का बन गया । आप समझे न ? ”

मैंने अचरजसे कहा, “ कहते क्या हो जी, पानीका ऐसा दारुण कष्ट भोगा करेंगे, फिर भी ऐसे पानीका व्यवहार न करेंगे ? ”

बंकूने जरा-सा हँसकर कहा, “ वही तो; किन्तु वह क्या अधिक समय चल सकता है ? पहले साल तो डरके मारे किसीने पानी छुआ नहीं, किन्तु अब छोटी जातिके सभी लोग लेते हैं और पीते हैं,—ब्राह्मण और कायस्थ भी चैत्र वैशाखके महीनोंमें लुक-छिपकर पानी ले जाते हैं,—परन्तु फिर भी उन्होंने तालाबकी प्रतिष्ठा नहीं करने दी । यह क्या माँके लिए कम कष्टकी बात है ? ”

मैंने कहा, “ अपनी नाक काटके पराया अपशकुन करनेकी जो कहावत सुनी जाती है, वह यही है । ”

बंकू जोरसे बोल उठा, “ ठीक यही बात है ; ऐसे गाँवमें अलहदा एक घरसे रहना शापके रूपमें भी वरदानके समान है । आपकी क्या राय है ? ” जवाबमें मैंने भी केवल हँसकर सिर हिला दिया । हाँ या नहीं, कुछ स्पष्ट नहीं कहा । परन्तु इस बंकूके उत्साहमें बाधा नहीं पड़ी । मैंने देखा कि लड़का अपनी विमाताको सचमुच ही प्यार करता है । अनुकूल श्रोता पाकर भक्तिके आवेगमें वह देखते देखते पागल हो उठा और उसके लगातारके स्तुति-वादने मुझे करीब करीब व्याकुल कर दिया ।

हठात् एकाएक उसे होश आया कि इतनी देरमें मैंने उसकी एक भी बातमें योग नहीं दिया। तब वह कुछ अप्रतिभ-सा होकर किसी तरह प्रसंगको दबा देनेकी गरजसे बोला, "आप यहाँपर और कुछ दिन हैं न?"

मैंने हँसकर कहा, "नहीं, कल सुबह ही चला जाऊँगा।"

"कल ही?"

"हाँ कल ही।"

"परन्तु आपका शरीर तो अभीतक सबल हुआ नहीं। क्या आप समझते हैं कि बीमारी एकबारगी चली गई?"

मैंने कहा, "सुबह तक तो मैं यही समझता था कि बीमारी गई, परन्तु अब सोचता हूँ कि नहीं। आज दोपहरसे ही मेरा सिर दुख रहा है।"

"तो फिर क्यों इतने शीघ्र जाते हैं? यहाँ तो आपको किसी प्रकारका कष्ट है नहीं।" इतना कहकर वह लड़का चिन्तित मुखसे मेरी ओर देखने लगा।

मैंने भी कुछ देर चुप हो, उसके चेहरेकी ओर देखते हुए, उसके मुँहपर उसके भीतरके यथार्थ भाव पढ़नेकी कोशिश की। जितना भी मैंने उन्हें पढ़ा उससे उसकी ओरसे सत्य-गोपनकी कोई भी चेष्टा होती हुई मैं अनुभव नहीं कर सका। इसपर लड़का लजा अवश्य गया और उस लज्जाको ढँकनेकी भी उसने कोशिश की। वह बोला, "आप यहाँसे मत जाइए।"

"क्यों न जाऊँ, बताओ?"

"आपके रहनेसे माँ बड़े आनन्दसे रहती हैं।" यह कह तो दिया,—पर इससे उसका मुँह लाल हो गया। वह चटसे उठकर चल दिया। मैंने देखा, लड़का अत्यन्त भोला और सरल प्रकृतिका जरूर है, परन्तु बेवकूफ नहीं है। प्यारीने कहा था कि "और अधिक दिन रहोगे तो मेरा लड़का क्या खयाल करेगा?" इस बातके साथ उस लड़केके व्यवहारकी आलोचनाका अर्थ भी मानों मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ ऐसा मुझे मालूम पड़ा: और मातृत्वकी इस एक नई तसवीरके दृष्टिगोचर होनेसे मानों मैंने एक नूतन ज्ञान संग्रह किया। प्यारीके हृदयकी एकाग्र वासनाका अनुमान करना हमारे लिए कठिन नहीं है और वह संसारमें सब ओरसे सब तरह स्वाधीन है, यह कल्पना करना भी, मैं समझता हूँ कि, पाप नहीं है। फिर भी, उसने जिस मुहूर्त्तसे एक दरिद्र बालकके मातृ-पदको स्वेच्छासे ग्रहण किया है तभीसे मानों अपने दोनों पैरोंको डोरेकी साँकलसे जकड़ लिया है। वह स्वयं

चाहे जो हो परन्तु उसे, अपनेतईं माताका सम्मान तो अब देना ही होगा! उसकी असंयत कामना, उच्छृंखल प्रवृत्ति, उसे चाहे जितने अधःपातकी ओर क्यों न ठेलना चाहे, परन्तु यह बात भी तो उससे भूली नहीं जाती कि वह एक लड़केकी माँ है! और उस सन्तानकी भक्ति-नत दृष्टिके सामने तो वह उस माँको किसी तरह भी अपमानित नहीं होने देगी! उसके विह्वल यौवनके लालसामत्त वसन्तके दिनोंमें प्यारके साथ किसने उसका नाम 'प्यारी' रखा था यह तो मैं नहीं जानता; किन्तु, यह नाम भी वह अपने लड़केके सामने छुपा रखना चाहती है, यह बात मुझे याद आ गई।

देखते देखते सूर्य अस्त हो गया। उस ओर ताकते ताकते मेरा सारा अन्तःकरण मानों पिघलकर लाल हो उठा। मन ही मन बोला कि राज-लक्ष्मीको अब तो मैं नीची निगाहसे देख नहीं सकता। हम दोनोंका बाहरी बर्ताव इतने दिनोंतक चाहे जितने बड़े स्वातंत्र्यकी रक्षा करते हुए क्यों न चलता रहा हो, स्नेह चाहे जितना माधुर्य क्यों न ढाल दे, परन्तु, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि दोनोंकी कामनाएँ एकत्र सम्मिलित होनेके लिए प्रत्येक क्षण दुर्निवार वेगके साथ एक दूसरेकी ओर दौड़ रही हैं। परतु आज मैंने देखा कि यह असंभव है। एकाएक 'बंकूकी माँ' आकाशभेदी हिमालय पर्वतकी नाईं रास्ता रोककर राजलक्ष्मी और मेरे बीच आकर खड़ी है। मन ही मन मैंने कहा, कल सुबह ही तो मैं यहाँसे जा रहा हूँ—किन्तु तब कहीं ऐसा न हो कि मनमें फायदे-नुकसानका हिसाब लगाने जाकर कुछ बचा रखनेकी चेष्टा करने लगूँ। मेरा यह जाना अन्तिम जाना ही हो। देख न पानेका बहाना करके एक अति सूक्ष्म वासनाका बन्धन मैं यहाँ न रख जाऊँ जिसका सहारा लेकर फिर कभी मुझे यहाँ आकर उपस्थित होना पड़े!

अन्यमनस्क होकर उसी जगह बैठा हुआ था। संध्याके समय धूपदानीमें धूप डालकर उसे अपने हाथोंमें लिये हुए राजलक्ष्मी उसी बरामदेमेंसे और एक कमरेमें जा रही थी कि चौंककर खड़ी हो गई और बोली, "सिर दर्द कर रहा है, ओसमें क्यों बैठे हुए हो? कमरेमें जाओ।"

मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा, "अवाक् कर दिया तुमने लक्ष्मी! ओस यहाँ कहाँ है?"

राजलक्ष्मी बोली, "ओस न सही, ठण्डी हवा तो चल रही है। वही क्या अच्छी होती है?"

"नहीं, यह तुम्हारी भूल है। ठण्डी गरम कोई हवा नहीं चल रही है।" राजलक्ष्मी बोली, "मेरी तो सब भूल ही भूल है, परन्तु सिर दर्द कर रहा है यह तो मेरी भूल नहीं है,—यह तो सत्य है न? कमरेमें जाकर थोड़ी देर सो रहो न? रतन क्या करता है? वह क्या थोड़ा ओ' डिकोलन सिरमें नहीं लगा सकता? इस घरके नौकर चाकरोंके समान नवाब नौकर पृथ्वीमें और कहीं नहीं हैं।" इतना कहकर राजलक्ष्मी अपने कामपर चली गई।

रतन जब घबराकर और लज्जित हो ओ'डिकोलन, पानी आदि लेकर हाजिर हुआ और अपनी भूल के लिए बार बार अनुताप प्रकट करने लगा तब मुझसे हँसे बिना न रहा गया।

रतनने इससे साहस पाकर धीरे धीरे कहा, "इसमें मेरा दोष नहीं है बाबू, यह क्या मैं नहीं जानता? परन्तु माँसे यह कहनेका उपाय ही नहीं कि जब तुम्हें गुस्सा आता है, तब झूठ-मूठ ही घर भरके लोगोंके दोष देखने लगती हो।"

कुतूहलसे मैंने पूछा, "गुस्सा क्यों है?"

रतन बोला, "यह जाननेका क्या कोई उपाय है? बड़े लोगोंको गुस्सा, बाबूजी, यों ही आ जाता है और यों ही चला जाता है। उस समय यदि अपना मुँह छिपाकर न रहा जा सके, तो नौकर चाकरोंके प्राण गये समझो।" दरवाजेके समीपसे एकाएक सवाल आया, "तब तुम लोगोंका मैं सिर काट लेती हूँ, क्यों रतन? और फिर बड़े लोगोंके घरमें यदि इतनी मुसीबत है तो और कहीं क्यों नहीं चला जाता?"

मालिकके सवालसे रतन कुण्ठित हो नीचा सिर किये चुपचाप बैठा रहा। राजलक्ष्मीने कहा, "तेरा काम क्या है? उनका सिर दर्द करता है, यह बंकूके मुँहसे सुनकर मैंने तुझसे कहा। इसीसे अब रातके आठ बजे यहाँ आकर मेरी बड़ाई कर रहा है। कलसे कहीं और नौकरी खोज लेना, अब यहाँ काम नहीं है। समझा!"

राजलक्ष्मीके चले जानेपर रतन ओ' डिकोलन पानी मिलाकर मेरे सिरपर रखकर हवा करने लगा। राजलक्ष्मीने उसी क्षण लौटकर पूछा, "क्या कल सुबह ही घर जाओगे?" मेरा जानेका इरादा जरूर था, परन्तु घर लौट जानेका नहीं। इसीलिए सवालका जवाब मैंने और ही तरहसे दिया, "हाँ, कल सुबह ही जाऊँगा।"

"सुबह कितने बजेकी गाड़ीसे जाओगे ?"

"सुबह ही निकल पड़ूँगा,—फिर जो गाड़ी मिल जावे।"

"अच्छा। न हो तो टाइमटेबुलके लिए किसीको स्टेशन भेज देती हूँ।" इतना कहकर वह चली गई।

इसके बाद यथासमय रतनने काम समाप्त करके प्रस्थान किया। नीचेसे नौकर चाकरोंका शब्द आना बन्द हो गया। मैं समझ गया कि सभीने इस समय निद्राके लिए शय्याका आश्रय ग्रहण कर लिया है।

मुझे किन्तु किसी तरह नींद नहीं आई। घूम फिरकर केवल एक ही बात बार बार मनमें आने लगी कि प्यारी नाराज क्यों हो गई ? ऐसा मैंने क्या किया है जिससे कि वह मुझे रवाना करनेके लिए अधीर हो उठी है ? रतनने कहा था कि बड़े आदमियोंको क्रोध यों ही आ जाया करता है। यह बात और और बड़े आदमियोंके सम्बन्धमें ठीक उतरती है या नहीं, सो नहीं मालूम, परन्तु प्यारीके सम्बन्धम तो किसी तरह भी ठीक नहीं उतरती। वह अत्यंत संयमी और बुद्धिमती है, इसका परिचय मुझे बहुत बार मिल चुका है: और मुझमें भी, और बुद्धि चाहे भले ही न हो, प्रवृत्तिके संबंधमें संयम उससे कम नहीं है,—मैं तो समझता हूँ किसीसे भी कम नहीं है। मेरे हृदयमें चाहे कुछ भी क्यों न हो, उसे मुँहसे बाहर निकालना, अत्यन्त विकारकी बेहोशीमें भी मैं अपने लिए सम्भव नहीं मानता। व्यवहारमें भी किसी दिन ऐसा किया हो, सो भी मुझे याद नहीं। खुदके उसके किसी कार्यके कारण लज्जाका कुछ कारण घटित हुआ हो, वह तो अलग बात है; परंतु मेरे ऊपर गुस्सा होनेका कोई कारण नहीं है। इसलिए, विदाके समयका उसका यह उदासीन भाव मुझे जो वेदना देने लगा, वह अकिंचित्कर नहीं था।

बहुत रात बीते एकाएक तन्द्रा टूट गई और मैंने आँख खोलकर देखा कि राजलक्ष्मी गुपचुप कमरेमें आई और उसने टेबलके ऊपरका लेम्प बुझाकर उसे दरवाजेके कोनेकी आड़में रख दिया। खिड़की खुली हुई थी, उसे बन्द करके, मेरी शय्याके समीप आकर क्षण-भर चुप खड़ी रहकर उसने कुछ सोचा। इसके बाद मसहरीके भीतर हाथ डालकर उसने पहले मेरे सिरका उत्ताप अनुभव किया। इसके बाद कुरतेके बटन खोलकर वह छातीके उत्तापको बार बार देखने लगी! एकान्तमें आनेवाली नारीके इस गुप्त कर-स्पर्शसे पहले तो मैं कुण्ठित और लज्जित हो उठा, परन्तु

उसी समय मनमें आया कि रोगकी बेहोशीकी हालतमें सेवा करके जिसने चैतन्यको लौटाकर ला दिया, उसके नजदीक मेरे लिए लाज करनेकी बात ही कौन सी है! इसके बाद उसने बटन बंद कर दिये, ओढ़नेका कपड़ा खिसक गया था उसे गलेतक उढ़ा दिया, अन्तमें मसहरीके किनारोंको अच्छी तरह ठीक करके अत्यन्त सावधानीसे किवाड़ बन्द करके वह बाहर चली गई।

मैंने सब कुछ देखा और सब कुछ समझा। जो छिपे छिपे आई थी उसे छिपे छिपे ही जाने दिया। परन्तु इस निर्जन आधी रातको वह अपना कितना मेरे निकट छोड़ गई, सो वह कुछ भी न जान सकी। सुबह जब नींद खुली तब बुखार चढ़ा हुआ था। आँखें और मुँह जल रहे थे, सिर इतना भारी था कि शय्या त्याग करते क्लेश मालूम हुआ। फिर भी जाना ही होगा। इस घरमें मुझे अब अपने ऊपर जरा भी विश्वास नहीं था, न जाने वह किस क्षण धोखा दे जाय। फिर भी डर मुझे अपने लिए उतना नहीं था। परन्तु, राजलक्ष्मीके लिए ही मुझे राजलक्ष्मीको छोड़ जाना होगा, इसमें अब जरा-भी आनाकानी करनेसे काम न चलेगा।

मन ही मन सोच कर देखा कि उसने अपने विगत जीवनकी कालिमाको बहुत कुछ धोकर साफ कर डाला है। आज अनेक लड़के बच्चे माँ माँ कहते हुए उसे चारों ओरसे घेरे खड़े हैं। इस भक्ति और प्रीतिके आनन्द-धामसे उसे अपमानके साथ छीनकर बाहर निकाल लाऊँ?—इतने बड़े प्रेमकी क्या यही सार्थकता अन्तमें मेरे जीवनके अध्यायमें चिरकालके लिए लिपिबद्ध हो रहेगी?

प्यारीने कमरेमें प्रवेश करके पूछा, "इस समय तबीयत कैसी है?"

मैं बोला, "ऐसी कुछ विशेष खराब नहीं है। जा सकूँगा।"

"आज न जानेसे क्या न चलेगा?"

"नहीं, आज तो जाना ही चाहिए।"

"तो, फिर घर पहुँचते ही खबर देना। नहीं तो हम लोगोंको बहुत चिन्ता होगी।"

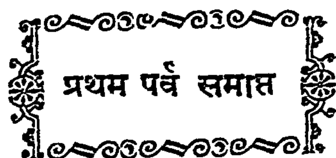
उसके अविचलित धैर्यको देखकर मैं मुग्ध हो गया। उसी क्षण सजग होकर बोला, "अच्छा, मैं घर ही जाऊँगा और पहुँचते ही तुम्हें खबर दूँगा।"

प्यारीने कहा, "जरूर देना। मैं भी चिट्ठी लिखकर तुमसे दो एक, बातें पूछूँगी।"

जब मैं बाहर पालकीमे बैठने जा रहा था तब देखा कि दूसरे मंजिलके बरामदेमें प्यारी चुपचाप खड़ी है। उसकी छातीके भीतर क्या हो रहा है, सो उसका मुँह देखकर मैं न जान सका।

मुझे अपनी अन्नदा जीजी याद आ गई। बहुत समय पहले एक अन्तिम दिन वे भी मानों ठीक ऐसी ही गम्भीर, ऐसी ही स्तब्ध होकर खड़ी थीं। उस समयकी उनकी दोनों करुण आँखोंकी दृष्टिको मैं आज भी नहीं भूला हूँ; परन्तु उस दृष्टिमें निकटवर्ती जुदाईकी कितनी बड़ी व्यथा घनीभूत हो रही थी सो मैं उस समय नहीं पढ सका था। क्या जानूँ, आज भी उसी तरहका कुछ उन दोनों निविड़ काली आँखोंमें है या नहीं।

उसाँस छोड़कर मैं पालकीमें जा बैठा। देखा कि बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, दूर भी ठेल देता है। छोटे-मोटे प्रेमके लिए यह साध्य ही नहीं था कि वह इस सुखैश्वर्यसे भरे-पूरे स्नेह-स्वर्गसे मुझे, मङ्गलके लिए, कल्याणके लिए, एक डग भी आगे बढाने देता। कहार पाल्की लेकर स्टेशनकी ओर जल्दीसे चल दिये। मन ही मन मैं बारंबार कहने लगा कि लक्ष्मी दुःख मत करना। यह अच्छा ही हुआ कि मैं यहाँसे चल दिया। तुम्हारा ऋण इस जीवनमें चुकानेकी शक्ति तो मुझमें नहीं है। परतु जिस जीवनको तुमने दिय है, उस जीवनका दुरुपयोग करके अब मैं तुम्हारा अपमान न करूँगा,—तुम से दूर रहते हुए भी मैं यह संकल्प सदा अक्षुण्ण रखूँगा।



"क्यों मुझे डराते हो भाई, मैं बेहोश हो जाऊँगा।" इन्द्रने न तो कुछ कहा और न अभय ही दिया—धीरसे डाँडको हाथमें लेकर उसने नावको झाऊ-वनमेंसे बाहर कर लिया और फिर सीधा चलाने लगा। मिनट-दो-मिनट चुप रहकर उसने गंभीर मृदु स्वरसे कहा, "श्रीकान्त, मन ही मन 'राम' का नाम ले, 'वह' नौका छोड़कर नहीं गया है;—हमारे पीछे ही बैठा है!"

उसके बाद मैं उसी जगह मुँह ढँककर औंधा हो गया था। फिर मुझे कुछ सुध नहीं रही। जब आँखें खोलीं तब अन्धकार नहीं था।—नाव किनारे लगी हुई थी। इन्द्र मेरे पैरोंके पास बैठा था: बोला, "अब थोड़ा चलना होगा, श्रीकान्त, उठ बैठ।"

४

पैर उठते ही न थे, फिर भी किसी तरह गंगाके किनारे किनारे चलकर सबेरे लाल आँखें और अत्यन्त सूखा म्लान मुँह लेकर घर पहुँचा। मानों एक समारोह-सा हो उठा। "यह आया! यह आया!" कहकर सबके सब एक साथ एक स्वरमें इस तरह अभ्यर्थना कर उठे कि मेरा हृत्पिण्ड थम जानेकी तयारी करने लगा।

जतीन करीब करीब मेरी ही उम्रका था। इसलिए आनन्द भी उसका सबसे प्रचंड था। वह कहींसे दौड़ता हुआ आया और "आ गया श्रीकान्त,—यह आ गया, मझले भइया!" इस प्रकारके उन्मत्त चीत्कारसे घरको फाड़ता हुआ मेरे आनेकी बात घोषित करने लगा और मुहूर्त-भरका भी विलम्ब किये बगैर, उसने परम आदरसे मेरा हाथ पकड़कर खींचते हुए मुझे बैठक-खानेके पायंदाजपर ला खड़ा किया।

वहाँपर मँझले भइया गहरा मन लगाए परीक्षा पास करनेका पाठ पढ़ रहे थे। मुँह उठाकर थोड़ी-सी देर मेरे मुँहकी ओर देखकर उन्होंने फिर पढ़नेमें अपना मन लगा दिया अर्थात् बाघ, शिकारको अपने अधिकारमें कर लेनेके उपरान्त, निरापद स्थानमें बैठकर, जिस तरह दूसरी तरफ अवलेहना भरी दृष्टिसे देखता है, ठीक उसी तरह उनका भाव था। दंड देनेका इतना बड़ा माहेन्द्र योग उनके भाग्यमें पहले और कभी जुटा था या नहीं, इसमें सन्देह है।

मिनट-भर वे चुप रहे। सारी रात बाहर बितानेके कारण दोनों कानों और गालोंपर जो कुछ बीतेगी सो मैं जानता था। किन्तु, अब और अधिक देर

खड़ा भी न रह सकता था और उधर 'कर्म-कर्ता' को भी तो फुरसत नहीं थी। वे भी तो परीक्षा पास करनेकी तैयारीमें लगे थे!

हमारे इन मझले भइयाको आप शायद इतने जल्दी भूले न होंगे! ये वही हैं जिनकी कठोर देख-रेखमें कल शामको हम सब पाठाभ्यास कर रहे थे और क्षण-भर बाद ही, जिनके सुगंभीर 'ओ ओ' शब्द और चिरागदान उलटा देनेकी चोटसे गत रात्रि उस 'दि रॉयल बेंगाल' को भी दिग्भ्रमित होकर एक दफा अनारके वृक्षपर आश्रय लेना पड़ा था।

'पंचांग तो देख रे सतीश, आज इस वेला बैंगन खाना अच्छा है या नहीं—" कहती हुई पासके द्वारको खोलकर बुआजीने जैसे ही घरमें पैर रक्खा वैसे ही मुझे देखकर वे अवाक् हो गईं।—"कब आया रे? कहाँ चला गया था? धन्य है लड़के तुझे,—सारी रात नींद नहीं आई—सोच सोचकर मर गई,—उस इन्द्रके साथ चुपके-से जो बाहर गया, सो फिर दिखाई ही नहीं दिया। न खाना, न पीना, कहाँ था बोल तो रे अभागे। मुख स्याह हो गया है, आँखें लाल छल छला रही हैं—कहती हूँ, ज्वर तो नहीं चढ़ आया है? जरा पासमें तो आ, देखूँ तो ऑग—' एक साथ इतने बहुत-से प्रश्न करनेके उपरान्त बुआ स्वयं ही आगे बढ़कर, मेरे कपालपर हाथ देकर ही बोल उठी "जो सोचा था आखिर वहीं हुआ न! ऑग खूब गरम है। ऐसे लड़कोंके तो हाथ-पैर बाँधकर जल-बिछुआ लगा दिया जाय, तभी जी शान्त हो! तुझे घरसे बिल्कुल बिदा करके ही अब और कुछ करूँगी। चल, भीतर चलकर सो जा,—पाजी!" वे बैंगन-खानेके प्रश्नको बिल्कुल ही भूल गईं। उन्होंने हाथ पकड़कर मुझे अपनी गोदमें खींच लिया।

मझले भइयाने बादलोंके समान गम्भीर कण्ठसे संक्षेपमें कहा, "अभी वह न जा सकेगा।"

"क्यों, यहाँ क्या करेगा? नहीं, नहीं, इस समय, अब इसका पढ़ना-लिखना न होगा। पहले दो कौर खाकर थोड़ा सो ले। आ मेरे रा ऽ —' कहकर बुआजी मुझको लेकर चलने लगीं।

किन्तु शिकार जो हाथसे निकला जाता था! मझले भइया स्थान-काल भूल गये, जोरसे चिल्ला उठे और धमकाकर बोले, "खबरदार, कहता हूँ वहाँ मत जा, श्रीकान्त! बुआ तब कुछ चौंक उठीं। इसके बाद मुह फेर मझले भइयाकी ओर देखकर केवल इतना ही बोलीं, "मर्ता ऽ ऽ!"

बुआजी गम्भीर प्रकृतिकी औरत थीं। सारा घर उनसे डरता था। मझले भइया तो बस उस एक तीखी नजरसे ही भयके मारे सिटपिटा गये। और फिर, पासहीके कमरेमें बड़े भाई भी बैठे थे। बात कहीं उनके कान तक गई तो फिर खैर नहीं थी।

बुआजीका एक स्वभाव हम लोग हमेशासे देखते आ रहे थे। कभी किसी भी कारण वे शोर-गुल करके लोगोंको इकट्ठा करना पसंद नहीं करती थीं। हजार गुस्सा होनेपर भी वे कभी जोरसे नहीं बोलती थीं। वे बोलीं, "जान पड़ता है, तेरे ही डरसे यह यहाँ खड़ा है। देख सतीश, जब तब सुना करती हूँ कि तू बच्चोंको मारता-पीटता है। आजसे यदि कभी किसीको हाथ भी लगाया, और मुझे मालूम हो गया; तो इसी खम्भेसे बँधवाकर नौकरके हाथ तुझे बेंत लगवाऊँगी। बेहया खुद तो हर साल फेल हुआ करता है—और फिर दूसरोंपर रुआब गाँठता है! कोई पढ़े चाहे न पढ़े, आगेसे तू किसीसे भी कुछ पूछ न सकेगा!"

इतना कहकर, जिस रास्ते आई थीं उसी रास्ते मुझे लेकर वे चली गईं। मझले भइया अपना-सा मुँह लिये बैठे रहे। यह बात मझले भइया भली भाँति जानते थे कि इस आदेशकी अवहेलना करना किसीके वशकी बात नहीं है।

मुझे अपने साथ ले बुआ अपने कमरेमें आईं, मेरे कपड़े बदलवाये, पेट भरकर गरम गरम जलेबियाँ खिलाईं, बिस्तरपर सुला दिया और यह बात अच्छी तरह जताकर, बाहरसे सॉकल लगाकर, चली गईं कि मैं मर जाऊँ तो उनके हाड़ जुड़ा जावें!

पाँचेक मिनटके बाद खट-से सॉकल खोलकर छोटा भाई हाँफता हाँफता आया और मेरे बिछौनेपर आकर पट पड़ गया। आनन्दके अतिरेकसे पहले तो वह बात भी न कर सका, फिर थोड़ा 'दम' लेकर फुसफुसाकर बोला, "मझले भइयाको माँने क्या हुक्म दिया है, जानते हो? हम लोगोंके किसी भी काममें पड़नेकी उन्हें अब जरूरत नहीं है। अब तुम और मैं दोनों एक कमरेमें पढ़ेंगे,—मझले भइयाकी हम जरा भी 'केयर' (पर्वाह) न करेंगे।" इतना कहकर उसने अपने दोनों हाथोंके अँगूठे एकत्र करके जोरसे नचा दिये।

जतीन भी पीछे पीछे आकर हाजिर हो गया। यह अपनी कारगुजारीकी उत्तेजनामें एक बारगी अधीर हो रहा था और छोटे भाईको यह सुसमाचार देकर यहाँ खींच लाया था। पहले तो वह कुछ देरतक खूब हँसता रहा। फिर हँसना बन्द करके अपनी छाती बारबार ठोककर बोला, "मैं! मैं!!

मेरे ही सबबसे यह सब हुआ है, सो क्या तुम नहीं जानते ? मैं यदि इसे (मुझे) मझले भइयाके सामने न ले गया होता तो क्या माँ ऐसा हुक्म देतीं ?—पर छोटे भइया, तुम्हें अपना कलदार लट्टू मुझे देना होगा सो कहे देता हूँ।" "अच्छा, दिया। ले आ, जा, मेरे डेस्कमेंसे।" छोटे भाईने उसी क्षण हुक्म दे डाला। किन्तु उसी लट्टूको घण्टेभर पहले शायद वह पृथ्वीकी सारी संपत्तिके बदले भी न दे सकता।

ऐसा ही मूल्य होता है, मनुष्यकी स्वाधीनताका। व्यक्तिगत न्याय्य अधिकारोंको प्राप्त करनेका ऐसा ही आनन्द होता है। आज मुझे बार बार ख्याल आता है कि बच्चोंके निकट भी उसकी अमूल्यता बिन्दुभर भी कम नहीं है। मझले भइया, बड़े होनेके कारण, स्वेच्छाचारसे, अपनेसे छोटोंके जिन समस्त अधिकारोंको प्राप्त कर बैठे थे, उन्हें फिरसे प्राप्त करनेके सौभाग्यलाभने छोटे भाईने अपनी प्राणोंसे भी प्रिय वस्तु बिना सकोचके दे डाली। दर असल मझले भइयाके अत्याचारोंकी सीमा न थी। रविवारको कड़ी दुपहरोंमें एक मीलका रास्ता नापकर, उनके ताश खेलनेवाले दोस्तोंको बुलाने जाना पड़ता था। गर्मीकी छुट्टियोंमें, दिनमें जब तक वे सोते रहते थे तब तक पंखा झलना पड़ता था। सर्दीके दिनोंमें, जब वे लिहाफके भीतर हाथपैर छिपाकर कछुएकी तरह बैठे किताब पढ़ते थे, तब हमें बैठे बैठे उनकी किताबके पन्ने पलट देने होते थे।—यही सब उनके अत्याचार थे। और फिर 'न' कहनेका भी कोई उपाय नहीं था। किसीके निकट शिकायत करनेकी भी ताब नहीं थी। घुणाक्षर-न्यायसे भी यदि वे जान पाते तो हुक्म दे बैठते, "केशव, जा तो अपनी जाग्रफी ले आ, देखूँ तुझे पुराना सबक याद है कि नहीं। जतीन, जा तो एक अच्छी-सी झाऊकी छड़ी तोड़ ला।"—अर्थात् पिटना अनिवार्य था। अतएव आनन्दकी मात्रामें भी इन लोगोंमें यदि प्रतिस्पर्धा हो रही थी तो, इसमें अचरजकी बात ही क्या थी !

किन्तु आनन्द कितना ही क्यों न हो, अतमें उसे स्थगित रखना आवश्यक हो गया; क्योंकि स्कूलका समय हो रहा था। मुझे तो ज्वर था, इसलिए कहीं जाना न था।

याद आता है कि, उस रातको बुखार तेज हो गया और फिर, ७-८ दिन तक खाटमें ही पड़े रहना पड़ा !

इसके कितने दिनों बाद स्कूल गया और फिर कितने दिनों बाद इन्द्रसे

भेंट हुई सो याद नहीं है; परन्तु इतना जरूर याद है कि बहुत दिनों बाद हुई। शनिवारका दिन था, जल्दी बंद हो जानेके कारण मैं जल्दी ही स्कूलसे लौट आया था। उन दिनों गंगामें पानी उतरना शुरू हो गया था और गंगासे लगे हुए एक नालेके किनारे मैं वंसी डालकर मछली पकड़ने बैठा था। वहाँ और भी बहुतसे आदमी मछली पकड़ रहे थे। एकाएक मैंने देखा कि एक आदमी, पासमें ही सरकीके झुण्डकी आड़में, बैठकर टपाटप मछलियाँ पकड़ रहा है। आड़में होनेके कारण वह तो अच्छी तरह दिखाई न देता था। परन्तु उसका मछली पकड़ना दिखाई पड़ता था। बहुत देरसे मुझे अपनी जगह पसंद नहीं आ रही थी। मनमें सोचा कि चलो, मैं भी उसीके निकट जा बैठूँ। वंसी हाथमें लेकर मेरे एक बार घूमकर खड़े होते ही वह बोला, "मेरे दाहिनी ओर आकर बैठ जा। अच्छा तो है श्रीकान्त?" छाती धक् कर उठी। यद्यपि मैं उसका मुँह न देख पाया था तो भी पहचान गया कि इन्द्र है। शरीरके भीतरसे बिजलीका तीव्र प्रवाह बह जानेसे, जो जहाँ है वह, एक मुहूर्तमें, जैसे सजग हो उठा है, उसके कण्ठ-स्वरसे भी मेरी वही दशा हुई। पलक मारते मारने सर्वांगका रक्त चंचल हो उठा और उद्दाम होकर छातीपर मानों जोर जोरसे पछाड़ खाने लगा। किसी तरह भी मुँहसे जरा-सा जवाब न निकला। यह बात मैं लिख तो जरूर गया हूँ किन्तु उस वस्तुको भाषामें व्यक्त करनेकी बात तो दूर, उसे समझना भी मेरे लिए, अत्यन्त कठिन ही नहीं, शायद असाध्य था। क्योंकि बोलनेके लिए यही बहु-व्यवहृत साधारण वाक्य-राशि— जैसे हृदयका रक्त आलोड़ित हो रहा था—उद्दाम या चंचल हो रहा था,— बिजलीके प्रवाहके समान बह रहा था,—आदिके उपयोगके सिवाय और तो कोई रास्ता है नहीं। किन्तु इससे कितना-सा व्यक्त किया जा सकता है? जो जानता नहीं उसके आगे मेरे मनकी बात कितनी-सी प्रकाशित हुई? जिसने अपने जीवनमें एक दिनके लिए भी यह अनुभव नहीं किया, मैं ही उसे यह किस तरह जताऊँ और वही इसे किस तरह जाने? जिसको कि मैं प्रति समय याद करता रहता था,—कामना करता रहता था, आकांक्षा करता रहता था और फिर भी, कहीं उससे किसी रूपमें मुलाकात न हो जाय इस भयके मारे दिन-ब-दिन सूखकर काँटा हुआ जाता था,—उसीने, इस प्रकार अकस्मात्, इतने अभावनीय रूपमें मेरी आँखोंके सामने, मुझे अपने पार्श्वमें आकर बैठनेका अनुरोध किया! उसके पास जाकर बैठ भी गया; परन्तु फिर भी कुछ कह न सका।

इन्द्र बोला, " उस दिन वापिस आकर तूने बडी मार खाई,—क्यों न श्रीकान्त? तुझे ले जाकर मैंने अच्छा काम नहीं किया। उसके लिये रोज मुझे बडा दुःख होता है।" मैंने सिर हिलाकर कहा, " मार नहीं खाई।" इन्द्र खुश होकर बोला, " नहीं खाई? सुन रे श्रीकान्त, तेरे जानेके बाद मैंने काली माताको अनेक दफे पुकारा था जिससे तुझे कोई न मारे। काली माता बड़ी जाग्रत देवी हैं रे। उन्हें मन लगाकर पुकारनेसे कभी कोई मार नहीं सकता। माता आकर इस प्रकार भुला देती हैं कि कोई कुछ भी नहीं कर सकता।" ऐसा कहकर उसने बंसीको रख दिया और हाथ जोड़कर कपालमें लगा लिये, मानों उन्हींको मन ही मन प्रणाम किया हो। फिर बंसीमें चारा लगाकर उसे जलमें डालते हुए वह बोला, " मुझे तो खयाल न था कि तुझे ज्वर आ जायगा, यदि होता तो मैं वह भी न आने देता।"

मैंने आहिस्तेसे प्रश्न किया, " क्या करते तुम?" इन्द्र बोला, " कुछ नहीं, सिर्फ जवाफूल (गुडहर) लाकर माताके पैरोंपर चढा देता। उन्हें जवा-फूल बड़े प्यारे हैं। जो जैसी कामनासे उन्हें चढाता है उसका वैसा ही फल होता है। यह तो सभी जानते हैं, क्या तू नहीं जानता?" मैंने पूछा, " तुम्हारी तबियत तो नहीं बिगड़ी थी?" इन्द्रने आश्चर्यसे कहा, " मेरी?—मेरी तबियत कभी खराब नहीं होती। कभी कुछ नहीं होता।" वह एकाएक उद्दिप्त होकर बोला, " देख श्रीकान्त, मैं तुझे एक चीज सिखाये देता हूँ। यदि तू दोनों वेला खूब मन लगाकर देवीका नाम लिया करेगा, तो वे सामने आकर खड़ी हो जायँगी,—तू उन्हें स्पष्ट देख सकेगा। और फिर वे कभी तेरा बुरा न होने देंगी। तेरा कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा,—तू स्वयं जान जायगा,—फिर मेरी तरह मन चाहे वहाँ जाना, खुशी पडे सो करना, फिर कोई चिन्ता नहीं। समझमें आया?"

मैंने सिर हिलाकर कहा, " ठीक है।" फिर बंसीमें चारा लगाकर और उसे पानीमें डालकर मृदु-कण्ठसे पूछा, " अब तुम किसे साथ लेकर वहाँ जाते हो?"

" कहाँ?"

" उस पार मछली पकड़ने।"

इन्द्र बंसीको उठाकर और सावधानीसे पासमें रखकर बोला, " अब मैं नहीं जाता।" उसकी बात सुनकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। पूछा, " उसके बाद क्या तुम एक दिन भी नहीं गये?"

" नहीं, एक दिन भी नहीं,—मुझे सिरकी कसम खाकर—" बातको पूरा किये बगैर ही कुछ सिटपिटाकर इन्द्र चुप हो गया।

उसके सम्बन्धमे मुझे यह बात रह रहकर कॉटे जैसी चुभती रही है। किसी तरह भी उस दिनकी वह मछली बेचनेकी बात भूल न सका था, इसलिए यद्यपि वह चुप हो रहा पर मै न रह सका। मैंने पूछा, " किसने तुम्हें सिरकी कसम खाई भाई ? तुम्हारी मॉने ?"

" नहीं, मॉने नहीं," कहकर इन्द्र फिर-चुप हो रहा। बन्सीमे धीरे-धीरे डोरी लपेटता हुआ बोला, " श्रीकान्त, अपनी उस रातकी बात घरमे तूने किसीसे कही तो नहीं ? "

" नहीं, किन्तु यह सभी जानते हैं कि मै तुम्हारे साथ चला गया था।"

इन्द्रने और कोई प्रश्न न किया। मैंने सोचा था कि अब वह उठेगा। किन्तु वह नहीं उठा, चुप बैठा रहा। उसके मुँहपर हमेशा हँसीका-सा भाव रहता था, परन्तु इस समय वह नहीं था। मानो, वह कुछ मुझसे कहना चाहता हो और किसी कारण, कुछ न कह सकता हो, तथा साथ ही, बिना कुछ कहे रहा भी न जाता हो,—बैठे बैठे भी मानों वह आकुलताका अनुभव कर रहा हो। आप लोग शायद यह कह बैठेंगे कि, " यह तो बाबू, तुम्हारी बिल्कुल मिथ्या बात है, इतना मनस्तत्व आविष्कार करनेकी उम्र तो वह तुम्हारी नहीं थी।" मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ। किन्तु आप लोग भी इस बातको भूले जाते हैं कि मैं इन्द्रको प्यार करता था ; एक आदमी दूसरेके मनकी बातको जान सकता है तो केवल सहानुभूति और प्यारसे—उम्र और बुद्धिसे नहीं। समारमे जिसने जितना प्यार किया है दूसरेके मनकी भाषा उसके आगे उतनी ही व्यक्त हो उठी है। यह अत्यन्त कठिन अन्तर्दृष्टि सिर्फ प्रेमके ज़ोरसे ही प्राप्त की जा सकती है, और किसी तरह नहीं। उसका प्रमाण देता हूँ।

इन्द्रने मुँह उठाकर मानों कुछ बोलना चाहा परतु बोल न सकनेसे उसका समस्त मुख अकारण ही रँग गया। झटसे सरकीका एक सोटा उसने तोड लिया और वह उसे नीचा मुँह किये, पानीपर पटकने लगा; फिर बोला, "श्रीकान्त !"

" क्या है भइया ? "

" तेरे,—पास रुपये हैं ? "

" कितने रुपये ? "

"कितने ?—अरे यही चार-पाँच रुपये—"

"हैं। तुम लोगे ?" कहकर मैंने बड़ी प्रसन्नतासे उसके मुखकी ओर देखा। ये थोड़ेसे रुपये ही मेरे पास थे। इन्द्रके काममें आनेकी अपेक्षा इनके और अधिक सद्व्यवहारकी मैं कल्पना भी न कर सकता था! किन्तु कहाँ, इन्द्र तो कुछ खुश न हुआ। उसका मुँह तो मानो और भी अधिक लज्जाके कारण कुछ विचित्र किस्मका हो गया। कुछ देर चुप रहनेके उपरान्त वह बोला, "किंतु मैं इन रुपयोंको तुम्हें लौटा न सकूँगा।"

"मैं इन्हें लौटाना चाहता भी नहीं," यह कहकर गर्वके साथ मैं उसकी ओर देखने लगा।

और भी थोड़ी देरतक नीचा मुँह किये रहनेके उपरान्त वह धीरेसे बोला, "रुपये मैं स्वयं अपने लिए नहीं चाहता। एक आदमीको देने होंगे· इसीसे मैंने माँगे हैं। वे लोग बेचारे बड़े दुखी हैं,—उन्हें खानेको भी नहीं मिलता। क्या तू वहाँ चलेगा ?" निमेष-मात्रमें ही मुझे उस रातकी बात याद आ गई। बोला, "वही न, जिनको रुपया देनेके लिए उस दिन तुम नाव परसे उतरे जा रहे थे ?" इन्द्रने अन्यमनस्क भावसे सिर हिलाकर कहा, "हाँ, वही। रुपया तो मैं खुद ही बहुत-से दे सकता था, परतु जीजी तो किसी तरह लेना ही नहीं चाहतीं। तुझे भी साथ चलना होगा श्रीकान्त, नहीं तो इन रुपयोंको वे न लेंगी, सोचेंगी कि मैं माँके बाक्समेंसे चोरी करके लाया हूँ। चलेगा श्रीकान्त ?"

"मालूम होता है वे तुम्हारी जीजी होती हैं ?"

इन्द्रने कुछ हँसकर कहा, "नहीं, जीजी होती नहीं हैं,—जीजी कहता हूँ। चलेगा न ?" मुझे चुप देखकर वह बोला, "दिनको जानेमें वहाँ कुछ भय नहीं है। कल रविवार है, तू खा-पीकर यहाँ आ जाना, मैं तुझे ले चलूँगा, तुरत ही लौट आवेंगे। चलेगा न भाई ?" इतना कहकर वह जिस प्रकार मेरा हाथ पकड़कर मेरे मुँहकी ओर देखने लगा, उसमें मेरा 'नहीं' कहना संभव नहीं रहा, मैं दुबारा उसकी नौकामें जानेका वचन देकर घर लौट आया।

वचन तो सचमुच ही दे आया, किन्तु वहाँ जाना कितना बड़ा दुःसाहस है, यह तो मुझसे बढ़कर कोई न जानता था। उसी समयसे मेरा मन भारी हो गया और नींदके समयमें भी प्रगाढ़ अशान्तिका भाव मेरे सर्वांगमें विचरण करता रहा। सुबह उठते ही, पहले यही मनमें आया कि आज जिस जगह जानेके लिए वचन-बद्ध हुआ हूँ, उस जगह जानेसे किसी भी तरह मेरा भला

न होगा। किसी सूत्रसे यदि कोई जान जायगा, तो वापिस लौटनेपर जो सजा भुगतनी पड़ेगी, उसकी चाहना तो शायद मझले भइयाके लिए भी छोटे भइया न कर सकेंगे। अन्तमें खा पीकर, पाँच रुपये छिपाकर, जब मैं घरसे बाहर निकला तब यह बात भी अनेक बार मनमें आई कि, जानेकी जरूरत नहीं है। बलासे, न रखा अपने वचनको, और इससे मेरा आता-जाता ही क्या है?'

यथास्थान पहुँचकर देखा कि, सरकीके झुंडके नीचे, उसी छोटी-सी नावके ऊपर, इन्द्र सिर ऊपर उठाये मेरी राह देख रहा है। आँखसे आँख मिलते ही उसने इस तरह हँसकर मुझे बुलाया कि न जानेकी बात अपने मुँहसे मैं निकाल ही न सका। सावधानीसे, धीरे धीरे उतरकर, चुपचाप, मैं नावपर चढ़ गया। इन्द्रने नाव खोल दी।

आज मैं सोचता हूँ कि बहुत जन्मके पुण्योंका फल था जो उस दिन मैं भयके मारे लौट न आया। उस दिनको उपलक्ष्य करके जो चीज मैं देख आया, उसे देखना, सारे जीवन सारी पृथिवी छान डालनेपर भी कितनेसे लोगोंके भाग्यमें होता है? स्वयं मैं भी वैसी वस्तु और कहाँ देख सका हूँ? जीवनमें ऐसा शुभ मुहूर्त अनेक बार नहीं आता। यदि कभी आता भी है तो, वह समस्त चेतनापर ऐसी गम्भीर छाप मार जाता है कि, बादका सारा जीवन मानो उसी साँचेमें ढल जाता है। मैं समझता हूँ कि इसीलिए मैं स्त्री-जातिको कभी तुच्छ रूपमें नहीं देख सका। इसीलिए बुद्धिसे मैं इस प्रकारके चाहे जितने तर्क क्यों न करूँ कि संसारमें क्या पिशाचियाँ नहीं हैं? यदि नहीं, तो राह घाटमें इतनी पाप-मूर्तियाँ किनकी देख पड़ती हैं? सब ही यदि इन्द्रकी जीजी हैं, तो इतने प्रकारके दुःखोंके स्रोत कौन बहाती हैं?—तो भी, न जाने क्यों, मनमें आता है कि यह सब उनके बाह्य आवरण हैं, जिन्हें कि वे जब चाहें तब दूर फेंककर ठीक उन्हींके (दीदीके) समान उच्च आसनपर जाकर विराज सकती हैं। मित्र लोग कहते हैं कि यह मेरा अति जघन्य शोचनीय भ्रम है। मैं इसका भी प्रतिवाद नहीं करता, सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि, यह मेरी युक्ति नहीं है, संस्कार है! इस संस्कारके मूलमें जो है, नहीं मालूम, वह पुण्यवती आज भी जीवित है या नहीं। यदि हो भी तो वह कैसे, कहाँपर है, इसकी खोज खबर लेनेकी चेष्टा भी मैंने नहीं की है। किन्तु फिर भी मन ही मन मैंने उन्हें कितनी बार प्रणाम किया है, इसे भगवान् ही जानते हैं।

श्मशानके उसी सकरे घाटके पास, बड़के वृक्षकी जड़ोंसे, नावको बाँधकर

जब हम दोनों रवाना हुए तब बहुत दिन बाकी था। कुछ दूर चलनेपर, दाहिनी तरफ, वनके भीतर अच्छी तरह देखनेसे एक रास्ता-सा दिखाई दिया। उसीसे होकर इन्द्रने अन्दर प्रवेश किया। करीब दस मिनट चलनेके बाद एक पर्णकुटी दिखाई दी। नजदीक जाकर देखा कि भीतर जानेका रास्ता एक बेंड़ेसे बन्द है। इन्द्रने सावधानीसे, उसका बन्धन खोलकर, प्रवेश किया; और मुझे अन्दर लेकर फिर उसे उसी तरह बाँध दिया। मैंने ऐसा वास-स्थान अपने जीवनमें कभी नहीं देखा। एक तो चारों तरफ निविड़ जंगल, दूसरे सिरके ऊपर एक प्रकाण्ड इमली और पाकरके वृक्षने सारी जगहको मानों अन्धकारमय कर रक्खा था। हमारी आवाज पाकर मुर्गियाँ और उनके बच्चे चीत्कार कर उठे। एक तरफ बँधी हुई दो बकरियाँ मिमिया उठीं। ध्यानसे सामने देखा तो,—अरे बाबा! एक बड़ा भारी अजगर, टेढ़-मेढ़ा होकर, करीब करीब सारे आँगनको व्याप्त करके पड़ा है! पल-भरमें एक अस्फुट चीत्कार करके मुर्गियोंको और भी भयभीत करता हुआ, मैं एकदम उस बेंड़ेपर चढ़ गया। इन्द्र खिल-खिलाकर हँस पड़ा, बोला, "यह किसीसे नहीं बोलता है रे, बड़ा भला साँप है,—इसका नाम है रहीम।" इतना कहकर वह उसके पास गया और उसने उसे, पेट पकड़कर, आँगनकी दूसरी ओर, खींचकर सरका दिया। तब मैंने बेंड़ेपरसे उतरकर दाहिनी ओर देखा। उस पर्णकुटीके बरामदेमें बहुत-सी फटी चटाइयाँ और फटी कथरियोंके बिछौनेपर बैठा हुआ एक दीर्घकाय दुबला-पतला मनुष्य प्रबल खाँसीके मारे हाँफ रहा है। उसके सिरकी जटाएँ ऊँची बँधी हुई थीं और गलेमें विविध प्रकारकी छोटी-बड़ी मालाएँ पड़ी थीं। शरीरके कपड़े अत्यन्त मैले और एक प्रकारके हल्दीके रंगमें रँगे हुए थे। उसकी लम्बी दाढ़ी कपड़ेकी एक चिन्दीसे जटाके साथ बँधी हुई थी। पहले तो मैं उसे पहचान नहीं सका, परन्तु, पासमें आते ही पहचान गया कि वह सपेरा है। पाँच-छः महीने पहले मैं उसे करीब करीब सभी जगह देखा करता था। हमारे घर भी वह कई दफे साँपका खेल दिखाने आया है। इन्द्रने उसे 'शाहजी' कहकर सम्बोधन किया। उसने हमें बैठनेका इशारा किया और हाथ उठाकर इन्द्रको गाँजेका सारा सरंजाम और चिलम दिखा दी। इन्द्रने कुछ भी और ही उसके आदेशका पालन करना शुरू कर दिया। जब चिलम तैयार हुई तब शाहजी, खाँसीसे बेदम होनेपर भी मानो 'चाहे मरूँ चाहे बचूँ' का प्रण

करके, दम खींचने लगा और रत्तीभर भी धुआँ कहींसे बाहर न निकल जाय, इस आशंकाके मारे उसने अपनी बाईं हथेलीसे नाक और मुँह अच्छी तरह दबा लिया, फिर सिरके एक झटकेके साथ उसने चिलम इन्द्रके हाथमें दे दी और कहा, “ पियो । ”

इन्द्रने चिलम पी नहीं । धीरेसे उसे नीचे रखते हुए कहा, “ नहीं । ” शाहजीने अत्यन्त विस्मित होकर कारण पूछा, किन्तु उत्तरके लिए एक क्षणकी भी प्रतीक्षा नहीं की । फिर स्वयं ही उसे उठा लिया और खींच खींचकर निःशेष करके उलटकर रख दिया ! इसके बाद दोनोंके बीच कोमल स्वरमें बात-चीत शुरू हुई जिसमेंसे अधिकांशको न तो मैं सुन सका और न समझ ही सका । किन्तु एक बातको मैंने लक्ष्य किया कि शाहजी हिन्दी बोलते रहे और इन्द्रने बंगला छोड़ और किसी भाषाका व्यवहार न किया ।

शाहजीका कंठ-स्वर क्रम क्रमसे गर्म हो उठा और देखते ही देखते वह पागलोंकी-सी चिल्लाहटमें परिणत हो गया । इन्द्रको उद्देश्य करके वह जो गाली-गलौज करने लगा वह ऐसी थी कि न सुनी जा सकती है और न सही । इन्द्रने तो उसे सह लिया परन्तु मैं कभी नहीं सहता । इसके बाद वह बेंड़ेके सहारे बैठ गया और दम-भर बाद ही गर्दन झुका करके सो गया । दोनों जनोंके, कुछ देरतक, वैसे ही चुपचाप बैठे रहनेके कारण मैं ऊब उठा और बोला, “ समय जा रहा है, तुम्हें क्या वहाँ नहीं जाना ? ”

“ कहाँ श्रीकान्त ? ”

“ अपनी जीजीके यहाँ । क्या रुपये देने नहीं जाना है ? ”

“ अपनी जीजीके लिए ही तो मैं बैठा हूँ । यही तो उनका घर है । ”

“ यही क्या तुम्हारी जीजीका घर है ? यह तो सँपेरे,—मुसलमान—है ! ” इन्द्र कुछ कहनेको उद्यत हुआ,—पर फिर उसे दबा गया और चुप रहकर मेरी ओर ताकने लगा । उसकी दृष्टि बड़ी भारी व्यथासे मानो म्लान हो गई । कुछ ठहरकर बोला, “ एक दिन तुझे सब कहूँगा । साँप खिलाना देखेगा श्रीकान्त ? ”

उसकी बात सुनकर मैं अवाक् हो गया । “ क्या साँपको खिलाओगे तुम ? यदि काट खाय तो ? ”

इन्द्र उठकर घरके अन्दर गया और एक छोटी-सी पिटारी और सँपेरेकी तूँबी (बाजा) ले आया । उसने उसे सामने रक्खा, पिटारीका ढकन

खोला और तूँबी बजाई। मैं डरके मारे काठ हो गया, "पिटारी मत खोलो भाई, भीतर यदि गोखरू साँप हुआ तो?" इन्द्रने इसका जवाब देनेकी भी जरूरत नहीं समझी, केवल इशारेसे बता दिया कि मैं गोखरू साँपको भी खिला सकता हूँ। दूसरे ही क्षण सिर हिला हिलाकर तूँबी बजाते हुए उसने ढक्कनको अलग कर दिया। बस फिर क्या था, एक बड़ा भारी गोखरू साँप एक हाथ ऊँचा होकर फन फैलाकर खड़ा हो गया। मुहूर्त मात्रका भी विलम्ब किये बगैर इन्द्रके हाथके ढक्कनमें उसने जोरसे मुँह मारा और पिटारीमेंसे बाहर निकल पड़ा।

"अरे बापरे!" कहकर इन्द्र आँगनमें उछल पड़ा। मैं बेड़ेपर चढ़ गया। क्रुद्ध सर्पराज, तूँबीपर और एक आघात करके, घरके भीतर घुस गये। इन्द्रका मुँह काला हो गया। उसने कहा, "यह तो एकदम जंगली है। जिसे मैं खिलाया करता था वह यह नहीं है!" भय, झुँझलाहट और खीजसे मुझे करीब करीब रुलाई आ गई। मैं बोला, "क्यों ऐसा काम किया? उसने जाकर कहीं शाहजीको काट खाया तो?" इन्द्र असीम शर्मके मारे गड़ा जा रहा था। बोला, "घरका अर्गल लगा आऊँ? किन्तु यदि पासमें ही छिपा हुआ हो तो?" मैं बोला, "तो फिर, निकलते ही उसे काट खायगा।" निरुपाय भावसे इधर उधर देखकर इन्द्र बोला, "काटने दो ससुरको, जंगली साँप रख छोड़ा है जो,—साले गँजेड़ीको इतनी भी अकल नहीं है।—यह लो वह जीजी आ गईं।—आना मत! आना मत! वहीं खड़ी रहो—" मैंने सिर घुमाकर इन्द्रकी जीजीको देखा। मानो राखसे ढँकी हुई आग हो। जैसे युग-युगान्तरव्यापी कठोर तपस्या समाप्त करके अभी आसनसे ही उठकर आई हो। बाईं ओर कमरपर रस्सीसे बँधी हुई थोड़ी-सी सूखी लकड़ियाँ थीं और दाहिने हाथमें फूलोंकी डलियाके समान एक टोकनीमें कुछ शाक-सब्जी थी। पहिनावेमें हिन्दुस्तानी मुसलमानिनके कपड़े थे, जो गेरुए रंगमें रंगे हुए थे, परन्तु मैले नहीं थे। हाथमें कासेकी दो चूड़ियाँ थीं। माँग हिन्दुस्तानियोंके समान सिन्दूरसे भरी थी। उन्होंने लकड़ीका बोझा नीचे रख दिया और बेंत खोलते खोलते कहा, "क्या है?" इन्द्र बहुत ही व्यस्त होकर बोला, "खोलो मत जीजी, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, एक बड़ा भारी साँप घरमें घुस गया है।" उन्होंने मेरे मुँहकी ओर देखकर मानो कुछ सोचा। इसके बाद थोड़ा-सा हँसकर कहा "नहीं तो। सँपेरेके घरमें साँप

हुआ है, यह तो बड़े अचरजकी बात है! है न, श्रीकान्त?" मैं अनिमेष दृष्टिसे केवल उन्हींके मुँहकी ओर देखता रहा। "किन्तु, यह तो कहो इन्द्रनाथ, वह अंदर किस तरह गया?" इन्द्र बोला, "पिटारीके भीतरसे निकल पड़ा है। एकदम जंगली साँप है।"

"शायद वे अंदर सो रहे हैं, क्यों?" इन्द्रने गुस्सेसे कहा, "गाँजा पीकर एकदम बेहोश पड़े हैं। चिल्ला चिल्लाकर मर जाने पर भी न उठेंगे।" उन्होंने फिर हँसकर कहा, "और यही सुयोग पाकर तुम श्रीकान्तको साँपका खिलाना दिखाने चले थे, क्यों न? अच्छा, आओ, मैं पकड़े देती हूँ।"

"तुम मत जाना जीजी, तुम्हें काट खायगा। शाहजीको उठा दो,—मैं तुम्हें न जाने दूँगा।" यह कहकर और दोनों हाथ पसारकर वह रास्ता रोककर खड़ा हो गया। उसके इस व्याकुल कण्ठ-स्वरमें जो प्रेम प्रकाशित हो उठा, उसे उन्होंने खूब ही अनुभव किया। मुहूर्त-भरके लिए उनकी दोनों आँखें छल छला उठीं; किन्तु उन्हें छिपाकर वे हँसकर बोलीं, "अरे पागल, इतना पुण्य तेरी इस जीजीने नहीं किया। मुझे वह नहीं काटेगा, अभी पकड़े देती हूँ देख—" कहकर बाँसके मंचपरसे एक किरासनकी डिबिया उठाकर और जलाकर वे घरमें गईं। एक मिनट-भरमें ही साँपको पकड़ लाईं और उसे पिटारीमें बंद कर दिया। इन्द्रने चटसे उनके पैरोंपर गिरकर नमस्कार किया और पैरोंकी धूल सिरपर लगाकर कहा, "जीजी, यदि तुम कहीं मेरी जीजी होतीं!" उन्होंने दाहिना हाथ बढ़ाकर इन्द्रका चिबुक स्पर्श किया और उस अँगुलीको चूम लिया। फिर मुँह फेरकर अलक्ष्यमें मानो उन्होंने अपनी दोनों आँखें पोंछ डालीं।

५

सारी घटना सुनते सुनते इन्द्रकी जीजी हठात् दो एक बार इस तरह सिहर उठीं कि यदि इन्द्रका उस तरफ तनिक भी ध्यान होता, तो उसे बड़ा आश्चर्य होता। वह तो न देख पाया, परन्तु मैंने देख लिया। वे कुछ देर तक चुपचाप उसकी ओर देखकर स्नेहभरे तिरस्कारसे बोलीं, "छिः भइया, ऐसा कार्य अब और कभी मत करना। इन सब भयानक जानवरोंसे क्या खिलवाड़ किया जाता है? भाग्यसे तुम्हारे हाथकी पिटारीके ढक्कनपर ही उसने फन मारा, नहीं तो आज कैसा अनर्थ हो जाता, बोलो तो?"

"मैं क्या ऐसा बेवकूफ हूँ जीजी।" इतना कहकर उसने अपनी धोतीका छोर खींचकर कमरमें सूतमें बँधी हुई एक सूखी जड़ी दिखाकर कहा, "यह देख जीजी, पूरी सावधानीके साथ बाँध रक्खी है। यदि यह न होती तो क्या आज वह मुझे काटे बिना छोड़ देता? शाहजीके पाससे इसे प्राप्त करनेमें क्या मुझे कम कष्ट उठाने पड़े हैं? इसके होते हुए तो मुझे कोई भी नहीं काट सकता, और यदि काट भी लेता,—तो भी क्या बिगड़ता?—शाहजीको तुरन्त ही जगाकर उनसे जहर-मोहरा लेकर कटी जगहपर रख देता। अच्छा, जीजी, यह जहर-मोहरा कितनी देरमें सब विष खींच लेता है?—आध घण्टेमें?—एक घण्टेमें?—नहीं, इतनी देर न लगती होगी, क्यों जीजी?"

जीजी, किन्तु, उसी तरह, चुपचाप देखती रहीं। इन्द्र उत्तेजित हो गया था, बोला, "आज दो न जीजी मुझे एक जहर-मोहरा,—तुम्हारे पास तो दो तीन पड़े हैं,—कितने दिनोंसे मैं माँग रहा हूँ।" फिर उत्तरके लिए प्रतीक्षा किये बगैर ही वह क्षुब्ध अभिमानके स्वरमें उसी क्षण बोल उठा, "तुमने तो तुम लोग जो भी कहते हो मैं वही कर देता हूँ,—पर तुम लोग मुझे हमेशा झाँसा देकर कहते हो, आज नहीं कल, कल नहीं परसों,—यदि नहीं देना है तो साफ क्यों नहीं कह देते? मैं फिर नहीं आऊँगा,—जाओ।"

इन्द्रने लक्ष्य नहीं किया, किन्तु, मैंने जीजीकी तरफ देखते हुए स्पष्ट अनुभव किया कि उनका मुख, किसी असीम व्यथा और लज्जाके कारण, मानो एकदम काला हो गया है। किन्तु दूसरे ही क्षण कुछ हँसीका भाव अपने सूखे होठोंपर जबर्दस्ती लाकर उन्होंने कहा, "हाँ रे इन्द्र, क्या तू अपनी जीजीके यहाँ सिर्फ साँपके मंत्र और जहर-मोहरेके लिए ही आया करता है?"

इन्द्र निःसंकोच होकर बोल उठा, "और नहीं तो क्या!" फिर निद्रित शाहजीकी ओर तिरछी नजरसे देखकर बोला, "किन्तु यह मुझे हमेशा झाँसा ही देते रहते हैं—इस तिथिको नहीं, उस तिथिको नहीं—केवल घर एक झाड़नेका मन्त्र दिया था, बस और कुछ देना ही नहीं चाहते। किन्तु आज मुझे खूब मालूम हो गया है जीजी, कि तुम भी कुछ कम नहीं हो—तुम भी सब जानती हो। अब और उनकी खुशामद नहीं करूँगा जीजी, तुम्हारे पाससे ही सब मन्त्र सीख लूँगा।" इतना कहकर उसने मेरी ओर देखा और फिर सहसा एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर शाहजीको लक्ष्य करके उनके प्रति आदरका भाव प्रकट करते हुए कहा, "शाहजी गाँजा चाँजा जरूर पीते हैं श्रीकान्त, किन्तु

तीन दिनके मरे हुए मुर्देको आध घण्टेके भीतर ही उठाकर खड़ा कर सकते हैं,—इतने बड़े उस्ताद हैं ये !—हाँ जीजी, तुम भी तो मुर्देको जिला सकती हो ?"

जीजी कुछ देर चुपचाप देखती रहीं और फिर एकाएक खिलखिलाकर हँस पड़ीं। वह कितना मधुर हास था ! इस तरह मैंने बहुत ही थोड़े लोगोंको हँसते देखा है; किन्तु वह हास, मानों निविड मेघोंसे भरे हुए आकाशकी बिजलीकी चमककी तरह, दूसरे ही क्षण अंधकारमें विलीन हो गया।

किन्तु इन्द्रने उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया, वह एकदम जीजीके गले पड़ गया और बोला, "मैं जानता हूँ कि तुम्हें सब मालूम है; परन्तु मैं कहे देता हूँ कि एक एक करके तुम्हें अपनी सब विद्याएँ देनी होंगी। जितने दिन जीऊँगा उतने दिन तुम्हारा पूरा गुलाम होकर रहूँगा। तुमने कितने मुर्दे जिलाए हैं जीजी ?"

जीजी बोलीं, "मैं तो मुर्दे जिलाना जानती नहीं, इन्द्रनाथ !"

इन्द्रने पूछा, "तुम्हें साहजीने यह मन्त्र नहीं दिया ?" जीजीने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।" इन्द्र, मिनट-भर तक उनके मुँहकी ओर देखते रहनेके उपरान्त, स्वयं भी अपना सिर हिलाते हिलाते बोला, "यह विद्या क्या कोई सीख देना चाहता है जीजी ? अच्छा, कौड़ी चलाना तो तुमने निश्चय ही सीख लिया होगा ?"

जीजी बोली, "कौड़ी चलाना किसे कहते हैं, सो भी तो मैं नहीं जानती भाई।"

इन्द्रको विश्वास नहीं हुआ। वह बोला, "हुश्, जानती कैसे नहीं ! नहीं दूँगी, यही कह दो न !" फिर मेरी ओर देखकर बोला, "कौड़ी चलाना कभी देखा है श्रीकान्त ? दो कौड़ियाँ मंत्र पढ़कर छोड़ दी जाती हैं, वे जहाँ साँप होता है वहाँ जाकर उसके सिरपर जा चिपटती हैं और उसे दस दिन तकके रास्तेसे खींच लाकर हाजिर कर देती हैं। ऐसा ही मन्त्रका जोर है ! अच्छा जीजी, घर बाँधना, देह-बाँधना, धूल पढ़ना—यह सब तो तुम जानती हो न ? यदि जानती न होतीं, तो इस तरह साँपको कैसे पकड़ लेतीं ?" इतना कहकर वह जिज्ञासु-दृष्टिसे जीजीके मुँहकी ओर देखने लगा।

जीजीने बहुत देरतक सिर झुकाए हुए चुपचाप मन ही मन मानों कुछ सोच लिया और फिर मुँह उठाकर धीरेसे कहा, "इन्द्र, तेरी जीजीके पास

ये सब विद्यायें कानी कौड़ीकी भी नहीं हैं, किन्तु, क्यों नहीं हैं, सो यदि तू विश्वास करे भाई, तो आज तेरे आगे सब बातें खोलकर अपनी छातीका बोझ हलका कर डालूँ। बोलो, तुम लोग आज मेरी सब बातोंपर विश्वास करोगे?" बोलते बोलते ही उनके पिछले शब्द एक तरहसे कुछ भारी-से हो उठे।

अभी तक मैं प्रायः कुछ भी न बोला था। इस दफे, सबसे आगे जोरसे बोल उठा, "मैं तुम्हारी सब बातोंपर विश्वास करूँगा जीजी! सबपर—जो तुम कहोगी, सबपर। एक भी बातपर अविश्वास न करूँगा।"

मेरी ओर देखकर वे कुछ हँसी और बोलीं, "विश्वास क्यों न करोगे भाई, तुम भले घरोंके लड़के जो ठहरे! इतर (छोटे) लोग ही अनजान अपरिचित लोगोंकी बातसे सन्देह करने और भयसे पीछे हट जाते हैं। सिवाय इसके मैंने तो कभी झूठ बोला नहीं भाई।" इतना कहकर उन्होंने एक दफे फिर हमारी ओर देखकर म्लान भावसे थोड़ा-सा हँस दिया।

उस समय संध्याकी धुन्ध दूर होकर, आकाशमें चन्द्रमाका उदय हो रहा था और उसकी धुँधली-सी किरण-रेखाएँ, वृक्षोंकी घनी शाखाओं और पत्तोंमेंसे छनकर नीचेके गहरे अंधकारमें पड़ रही थीं।

कुछ देर चुप रहकर जीजी एकाएक बोल उठीं, "इन्द्रनाथ, सोचा था कि आज ही अपनी सब कहानी तुम्हें सुना दूँ। किन्तु सोचकर देखा कि नहीं, अभी वह समय नहीं आया है। परन्तु मेरी एक बातपर अवश्य विश्वास कर लो कि हम लोगोंकी सारी करामात शुरूसे आखिरतक प्रवंचना ही है। इसलिए अब तुम झूठी आशासे शाहजीके पीछे-पीछे चक्कर मत काटो। हम लोग मंत्र-तंत्र कुछ नहीं जानते, मुर्देको भी नहीं जिला सकते; कौड़ी फेंककर साँपको भी पकड़कर नहीं ला सकते। और कोई कर सकता है या नहीं, सो तो मैं नहीं जानती, परन्तु हम लोगोंमें ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है।"

न मालूम क्यों इस अत्यल्प कालके परिचयसे ही मैंने उनके प्रत्येक शब्द-पर असंशय विश्वास कर लिया, किन्तु इतने दिनोंके घनिष्ठ परिचयके होते हुए भी इन्द्र विश्वास न कर सका। वह क्रुद्ध होकर बोला, "यदि शक्ति नहीं है तो तुमने साँपको पकड़ किस तरह लिया?"

जीजी बोलीं "यह तो सिर्फ हाथका कौशल-भर है इन्द्र, किसी मन्त्रका जोर नहीं। साँपका मन्त्र हम लोग नहीं जानते।"

इन्द्र बोला, "यदि नहीं जानते; तो तुम दोनोंने धूर्ततासे मुझसे इतने रुपये क्यों ठग लिये ?"

जीजी तत्काल जवाब न दे सकीं: शायद अपनेको कुछ सँभालने लगीं। इन्द्रने फिर कर्कश कण्ठसे कहा, "तुम सब ठग, धूर्त, चोट्टे हो,—अच्छा दिखाता हूँ तुम लोगोंको इसका मजा।"

पासमें ही एक किरासनकी डिबिया जल रही थी। मैंने उसीके प्रकाशमें देखा, जीजीका मुँह मुर्देके समान सफेद हो गया है। वे भय और संकोचके साथ बोलीं, "हम लोग मदारी जो हैं भाई—ठगना ही तो हमारा व्यवसाय है—"

"तुम्हारा व्यवसाय मैं अभी सब बाहर निकाले देता हूँ—चल रे श्रीकान्त, इन साले धूर्तोंकी छायासे भी बचना चाहिए। हरामजादे, बदजात, धूर्त, बदमाश!" यह कहकर इन्द्र सहसा मेरा हाथ पकड़कर और जोरसे एक झटका देकर खड़ा हो गया और जरा भी विलम्ब किये बिना मुझे खींच ले गया।

इन्द्रको दोष नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उसकी बहुत दिनोंकी बड़ी बड़ी आशाएँ, मानो पलक मारते ही, भूमिसात् हो गई थीं। किन्तु मैं अपनी दोनों आँखोंको जीजीकी उन आँखोंकी ओरसे फिर न लौटा सका। मैं बलपूर्वक इन्द्रसे अपना हाथ छुड़ाकर पाँच रुपये सामने रखते हुए बोला, "तुम्हारे लिए लाया था जीजी,—इन्हें ले लो।"

इन्द्रने झपटकर उन्हें उठा लिया और कहा, "अब और रुपये! धूर्ततासे इन्होंने मुझसे कितने रुपये लिये हैं, सो क्या तुझे मालूम है श्रीकान्त? मैं तो अब यही चाहता हूँ कि ये लोग बिना खाये पिये सूखकर मर जायँ।"

मैंने उसका हाथ दबाकर कहा, "नहीं इन्द्र, दे देने दो,—मैं ये जीजीके लिए ही लाया हूँ?"

"ओः—बड़ी आई तेरी जीजी!" कहकर वह मुझे खींचकर बेड़ेके पास घसीट लाया!

इतनेमें इस गोलमालसे शाहजीका नशा उचट गया। "क्या हुआ! क्या हुआ!" कहते हुए वह उठ बैठा।

इन्द्र मुझे छोड़कर उसकी ओर बढ़ गया और बोला, "डाकू साले! कभी रास्तेमें देख पाया तो चाबुकसे तेरी पीठका चमड़ा उधेड़ दूँगा।"—"क्या

हुआ ?" "बदमाश, साला, जानता कुछ भी नहीं, फिर भी कहता फिरता है, मन्त्रके जोरसे मुर्दे जिलाता हूँ ! यदि कभी रास्तेपर दिखाई दिया तो अबकी बार अच्छी तरह 'देखूँगा' तुझे ?" इतना कहकर उसने एक ऐसा अशिष्ट इशारा किया जिससे कि शाहजी चौंक उठा।

एक तो नशेकी खुमारी, फिर अकस्मात् यह अचिन्त्य काण्ड।—इससे वह 'किंकर्तव्य-विमूढ़' हो गया और उसी भावसे टुकुर टुकुर देखने लगा।

इन्द्र मुझे लेकर जबतक द्वारके बाहर आया, तबतक शायद वह कुछ होशमें आकर शुद्ध बंगालीमें पुकार उठा, "सुन इन्द्रनाथ, क्या हुआ है बोल तो ?" यह पहले ही पहल मैंने उसे बंगालीमें बोलते सुना।

इन्द्र लौटकर बोला, "जन्त्र-मन्त्र तुम कुछ नहीं जानते, फिर क्यों झूठमूठ मुझे धोखा देकर इतने दिनोंतक रुपया ऐंठते रहे ? इसका जवाब दो !"

वह बोला, "'नहीं जानता,' यह तुमसे किसने कहा ?"

इन्द्रने उसी क्षण उस स्तब्ध नतमुखी जीजीकी ओर हाथ बढ़ाकर कहा, "इन्होंने कहा कि तुम्हारे पास कानी कौड़ीकी भी विद्या नहीं है। विद्या है सिर्फ धूर्तताकी और लोगोंको ठगनेकी। यही तुम लोगोंका व्यवसाय है ! मिथ्यावादी, चोर !"

शाहजीकी आँखें भभकसे जल उठीं। वह कैसी भीषण प्रकृतिका आदमी है, इसका परिचय मुझे तबतक भी नहीं था। उसकी केवल उस दृष्टिसे ही मेरे शरीरमें मानों काँटे उठ आये। वह अपनी बिखरी हुई जटाओंको बाँधते बाँधते उठ खड़ा हुआ और सामने आकर बोला, "कहा है, तूने ?"

जीजी उसी तरह नीचा मुँह किये निरुत्तर बैठी रही। इन्द्रने मुझे एक धक्का देकर कहा, "रात हो गई—चल न।" मैंने कहा, "रात अवश्य हो गई है परन्तु मेरे पैर तो जैसे अपनी जगहसे हिलते ही नहीं हैं।" किन्तु इन्द्रने उस ओर भ्रूक्षेप भी न किया। वह मुझे प्रायः जबर्दस्ती ही खींच ले चला।

कुछ कदम आगे बढ़ते ही शाहजीका कंठ-स्वर फिर सुनाई दिया, "क्यों कहा तूने ?"

प्रश्न तो जरूर सुना किन्तु प्रत्युत्तर न सुन सका। थोड़े कदम और अग्रसर होते ही अकस्मात् चारों ओरके उस निबिड़ अन्धकारकी छातीको चीरता हुआ एक तीव्र आर्त्त-स्वर पीछेकी अँधेरी झोंपड़ीमेंसे हमारे कानोंको बेधता हुआ निकल गया, और आँखकी पलक गिरते न गिरते इन्द्र उस [illegible]

अनुसरण करके अदृश्य हो गया। किन्तु मेरे भाग्यमें कुछ और ही था। सामने ही एक बड़ी कँटीली झाड़ी थी। मैं जोरसे उसीपर जा गिरा और काँटोंसे मेरा सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। यह जो हुआ सो हुआ किन्तु अपनेको काँटोंसे छुड़ानेमें ही मुझे करीब दस मिनट लग गये। इस काँटेको छुडाओ तो किसी अन्य काँटेमें कपडा बिंध जाता और उसे छुडाओ तो किसी तीसरेमें जा अटकता। इस प्रकार अनेक कष्ट और विलम्बके उपरान्त जब मैं शाहजीके घरके आँगनके किनारे पहुँचा, तब देखा कि उस आँगनके एक हिस्सेमें जीजी मूर्च्छित पडी हुई है और दूसरे हिस्सेमें दोनोंका—गुरु-शिष्यका बाकायदा मल्ल युद्ध हो रहा है। पासहीमें एक तेजधारवाली बर्छी पड़ी हुई है।

शाहजी शरीरसे अत्यन्त बलवान था, किन्तु उसे पता न था कि इन्द्र उससे भी कितना अधिक बली है। यदि होता तो शायद वह इतने बड़े दुःसाहसका परिचय न देता। देखते ही देखते इन्द्र उसे चित करके उसकी छातीपर चढ़ बैठा और उसकी गर्दनको जोरसे दबोचने लगा। वह ऐसा दबोचना था कि, यदि मैं बाधा न देता तो, शायद, शाहजीका मदारी-जीवन उसी समय समाप्त हो जाता।

बहुत खींच-तानके बाद जब मैंने दोनोंको पृथक् किया तब इन्द्रकी अवस्था देखकर डरके मारे एकदम रो दिया। पहले मैं अंधकारमें देख न सका था कि उसके सब कपडे खूनसे तरबतर हो रहे हैं। इन्द्र हाँफते हाँफते बोला, "साले गँजेड़ीने मुझे साँप मारनेका बर्छा मारा है,—यह देख?" कुरतेकी आस्तीन उठाकर उसने बताया, भुजामें करीब दो तीन इंच गहरा घाव हो गया है,—और उसमेंसे लगातार खून बह रहा है।

इन्द्र बोला, "रो मत, इस कपड़ेसे मेरे घावको खूब खींचकर बाँध दे। अरे खबरदार! ठीक ऐसा ही बैठा रह, उठा तो गलेपर पैर रखकर तेरी जीभ खींचकर बाहर निकाल लूँगा, हरामजादे सूअर!—ले इन्द्र, तू खींचकर बाँध, देरी न कर।" इतना कहकर उसने चर्र चर्र अपनी धोतीके छोरका एक अंश फाड़ डाला। मैं काँपते हाथोंसे घावको बाँधने लगा और शाहजी निकट ही, आसन्नमृत्यु विषैले सर्पकी तरह, बैठा हुआ, चुपचाप देखने लगा।

इन्द्र बोला, "नहीं, तेरा विश्वास नहीं है, तू खून कर डालेगा। मैं तेरे

हाथ बाँधूँगा।" यह कहकर उसने उसीकी गेरुए रंगकी पगड़ीसे खींच खींच कर उसके दोनों हाथ खूब कसकर बाँध दिये। उसने कोई बाधा नहीं दी, प्रतिवाद नहीं किया, जरा-सी चूँ-चपड़ भी न की।

जिस लाठीके प्रहारसे जीजी बेहोश हो गई थी उसे उठाकर एक तरफ रखते हुए इन्द्र बोला, "कैसा नमकहराम शैतान है यह साला! मैंने इसे अपने पिताके न जाने कितने रुपये चुराकर दिये हैं, और यदि जीजीने सिरकी कसम खाकर रोका न होता तो और भी देता। इतनेपर भी यह मुझे बर्छी मार बैठा! श्रीकान्त, इसपर नजर रख जिसमें यह उठ न बैठे,—मैं जीजीकी आँखों और चेहरेपर जलके छींटे देता हूँ।"

पानीके छींटे देकर हवा करते हुए वह बोला, "जिस दिन जीजीने कहा कि 'इन्द्रनाथ, तेरे कमाये हुए पैसे होते तो मैं ले लेती—किन्तु उन्हें लेकर मैं अपना इहलोक-परलोक मिट्टी न करूँगी।' उस दिनसे अबतक इस शैतानके बच्चेने उन्हें कितनी मार मारी है, इसका कोई हिसाब नहीं। इतने पर भी जीजी लकड़ी ढोकर, कंडे बेचकर किसी तरह इसे खिलाती पिलाती हैं, गाँजेके लिए पैसे देती हैं,—फिर भी यह उनका अपना न हुआ। किन्तु अब मैं इसे पुलिसके हाथमें दूँगा, तब छोड़ूँगा,—नहीं तो यह जीजीका खून कर डालेगा। यह खून कर सकता है।"

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मानो वह मनुष्य इस बातसे सिहर उठा और सिर उठाकर उसे तुरन्त नीचा कर लिया। यह सब निमेष-भरमें ही हो गया। किन्तु अपराधीकी निविड़ आशंका मैंने उसके चेहरेपर इस प्रकार परिस्फुट होती हुई देखी कि उसका उस समयका वह चेहरा मुझे आज भी साफ-साफ याद आ जाता है।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कि इस कहानीको, जिसे कि आज मैं लिख रहा हूँ, इतना ही नहीं कि सत्य मानकर ग्रहण करनेमें लोग दुविधा करेंगे परन्तु इसे विचित्र कल्पना कहकर उपहास करनेमें भी शायद संकोच न करेंगे। फिर भी, यह सब कुछ जानते हुए भी, मैंने इसे लिखा है और यही मेरी अभिज्ञताका सच्चा मूल्य है। क्योंकि सत्यके ऊपर खड़े हुए बिना, किसी भी तरह यह सब कथा मुँहसे बाहर नहीं निकाली जा सकती। पग-पगपर डर लगता है कि लोग इसे हँसीमें न उड़ा दें। जगत्में वास्तविक घटनाएँ कल्पनाको भी बहुत दूर पीछे छोड़ जाती हैं,—यह कैफियत स्वयं उसे लेकर करनेमें

किसी तरहकी मदद नहीं करती, बल्कि हाथकी कलमको बार बार खींचकर रोकती है।

पर जाने दो इस बातको। जीजी जब आँखे खोलकर उठ बैठी तब शायद आधी रात हो गई थी। उनकी विह्वलता दूर होते और भी एक घंटा बीत गया। इसके बाद हमारे मुहसे सारा वृत्तात सुनकर वे उठकर धीरे धीरे खड़ी हो गई और शाहजीको बंधन-मुक्त करके बोलीं, " जाओ; अब सो रहो। "

उसके चले जानेके उपरान्त उन्होंने इन्द्रको पास बुलाकर और उसका दाहिना हाथ अपने सिरपर रखकर कहा, " इन्द्र, मेरे इस सिरपर हाथ रखकर शपथ तो कर भाई, कि अब फिर कभी तू इस घरमें न आयगा। हमारा जो होना हो सो हो, तू अब कोई खबर न लेना। "

इन्द्र पहले तो अवाक् हो रहा. परन्तु दूसरे ही क्षण आगकी तरह जल उठा और बोला, " ठीक ही तो है! मेरा खून किये डालता था, सो तो कुछ भी नहीं। और मैंने जो उसे थोड़ी देरके लिए बाँध दिया, सो इसपर तुम्हारा इतना गुस्सा! ऐसा न हो तो फिर यह कलियुग ही क्यो कहलावे! परन्तु तुम दोनों कितने नमकहराम हो! आ रे श्रीकान्त, चले, बस हो चुका। "

जीजी चुप हो रहीं—उन्होंने इस अभियोगका ज़रा भी प्रतिवाद नहीं किया। क्यों नहीं किया सो, पीछे मैंने चाहे जितना क्यों न समझा हो, परन्तु उस समय मैं बिलकुल न समझ सका। तथापि मैं अलक्ष्य रूपसे चुपचाप वे पाच रुपये वहीं खम्भेके पास रखकर इन्द्रके पीछे पीछे चल दिया। आँगनके बाहर आकर इन्द्र चिल्लाकर बोला, " हिन्दूकी लड़की होकर जो एक मुसलमानके साथ भाग आती है, उसका धर्म-कर्म ही क्या! चूल्हेमें चली जाय, अब मैं न कोई खोज ही करूँगा और न खबर ही लूँगा।—हरामजादा, नीच कहींका! " यह कहकर वह तेजीसे उस वन-पथको लाँघकर चल दिया।

हम दोनों नावमें आकर बैठ गये, इंद्र चुपचाप नाव खेने लगा और बीच बीचमें हाथ उठा-उठाकर आँखें पोंछने लगा। यह साफ साफ समझकर कि वह रो रहा है, मैंने और कोई भी प्रश्न नहीं किया।

श्मशानके उसी रास्तेसे मैं लौट आया और उसी रास्ते अब भी चला जा रहा हूँ, परन्तु, न मालूम क्यों, आज मेरे मनमें भयकी कोई बात ही नहीं आती। मालूम होता है, शायद, उस समय मन इतना विह्वल

और इतना ढँका हुआ था कि इतनी रातको किस तरह घरमें घुसूँगा और घुसनेपर क्या दशा होगी, इसकी चिन्ता भी उसमें स्थान न पा सकी।

प्रायः पिछली रातको नाव घाटपर आ लगी। मुझे उतारकर इन्द्र बोला, "घर चला जा श्रीकान्त, तू बड़ा अपशकुनिया है। तुझे साथ लेनेसे एक न एक फसाद उठ खड़ा होता है। आजसे अब तुझे किसी भी कार्यके लिए न बुलाऊँगा,—और तू भी अब मेरे सामने न आना। जा, चला जा।" इतना कहकर वह गहरे पानीमें नौका ठेलकर देखते ही देखते घुमावकी तरफ अदृश्य हो गया। विस्मित, व्यथित और स्तब्ध होकर मैं निर्जन नदीके तीरपर अकेला खड़ा रह गया।

६

निस्तब्ध गम्भीर रातमें माता गंगाके किनारे बिलकुल अकारण ही, जब इन्द्र मुझे बिलकुल अकेला छोड़कर चला गया, तब मैं रुलाईको और न सँभाल सका। उसे मैं प्यार करता हूँ, इसका उसने कोई मूल्य ही नहीं समझा। दूसरेके घरमें रहते हुए कठोर शासन-जालकी उपेक्षा करके, उसके साथ गया, इसकी भी उसने कोई कद्र नहीं की। सिवाय इसके, मुझे अप-शकुनिया अकर्मण्य कहकर और अकेले असहाय अवस्थामें विदा करके, बेपरवाहीसे चला गया। उसकी यह निष्ठुरता मुझे कितनी अधिक चुभी इसको बतानेकी चेष्टा करना भी निरर्थक है। इसके बाद, बहुत दिनोंतक न उसने मुझे खोजा और न मैंने ही उसे। दैवात् यदि कभी राह-घाटमें मिल भी जाता तो मैं इस तरह मुँह मोड़कर चला जाता मानो उसे देखा ही न हो। किन्तु मेरा यह 'मानो,' मुझे ही हमेशा तुसकी आगकी तरह जलाया करता, उसकी जरा-सी भी हानि न कर सकता। लड़कोंके दलमें उसका बड़ा सम्मान था। फुटबाल-क्रिकेटका वह दलपति था, जिमनास्टिक अखाड़ेका मास्टर था। उसके कितने ही अनुचर थे, और कितने ही भक्त। मैं तो उसकी तुलनामें कुछ भी न था। फिर,—क्यों वह दो ही दिनके परिचयमें मुझे 'मित्र' कहने लगा और फिर क्यों उसने त्याग दिया? परन्तु जब उसने त्याग दिया तब मैं भी जबर्दस्ती करके उससे सम्बन्ध जोड़ने नहीं गया।

मुझे खूब याद है कि मेरे संगी-साथी जब इन्द्रका उल्लेख करके उसके सम्बन्धमें तरह-तरहकी अद्भुत अचरजभरी बातें कहना शुरू कर देते, तब

मैं चुपचाप उन्हें सुनता रहता। छोटी-सी बात कहकर भी मैंने कभी यह जाहिर नहीं किया कि वह मुझे जानता है अथवा उसके सम्बन्धमें मैं कुछ जानता हूँ। न जाने कैसे मैं उस उम्रमें ही यह जान गया था कि 'बड़े' और 'छोटे' की दोस्तीका परिणाम प्रायः ऐसा ही होता है। भविष्य जीवनमें मैं भाग्यवश अनेक 'बड़े' मित्रोंके संसर्गमें आऊँगा इसलिए, शायद, भगवानने दया करके यह सहज-ज्ञान मुझे दे दिया था जिससे कि मैं कभी किसी भी कारणसे अपनी अवस्थाका अतिक्रम करके अर्थात् अपनी योग्यताका खयाल किये बिना मित्रताका मूल्य आँकने न जाऊँ। नहीं तो देखते देखते 'मित्र' प्रभु बन जाता है, और साधकी 'मित्रता' का पाश दासत्वकी बेड़ी बनकर 'छोटे' के पैरोंको जकड़ लेता है। यह दिव्यज्ञान इतने सहजमें और इस तरह सत्य रूपमें मुझे प्राप्त हो गया था कि इससे मैं हमेशाके लिए अपमान और लांछनाओंसे छुटकारा पा गया हूँ।

तीन-चार महीने कट गये। दोनोंने ही दोनोंको त्याग दिया,—भले ही इसकी वेदना किसी पक्षके लिए कितनी ही निदारुण क्यों न हो;—किसीने किसीकी भी खोज खबर नहीं ली।

दत्त-परिवारके घरमें काली-पूजाके उपलक्षमें उस मुहल्लेका शौकिया नाटक-स्टेज तैयार हो रहा था। 'मेघनादवध' का अभिनय होनेवाला था। इसके पहले देहातमें यात्रा* तो अनेक बार देखी थी किन्तु नाटक अधिक नहीं देखे थे। मैंने सारे दिन न नहाया, न खाया और न विश्राम ही किया। स्टेज बनानेमें सहायता कर सकनेसे ही मैं मानों बिलकुल कृतार्थ हो गया था। इतना ही नहीं, जो सज्जन रामका अभिनय करनेवाले थे उन्होंने स्वयं मुझसे उस दिन एक रस्सी पकड़े रहनेके लिए कहा था। इसलिए मुझे बड़ी आशा थी कि रात्रिमें जब लड़के कनातके छेदोंमेंसे अन्दर ग्रीन-रूममें झाँकेंगे और मार तथा लाठीके हूले खायेंगे, तब मैं 'श्रीराम' की कृपासे बच जाऊँगा। शायद, वे मुझे देखकर भीतर भी एकाध बार जाने दें। किन्तु हायरे दुर्भाग्य! सारे दिन जी जान लगाकर जो परिश्रम किया, संध्याके बाद उसका कुछ भी पुरस्कार नहीं मिला। घण्टों ग्रीन-रूमके द्वारपर खड़ा रहा, 'रामचन्द्र'

---

* बंगालमें जो दृश्यपट-हीन अभिनय होते हैं, उन्हें 'यात्रा' कहते हैं, जैसे कि यहाँपर रामलीला होती है।

कितने ही बार आये और गये, किन्तु, उन्होंने मुझे न पहिचाना। एक बार पूछा भी नहीं कि मैं इस तरह खड़ा क्यों हूँ। हायरे अकृतज्ञ राम! क्या उसी पकड़वानेका मतलब भी तुम्हारा एकबारगी समाप्त हो गया?

रात्रिके दस बजे नाटककी पहली घंटी बजी। नितान्त खिन्न चित्तसे, सारे व्यापारके प्रति श्रद्धाहीन होकर, परदेके सामने ही एक जगहपर मैंने दखल जमाया और वहीं बैठ गया। किन्तु थोड़ी ही देरमें मान रूठना भूल गया। कैसा सुन्दर नाटक था! जीवनमें मैंने बहुत-से नाटक देखे हैं, किन्तु वैसा कभी नहीं देखा। मेघनाद स्वयं एक अद्भुत तमाशा था। उसकी छह हाथ ऊँची देह और चार साढ़े चार हाथ पेटका घेरा था। सभी कहते थे कि यदि यह मर गया तो बैल-गाड़ीपर ले जानेके सिवाय और कोई उपाय नहीं। बहुत दिनोंकी बात हो गई। मुझे सारी घटनाका स्मरण नहीं है। किन्तु इतना स्मरण है, कि उसने उस दिन जो विक्रम दिखाया वह हमारे देशके हारान पल्साई भीमके अभिनयमें सागोनकी डाल कंधेपर रखकर और दाँत किड़मिड़ाकर भी नहीं दिखा सकते।

ड्राप सीन उठा। जान पड़ा,—वे लक्ष्मण ही होंगे,—थोड़ा बहुत वीरत्व प्रकाश कर रहे हैं। इसी समय वही मेघनाद कहींसे एक छलांग मारकर सामने आ धमका। सारा स्टेज थरथराकर काँप उठा, फुट-लाइटके पाँच छः ग्लोब उलटकर बुझ गये,—और साथ ही साथ उनका खुदका पेट बाँधनेका जरीका कमरपट्टा भी तड़ाकसे टूट गया। एक हल चल-सी मच गई। उसे बैठ जानेके लिए कई लोग तो भयभीत चीत्कार कर उठे, और कई लोग सीन ड्राप कर देनेके लिए चिल्ला उठे,—परन्तु बहादुर मेघनाद, किसीकी भी किसी बातसे, विचलित नहीं हुआ। बाएँ हाथके धनुषको फेंककर उसने पाटलूनको थाम लिया और दाहिने हाथसे केवल तीरोंसे ही युद्ध करना शुरू किया।

धन्य वीर! धन्य वीरत्व! मानता हूँ कि मैंने तरह तरहके युद्ध देखे हैं किन्तु हाथमें धनुष नहीं, बाएँ हाथकी अवस्था भी युद्ध-क्षेत्रके लिए अनुकूल नहीं,—फिर भी केवल दाहिने हाथ और सिर्फ तीरोंसे लगातार लड़ाई क्या कभी किसीने देखी है! अन्तमें उसीकी जीत हुई। शत्रुको लाचार आत्मरक्षा करनी पड़ी।

आनन्दकी सीमा नहीं थी, मग्न होकर देख रहा था और मन ही मन उस

विचित्र लड़ाईके लिए उसकी शत-कोटि प्रशंसा कर रहा था। ऐसे ही समय पीठके ऊपर एक उँगलीका दबाव पड़ा। मुँह घुमाकर देखा तो इन्द्र।

वह धीरेसे बोला, "बाहर आ श्रीकान्त,—जीजी तुझे बुलाती हैं।" बिजलीके द्वारा छू जानेके समान मैं सीधा खड़ा हो गया और बोला "कहाँ हैं वे?"

"बाहर तो आ, कहता हूँ।" रास्तेपर आनेपर वह, सिर्फ 'मेरे साथ चल' कहकर चलने लगा।

गंगाके घाटपर पहुँचकर देखा, उसकी नाव बँधी हुई है—चुपचाप हम दोनों उसपर जा बैठे, इंद्रने बन्धन खोल दिया।

फिर उसी अंधकार-पूर्ण जंगलके रास्तेसे होते हुए दोनों जनें शाहजीकी कुटीमें जा पहुँचे। उस समय, शायद रात्रि अधिक बाकी नहीं थी।

किरासिनका एक दीपक जलाये जीजी बैठी हुई थीं। उनकी गोदमें शाहजीका सिर रक्खा हुआ था और उनके पैरोंके पास एक बड़ा लम्बा काला साँप पड़ा था।

जीजीने कोमल स्वरमें सारी घटना संक्षेपमें कह सुनाई। आज दोपहरको किसीके घरसे साँप पकड़नेका बुलावा आया था। वहाँ इस साँपको पकड़नेमें जो इनाम मिला उसने उससे ताड़ी लेकर पी ली और चढ़े नशेमें संध्याके कुछ पहले घर लौट आया। फिर जीजीके बार बार मना करनेपर भी वह उस साँपको खिलानेके लिए उद्यत हुआ और देरतक खिलाता भी रहा। परन्तु अंतमें खेलको समाप्त करनेके पहले, जब वह उसे पूँछ पकड़कर हंडीमें बन्द करने लगा तब नशेकी झोंकमें आकर ज्यों ही उसके मुखको अपने मुखके पास लाकर, चुम्बन करके, अपना प्यार प्रकट करने गया, त्यों ही उसने भी अपना प्यार व्यक्त करनेको शाहजीके गलेपर तीव्र चुम्बन अंकित कर दिया।

जीजीने अपने मैले आँचलके छोरसे अपनी आँखें पोंछते हुए मुझे लक्ष्य करके कहा, "श्रीकान्त, उसी समय उन्हें ज्ञात हुआ कि अब समय अधिक नहीं है। तब उन्होंने यह कहकर कि 'आ रे, अब हम दोनों इस दुनियासे एक साथ ही कूच करें' साँपके सिरको पैरके नीचे दबा लिया और दोनों हाथोंसे उसकी पूँछ खींचकर इतना लम्बा करके फेंक दिया। इसके बाद दोनोंका ही 'खेल' समाप्त हो गया!" इतना कहकर उन्होंने, हाथसे अत्यन्त वेदनाके साथ, शाहजीके मुखके ऊपरका कपड़ा दूर कर दिया और

बहुत सावधानीसे उसके नीले होठोंको अपने हाथसे स्पर्श करके कहा, "जाने दो, अच्छा ही हुआ इन्द्रनाथ, भगवानको मैं तनिक भी दोष नहीं देती।"

हम दोनोंमेंसे किसीसे भी बोलते न बन पड़ा। उस कण्ठ-स्वरमें जो मर्मान्तिक वेदना, जो प्रार्थना, और जो घना अभिमान प्रकाशित हुआ, उसे जिसने सुना उसके लिए, भूल जाना इस जीवनमें कभी संभव नहीं, किन्तु किसके लिए था यह अभिमान! और प्रार्थना भी किसके लिए?

कुछ देर स्थिर रहकर वे बोलीं, "तुम लोग अभी बच्चे हो, किन्तु, दोनोंको छोड़कर मेरा तो कोई और है नहीं भाई; इसीलिए तुमसे भिक्षा माँगती हूँ कि इनका कुछ उपाय कर जाओ!" फिर उँगलीसे कुटीके दक्षिण ओरके जंगलको बताकर कहा, "वहाँपर जगह है। इन्द्रनाथ, बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि यदि मैं मर जाऊँ तो उसी जगह जा सोऊँ। सुबह होते ही उसी जगह ले जाकर इन्हें सुला देना। इस जीवनमें इन्होंने अनेक कष्ट भोगे हैं,—वहाँ कुछ शान्ति पावेंगे।"

इन्द्रने पूछा, "शाहजी क्या कबरमें दफनाये जायँगे!"

जीजी बोलीं, "मुसलमान जब हैं तब कबरमें ही दफनाना होगा भाई!"

इन्द्रने पुनः पूछा, "जीजी, क्या तुम भी मुसलमान हो?"

जीजी बोलीं, "हाँ, मुसलमान नहीं तो और क्या हूँ?"

उत्तर सुनकर इन्द्र भी मानों कुछ संकुचित और कुण्ठित हो उठा। उसके चेहरेके भावसे अच्छी तरह देख पड़ता था कि इस जवाबकी उसने आशा नहीं की थी। जीजीको वह दर असल चाहता था। इसीलिए मन ही मन वह एक गुप्त आशा पोषण कर रहा था कि उसकी जीजी उसीके समाजकी एक स्त्री है। परन्तु मुझे उनके कहनेपर विश्वास नहीं हुआ। खुद उनके मुँहसे स्वीकारोक्ति सुनकर भी मेरे मनमें यह बात न बैठी कि वे हिन्दू-कन्या नहीं हैं।

बाकी रात भी कट गई। इन्द्र निर्दिष्ट स्थानमें जाकर कबर खोद आया और हम तीनों जनोंने ले जाकर शाहजीकी मृत देहको समाहित कर दिया। गंगाजीके ठीक ऊपर, कंकरोंका एक कगारा टूटकर, मानो किसीकी ठीक अन्तिम शय्याके लिए ही अपने आप यह जगह बन गई थी। २०—२५ हाथ नीचे ही जाह्नवी मैयाकी धारा थी,—और सिरके ऊपर वन्य-लताओंका आच्छादन। किसी प्रिय वस्तुको सावधानीसे छुपा रखनेके ही लिए मानों यह स्थान बनाया गया था। बड़े ही भाराक्रान्त हृदयसे हम तीनों जने पास ही

पास बैठे,—और एक जन हमारी गोदके ही पास मिट्टीके नीचे चिर-निद्रामें अभिभूत होकर सो गया। तब भी सूर्योदय नहीं हुआ था,—नीचेसे मन्द-स्रोता भागीरथीका कलकल शब्द कानोंमें आने लगा,—सिरके ऊपर, आसपास, वनके पक्षी प्रभाती गाने लगे। कल जो था आज वह नहीं है। कल सुबह क्या यह सोचा था कि आज रात इस तरह बीतेगी? कौन जानता था कि एक मनुष्यका शेष मुहूर्त इतने निकट आ पहुँचा है?

हठात् जीजी उसकी कब्रपर लोट गईं और विदीर्ण कंठसे चिल्लाकर रो पड़ीं, "मा गंगा, मुझे भी अपने चरणोंमें स्थान दो, मेरे लिए अब और कहीं जगह नहीं है।" उनकी वह प्रार्थना, वह निवेदन, कितना मर्मान्तिक सत्य था यह उस दिन मैं उतनी तीव्रतामें अनुभव नहीं कर सका था जितना कि उसके दो दिन बाद कर सका। इन्द्रने एक बार मेरी ओर आँखें उठाकर देखा, इसके बाद उस आर्त्त-स्वरमें कहा, "जीजी, तुम मेरे यहाँ चलो,—मेरी माँ अब भी जीती हैं, वे तुम्हें फेंकेंगी नहीं, अपनी गोदमें उठा लेंगी। वे प्रेम-मूर्ति हैं, एक बार चलकर तुम सिर्फ उनके सामने खड़ी भर हो जाना। चलो, तुम हिन्दूहीकी लड़की हो जीजी, मुसलमानिन किसी तरह भी नहीं!"

जीजी कुछ बोली नहीं, कुछ देर उसी तरह मूर्छिता-सी पड़ी रहीं और अन्तमें उठ बैठीं। इसके बाद उठकर हम तीनोंने गंगा-स्नान किया। जीजीने हाथकी चूड़ियाँ और सुहागकी कंठी तोड़कर गंगामें बहा दी। मिट्टीसे मस्तकका सिन्दूर पोंछकर, सद्य-विधवाके वेषमें सूर्योदयके साथ ही साथ वे कुटीमें लौट आईं।

इतने दिनों बाद पहले पहल आज उन्होंने कहा कि शाहजी उनका पति था किन्तु, इन्द्रके मनमें यह बात अच्छी तरह जमकर बैठती ही नहीं थी। संदिग्ध स्वरसे उसने प्रश्न किया, "किन्तु तुम तो हिन्दूकी लड़की हो जीजी?"

जीजी बोली, "हाँ, ब्राह्मणकी लड़की हूँ, और वे भी ब्राह्मण थे।"

इन्द्र कुछ देर अवाक् हो रहा, फिर बोला, "उन्होंने अपनी जात क्यों छोड़ दी?"

जीजी बोली, "सो बात मैं अच्छी तरह नहीं जानती भाई। किन्तु जब उन्होंने अपनी जात खो दी, तो उसके साथ मेरी भी खो गई। स्त्री सहधर्मिणी जो है! नहीं तो वैसे मैंने अपने हाथों अपनी जाति भी नहीं छोड़ी,—और किसी दिन किसी तरहका अनाचार भी नहीं किया।"

इन्द्र गाढ़े स्वरमें बोला, "सो तो मैं देखता हूँ जीजी! इसीलिए तो

जब तब मेरे मनमें यही बात आती रही है, मुझे माफ करना जीजी!—तुम कैसे यहाँ आ पड़ीं, तुम्हारी किस तरह ऐसी दुर्बुद्धि हुई। परन्तु अब मैं तुम्हारी कोई बात नहीं मानूँगा, मेरे घर तुम्हें चलना ही पड़ेगा। चलो, इसी वक्त चलो।"

जीजी देर तक चुपचाप मानों कुछ सोचती रही, फिर मुँह उठाकर धीरे धीरे बोलीं, "अभी मैं कहीं भी जा न सकूँगी, इन्द्रनाथ।"

"क्यों नहीं जा सकोगी जीजी?"

जीजी बोलीं, "मुझे मालूम है कि वे कुछ 'देना' कर गये हैं। जबतक उसे चुका न दूँ, तबतक मैं कहीं हिल नहीं सकती।"

इन्द्र हठात् क्रुद्ध हो उठा, बोला, "सो तो मैं भी जानता हूँ। ताड़ीकी दुकानका, गाँजेकी दूकानका जरूर कुछ देना होगा, किन्तु इससे तुम्हें क्या? किसकी ताकत है कि तुमसे रुपया माँगे? चलो तुम मेरे साथ, देखूँ, कौन रोकता है तुम्हें!"

इतने दुखमें भी जीजीको कुछ हँसी आ गई। बोलीं, "अरे पागल, मुझे रोकनेवाला मेरा खुदका ही धर्म है। पतिका ऋण मेरा खुदका ही ऋण है और उन लेनेवालोंको तुम किस तरह रोक सकोगे भाई? यह नहीं हो सकता। आज तुम लोग घर जाओ,—मेरे पास जो कुछ थोड़ा-बहुत है, उसे बेच-बाच कर कर्ज चुकानेकी कोशिश करूँगी।—कल परसों फिर किसी दिन आना।"

इतनी देर मैं चुपचाप ही था। इस बार बोला "जीजी, मेरे पास घरमें और भी चार-पाँच रुपये पड़े हैं,—ले आऊँ क्या?" बात पूरी भी न होने पाई थी कि वे उठकर खड़ी हो गईं और छोटे बच्चेकी तरह मुझे अपनी छातीसे लगाकर, मेरे मस्तकपर अपने होंठ छुआकर, मेरे मुँहकी ओर प्रेमसे देखती हुई बोलीं, "नहीं भइया, और लानेकी जरूरत नहीं है। उस दिन तुम पाँच रुपये रख गये थे, तुम्हारी वह दया मैं मरनेतक याद रखूँगी, भइया! आशीर्वाद दिये जाती हूँ कि भगवान सदा तुम्हारे हृदयके भीतर रहें और इसी तरह दुखियोंके लिए आँसू बहाते रहो।" बोलते बोलते ही उनकी आँखोंसे झर झर नीर झरने लगा।

करीब आठ नौ बजे हम घर जानेको तैयार हुए। उस दिन वे साथ साथ रास्तेतक पहुँचाने आईं। जाते समय इन्द्रका हाथ पकड़कर बोलीं, "इन्द्रनाथ, श्रीकान्तको तो आशीर्वाद दे दिया, किन्तु तुम्हें आशीर्वाद

देनेका साहस मुझमें नहीं है। तुम मनुष्यके आशीर्वादके परे हो। इसलिए मैंने आज मन ही मन तुम्हे भगवानके श्रीचरणोंमें सौंप दिया है। वे तुम्हें अपना लें।"

इन्द्रको उन्होंने पहचान लिया था। रोकते हुए भी इन्द्रने उनके पैरोंकी धूलि सिरपर लेकर प्रणाम किया और रोते रोते कहा, "जीजी, इस जङ्गलमें तुम्हें अकेली छोड जानेको मेरा किसी तरह साहस नहीं होता। मनमें न जाने क्यों, ऐसा लगता है कि मैं तुम्हे और न देख पाऊँगा!"

जीजीने उसका कुछ जवाब नहीं दिया, सहसा मुँह फेरकर आँखें पोंछती हुई वे उसी वन-पथसे अपनी शोकसे ढँकी हुई उस शून्य कुटीमें लौट गईं। जहाँ तक दिखाई देती रहीं वहाँतक मैं उनकी ओर देखता रहा। किन्तु उन्होंने एक बार भी लौटकर नहीं देखा,—उसी तरह, मस्तक नीचा किये, एक ही भावसे चलती हुई वे दृष्टिसे ओझल हो गईं और तब, उन्होंने लौटकर क्यों नहीं देखा, इसे मन ही मन हम दोनों ही जनोंने अनुभव किया।

तीन दिन बाद स्कूलकी छुट्टी होते ही बाहर आकर देखा कि इन्द्रनाथ फाटकके बाहर खड़ा है। उसका मुँह अत्यंत शुष्क हो रहा था, पैरोंमें जूते नहीं थे और वे घुटनोंतक धूलमें भरे हुए थे। उस अत्यन्त दीन चेहरेको देख कर मैं भयभीत हो गया। वह बड़े आदमीका लडका था और साधारणतया बाहरसे कुछ शौकीन भी था। ऐसी अवस्थामें मैंने उसको कभी नहीं देखा था और मैं समझता हूँ कि और किसीने भी न देखा होगा। इशारा करके मुझे मैदानकी ओर ले जाकर उसने कहा, "जीजी नहीं हैं। कहीं चली गईं।" मेरे मुँहकी ओर उसने आँख उठाकर भी नहीं देखा। बोला, "कलसे कितनी जगह जाकर मैं खोज आया हूँ, परन्तु कहीं वे नहीं दिखाई दीं। तेरे लिए वे एक चिट्ठी लिखकर रख गईं हैं; यह ले।" इतना कहकर एक मुडा हुआ पीला कागज मेरे हाथमें थमाकर वह जल्दी जल्दी पैर बढाता हुआ दूसरी ओर चल दिया। जान पड़ा कि हृदय उसका इतना पीडित, इतना शोकातुर हो रहा था कि किसीके साथ आलोचना करना उसके लिए असाध्य था।

उसी जगह मैं धमसे बैठ गया और घडी खोलकर उस कागजको मैंने अपनी आँखोंके सामने रखा। उसमें जो कुछ लिखा था, इतने समय बाद, यद्यपि वह सब याद नहीं रहा है फिर भी बहुत-सी बातें याद कर सकता हूँ।— लिखा था, "श्रीकान्त, जाते समय मैं तुम लोगोंको आशीर्वाद दिये जाती

हूँ। केवल आज ही नहीं, जितने दिन जीऊँगी तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी। किन्तु मेरे लिए तुम दुःख मत करना। इन्द्रनाथ मुझे ढूँढ़ता फिरेगा, यह मैं जानती हूँ; किन्तु तुम उसे समझाकर रोकना। मेरी सब बातें तुम आज ही नहीं समझ सकोगे; किन्तु, बड़े होनेपर एक दिन अवश्य समझोगे, इस आशासे यह पत्र लिखे जा रही हूँ। अपनी कहानी अपने ही मुँहसे तुमसे कह जा सकती थी, परन्तु, न जाने क्यों, नहीं कह सकी।—कहूँ कहूँ सोचते हुए भी न जाने क्यों चुप रह गई। परन्तु, यदि आज न कह सकी तो फिर कभी कहनेका मौका न मिलेगा।

"मेरी कहानी सिर्फ मेरी कहानी ही नहीं है भाई,—मेरे स्वामीकी कहानी भी है। और फिर, वह भी कुछ अच्छी कहानी नहीं है। मेरे इस जन्मके पाप कितने हैं, सो तो मैं नहीं जानती; किन्तु पूर्व जन्मके सञ्चित पापोंकी कोई सीमा-परिसीमा नहीं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इसीलिए जब जब मैंने कहना चाहा है तब तब मेरे मनमें यही आया है कि, स्त्री होकर, अपने मुँहसे, पतिकी निन्दा करके, उस पापके बोझेको और भी भाराक्रान्त नहीं करूँगी। किन्तु, अब वे परलोक चले गये। और परलोक चले गये इसलिए उसके कहनेमें कोई दोष नहीं है, यह मैं नहीं मानती। फिर भी न जाने क्यों, अपनी इस अन्तविहीन दुःख-कथाको तुम्हें जनाए बगैर, मैं किसी तरह भी विदा लेनेमें समर्थ नहीं हो रही हूँ।

"श्रीकान्त, तुम्हारी इस दुःखिनी जीजीका नाम अन्नदा है। पतिका नाम क्यों छिपा रही हूँ, इसका कारण, इस लेखको, शेषपर्यन्त पढ़नेके बाद, मालूम होगा।

"मेरे पिता बड़े आदमी हैं। उनके कोई लड़का नहीं है। हम सिर्फ दो बहिनें थीं। इसीलिए, मेरे पिताने मेरे पतिको एक दरिद्रके घरसे लाकर, अपने पास रखकर, पढ़ा-लिखाकर 'आदमी' बनाना चाहा था। वे उन्हें पढ़ा लिखा तो अवश्य सके, किन्तु 'आदमी' नहीं बना सके। मेरी बड़ी बहिन विधवा होकर घर ही रहती थी।—उसीकी हत्या करके वे एक दिन लापता हो गये। यह दुष्ट कर्म उन्होंने क्यों किया, इसका हेतु तुम अभी बच्चे हो, इसलिए न समझ सकोगे, फिर भी किसी दिन जान लोगे। पर सोचो तो श्रीकान्त, यह दुःख कितना बड़ा है? यह लज्जा कितनी मर्मान्तक है? फिर भी तुम्हारी जीजीने सब कुछ सह लिया। किन्तु पति उसपर जिस

अपमानकी अग्निको उन्होंने अपनी स्त्रीके हृदयमें जला दिया था उस ज्वालाको तुम्हारी जीजी आज तक भी बुझा नहीं सकी। पर जाने दो उस बातको।—

" उक्त घटनाके सात वर्ष बाद मैं उन्हें फिर देख पाई। जिस वेशमें तुमने उन्हें देखा था उसी वेशमें वे हमारे घरके सामने साँपका खेल दिखा रहे थे। उन्हे और कोई तो नहीं पहचान सका, किन्तु मैंने पहचान लिया। मेरी आँखोंको वे धोखा नहीं दे सके। सुना है कि यह दुःसाहस उन्होंने मेरे लिए ही किया था। परन्तु यह झूठ है! फिर भी, एक दिन गहरी रातमें, खिड़कीका द्वार खोलकर मैंने पतिके लिए ही गृह-त्याग कर दिया। किन्तु सबने यही सुना, यही जाना कि अन्नदा कुलको कलंक लगाकर घरसे निकल गई।

" यह कलंकका बोझा मुझे हमेशा ही अपने ऊपर लादे फिरना होगा। कोई उपाय नहीं है क्योंकि, पतिके जीवित रहते तो अपने आपको प्रकट नहीं कर सकी,—पिताको पहचानती थी; वे कभी, किसी तरह भी, अपनी संतानकी हत्या करनेवालेको क्षमा नहीं कर सकते। किन्तु आज यद्यपि वह भय नहीं है,—आज जाकर यह सब हाल उनसे कह सकती हूँ, किन्तु इसपर, इतने दिनों बाद, कौन विश्वास करेगा? इसलिए पितृ-गृहमें मेरे लिए अब कोई स्थान नहीं है। और फिर, अब मैं मुसलमानिन हूँ।

" यहाँपर पतिका जो कर्ज था वह सब चुक गया है। मैंने अपने पास सोनेकी दो बालियाँ छिपाकर रख छोड़ीं थीं, उन्हें आज बेच दिया है। तुम जो पाँच रुपये एक दिन रख गये थे उन्हें मैंने खर्च नहीं किया। बड़े रास्तेके मोड़पर जो मोदीकी दूकान है, उसके मालिकके पास उन्हें रख दिया है,—माँगते ही वे तुम्हें मिल जायँगे। मनमें दुःख मत करना भइया! वे रुपये तो अवश्य मैंने लौटा दिये हैं, किन्तु तुम्हारे उस कच्चे कोमल छोटेसे हृदयको मैं अपने हृदयमें रक्खे लिये जाती हूँ। और तुम्हारी जीजीका यह एक आदेश है श्रीकान्त, कि तुम लोग मेरी याद करके अपना मन खराब न करना। समझ लेना कि तुम्हारी जीजी जहाँ कहीं भी रहेगी अच्छी ही रहेगी। क्योंकि दुःख सहन करते करते उसकी यह दशा हो गई है, कि उसके शरीरपर अब किसी भी दुःखका असर नहीं होता। किसी तरह भी उसे व्यथा नहीं पहुँच सकती। मेरे दोनों भाइयो, तुम्हें मैं क्या कहकर आशीर्वाद दूँ, सो मैं ढूँढकर भी नहीं पा सकती हूँ। इसीलिए, केवल यही

कहे जाती हूँ कि, भगवान्,—यदि पतिव्रता स्त्रीकी बात रखते हैं तो, वे तुम लोगोंकी मैत्री चिरकालके लिए अक्षय करेंगे।

—तुम्हारी जीजी, अन्नदा"

७

आज मैं अकेला जाकर मोदीके यहाँ खड़ा हो गया। परिचय पाकर मोदीने एक छोटा-सा पुराना चिथड़ा बाहर निकाला और गाँठ खोलकर उसमेंसे दो सोनेकी बालियाँ और पाँच रुपये निकाले। उन्हें मेरे हाथमें देकर वह बोला, "बहू ये दो बालियाँ मुझे इकतीस रुपयेमें बेचकर शाहजीका समस्त ऋण चुकाकर, चली गई हैं। किन्तु कहाँ गई हैं सो नहीं मालूम।" इतना कहकर वह किसका कितना ऋण था इसका हिसाब बतलाकर बोला, "जाते समय बहूके हाथमें कुल साढ़े पाँच आने पैसे थे।" अर्थात् बाईस पैसे लेकर उस निरुपाय निराश्रय स्त्रीने संसारके सुदुर्गम पथमें अकेले यात्रा कर दी है! पीछेसे, उसके ये दोनों प्यारे बालक, कहीं उसे आश्रय देनेके व्यर्थ प्रयासमें, उपायहीन वेदनासे व्यथित न हों, इस भयसे बिना कुछ कहे ही वे बिना किसी लक्ष्यके घरसे बाहर चली गई हैं,—कहाँ, सो भी किसीको उन्होंने जानने नहीं दिया। नहीं दिया—इतना ही नहीं, किन्तु मेरे पाँच रुपये भी नहीं स्वीकार किये। फिर भी, मनमें यह समझकर कि वे उन्होंने ले लिये हैं, मैं आनन्द और गर्वसे, न जाने कितने दिनों तक, न जाने कितने आकाश-कुसुमोंकी सृष्टि करता रहा था। पर वे मेरे सब कुसुम शून्यमें मिल गये। अभिमानके मारे आँखोंमें जल उमड़ उमड़ आता जिसे उस वृद्धसे छिपानेके लिए मैं तेजीसे बाहर चल दिया। बार बार मन ही मन कहने लगा कि इन्द्रसे तो उन्होंने कितने ही रुपये लिए, किन्तु, मुझसे कुछ भी नहीं लिया,—जाते समय 'नहीं' कहकर वापिस करके चली गई!

किन्तु अब मेरे मनमें वह अभिमान नहीं है। सयाना होनेपर, अब मैंने समझा है कि मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जो उन्हें दान दे सकता! उस जलती अग्नि-शिखामें जो भी मैं देता वह जलकर खाक हो जाता—इसीलिए, जीजीने मेरा दान वापिस कर दिया! किन्तु इन्द्र?—इन्द्र और मैं क्या एक ही धातुके बने हुए हैं जो जहाँ वह दान करे वहाँ ढीठतासे मैं भी अपना हाथ बढ़ा दूँ? इसके सिवा, यह भी तो मैं समझ

सकता हूँ कि आखिर किसका मुँह देखकर उन्होंने इन्द्रके आगे हाथ फैलाया था।—खैर जाने दो इन बातोंको।

इसके बाद अनेकों जगह मैं घूमा-फिरा हूँ; किन्तु इन जली आँखोंसे मैं कहीं भी उन्हें नहीं देख पाया। मुझे वे फिर नहीं दिखाई दीं, किन्तु हृदयमें वह हँसता हुआ मुँह हमेशा वैसा ही दीख पड़ता है। उनके चरित्रकी कहानीका स्मरण करके जब कभी, मैं मस्तक झुकाकर मन ही मन उन्हें प्रणाम करता हूँ, तब केवल यही बात मेरे मनमें आती है कि, भगवान्, यह तुम्हारा कैसा न्याय है? हमारे इस सती-सावित्रीके देशमें, तुमने पतिके कारण सहधर्मिणीको अपरिसीम दुःख देकर, सतीके माहात्म्यको उज्ज्वलसे उज्ज्वलतर करके संसारको दिखाया है, यह मैं जानता हूँ। उनके समस्त दुःख दैन्यको चिर-स्मरणीय कीर्तिके रूपमें रूपान्तरित करके, जगत्की सम्पूर्ण नारी जातिको कर्तव्यके ध्रुव-पथपर आकर्षित करनेकी तुम्हारी इच्छा है, इसको भी मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ; किन्तु हमारी ऐसी जीजीके भाग्यमें इतनी बड़ी विडम्बना और अपयश क्यों लिख दिया? किसलिए तुमने ऐसी सतीके मुँहपर असतीकी गहरी काली छाप मारकर उसे हमेशाके लिए संसारसे निर्वासित कर दिया? उनका तुमने क्या नहीं छुड़ा लिया? उनकी जाति छुड़ाई, धर्म छुड़ाया,—समाज, संसार, प्रतिष्ठा, सभी कुछ तो छुड़ा लिया। और जो अपरिमित दुःख तुमने दिया है, उसका तो मैं आज भी साक्षी हूँ।—इसका भी मुझे दुःख नहीं है जगदीश्वर! किन्तु जिनका आसन, सीता, सावित्री, आदि सतियोंके समीप है, उन्हें उनके मा-बाप, कुटुम्बी, शत्रु-मित्र आदिने किस रूपमें जाना? कुलटा रूपमें, वेश्या रूपमे!—इससे तुम्हें, क्या लाभ हुआ? और संसारको भी क्या मिला?

हाय रे, कहाँ हैं उनके वे सब आत्मीय स्वजन और भाई-बन्धु? यदि एक दफे भी मैं जान सकता, वह देश फिर कितनी ही दूर क्यों न होता, इस देशसे बाहर ही क्यों न होता, तो भी, मैंने वहाँ जाकर अवश्य कहा होता,—यही हैं तुम्हारी अन्नदा और यही उनकी अक्षय कहानी! तुमने अपनी जिस लड़कीको कुल-कलंकिनी मान लिया है, उसका नाम यदि सुबह एक दफे भी ले लिया करोगे तो, अनेक पापोंसे छुट्टी पा जाओगे?

इस घटनासे मैंने एक सत्यको प्राप्त किया है। पहले भी मैं एक दफे कह चुका हूँ कि नारीके कलंककी बातपर मैं सहज ही विश्वास नहीं कर सकता;

क्योंकि मुझे जीजी याद आ जाती हैं। यदि उनके भाग्यमें भी इतनी बड़ी बदनामी हो सकती है, तो फिर संसारमें और क्या नहीं हो सकता? एक मैं हूँ, और एक वे हैं जो सर्व कालके सर्व पाप-पुण्यके साक्षी हैं,—इनको छोड़कर दुनियामें ऐसा और कौन है, जो अन्नदाको जरासे स्नेहके साथ भी स्मरण करे। इसीलिए, सोचता हूँ कि न जानते हुए नारीके कलंककी बातपर अविश्वास करके संसारमें ठगा जाना भला है, किन्तु विश्वास करके पापका भागी होना अच्छा नहीं!

उसके बाद बहुत दिनोंतक इन्द्रको नहीं देखा। गंगाके तीर घूमने जाता था तो देखता था कि उसकी नाव किनारे बँधी हुई है। वह पानीमें भीग रही है और धूपमें फट रही है। सिर्फ एक दफे और हम दोनों उस नावपर बैठे थे। उस नौकापर वही हमारी अन्तिम यात्रा थी। इसके बाद न वही उस नावपर चढ़ा और न मैं ही। वह दिन मुझे खूब याद है। सिर्फ इसीलिए नहीं कि वह हमारी नौका-यात्राका समाप्ति-दिवस था, किन्तु इसलिए कि उस दिन अखण्ड-स्वार्थपरताका जो उत्कृष्ट दृष्टान्त देखा था, उसे मैं सहजमें नहीं भूल सका। वह कथा भी कहे देता हूँ।

वह कड़ाकेके शीत-कालकी संध्या थी। पिछले दिन पानीका एक अच्छा झला पड़ चुका था, इसलिए जाड़ा सूईकी तरह शरीरमें चुभता था। आकाशमें पूरा चन्द्रमा उगा था। चारों तरफ चाँदनी मानो तैर रही थी। एकाएक इन्द्र आ टपका; बोला, "थियेटर देखने चलेगा?" थियेटरके नामसे मैं एकबारगी उछल पड़ा। इन्द्र बोला, "तो फिर कपड़े पहिनकर शीघ्र हमारे घर आ जा।" पाँच मिनटमें एक रैपर लेकर बाहर निकल पड़ा। उस स्थानसे ट्रेनमें जाना होता था। सोचा, घरसे गाड़ी करके स्टेशनपर जाना होगा—इसलिए इतनी जल्दी है।

इन्द्र बोला, "ऐसा नहीं, हम लोग नावपर चलेंगे।" मैं निरुत्साहित हो गया, क्योंकि, गंगामें नावको उस ओर खेकर ले जाना पड़ेगा, और इसलिए बहुत देर हो जानेकी संभावना थी। शायद समयपर पहुँचा न जा सके। इन्द्र बोला, "हवा तेज है, देर न होगी। हमारे नवीन भइया कलकत्तेसे आये हैं, वे गंगासे ही जाना चाहते हैं।"

खैर, डाँड लेकर, पाल तानकर ठीक तरहसे हम लोग नावमें बैठ गये—बहुत देर करके नवीन भइया घाटपर पहुँचे। चन्द्रमाके आलोकमें उन्हें देख

कर मै तो डर गया। कलकत्तेके भयंकर बाबू! रेशमके मोजे, चमचमाते पम्प शू, ऊपरसे नीचे तक ओवरकोटमें लिपटे हुए, गलेमें गुलू-बन्द, हाथमें दस्ताने, सिरपर टोपी,—शीतके विरुद्ध उनकी सावधानीका अन्त नहीं था। हमारी उस साधकी डोंगीको उन्होंने 'अत्यन्त 'रद्दी' कहकर अपना कठोर मत जाहिर कर दिया; और इन्द्रके कंधेपर भार देकर तथा मेरा हाथ पकड़कर, बड़ी मुश्किलसे, बड़ी सावधानीसे, वे नावके बीचमें जाकर सुशोभित हो गये।

"तेरा नाम क्या है रे?"

डरते डरते मैंने कहा, "श्रीकान्त।"

उन्होंने आक्षेपके साथ मुँह बनाकर कहा, "श्री—कान्त,—सिर्फ 'कान्त' ही काफी है। जा हुक्का तो भर ला। अरे इन्द्र, हुक्का-चिलम कहाँ है? इस छोकरेको दे, तमाखू भर दे!"

अरे बापरे! कोई अपने नौकरको भी इस तरहकी विकट भाव-भंगीसे आदेश नहीं देता। इन्द्र अप्रतिभ होकर, बोला, "श्रीकान्त, तू आकर कुछ देर डाँड पकड़ रख। मैं हुक्का भरे देता हूँ।"

उसका जवाब न देकर मैं खुद ही हुक्का भरने लगा। क्योंकि वे इन्द्रके मौसेरे भाई थे, कलकत्तेके रहनेवाले थे और हाल ही में उन्होंने एल. ए. पास किया था। परतु मन मेरा बिगड़ उठा। तमाखू भरकर हुक्का हाथमें देते ही उन्होंने प्रसन्न मुखसे पीते पीते पूछा, "तू कहाँ रहता है रे कान्त? तेरे शरीरपर वह काला काला-सा क्या है रे? रैपर है? आहः रैपरकी क्या ही शोभा है। इसके तेलकी बाससे तो भूत भी भाग जावें! छोकरे,—फैलाकर बिछा तो दे यहाँ उसे, बैठे उसपर।"

"मै देता हूँ, नवीन भइया, मुझे ठण्ड नहीं लगती। यह लो," कहकर इन्द्रने अपने शरीरपरकी अलवान चटसे उतारकर फेंक दी। वह उसे मजेसे बिछाकर बैठ गया और आरामसे तमाखू पीने लगा।

शीत ऋतुकी गंगा अधिक चौड़ी नहीं थी,—आध घण्टेमें ही डोंगी उस किनारेसे जा भिड़ी। साथ ही साथ हवा बन्द हो गई।

इन्द्र व्याकुल हो बोला, "नूतन भइया, यह तो बड़ी मुश्किल हुई,—हवा बन्द हो गई। अब तो पाल चलेगा नहीं।"

नूतन भइया बोले, "इस छोकरेके हाथमें दे न, डाँड खींचे।" कलकत्तावासी नूतन भइयाकी जानकारीपर कुछ मलिन हँसी हँसकर इन्द्र

बोला, "डॉड ! कोई नहीं ले जा सकता। नूतन भइया, इस रेतको ठेलकर जाना किसीके लिए भी संभव नहीं। हमें लौटना पड़ेगा।"

प्रस्ताव सुनकर नूतन भइया मुहूर्त भरके लिए अग्निशर्मा हो उठे, "तो फिर ले क्यों आया हतभागे? जैसे हो, मुझे वहाँतक पहुँचाना ही होगा। मुझे थियेटरमें हारमोनियम बजाना ही होगा,—उनका विशेष आग्रह है।"
इन्द्र बोला, "उनके पास बजानेवाले आदमी हैं नूतन भइया, तुम्हारे न जानेसे वे अटके न रहेंगे।"

"अटके न रहेंगे? इस गँवार देशके छोकरे बजायेंगे हारमोनियम! चल, जैसे बने वैसे ले चल।" इतना कहकर उन्होंने जिस तरहका मुँह बनाया, उससे मेरा सारा शरीर जल उठा। उनका हारमोनियम बजाना भी हमने बादमें सुना, किन्तु वह कैसा था सो बतानेकी जरूरत नहीं।

इन्द्रका संकट अनुभव करके मैं धीरेसे बोला, "इन्द्र, क्या रस्सीसे खींचकर ले चलनेसे काम न चलेगा?" बात पूरी होने न होने मैं चौंक उठा। वे इस तरह दाँत किटकिटा उठे, कि उनका वह मुँह आज भी मुझे याद आ जाता है। बोले, "तो फिर जा न, खींचता क्यों नहीं? जानवरकी तरह बैठा क्यों है?"

इसके बाद एक दफे इन्द्र और एक दफे मैं रस्सी खींचते हुए आगे बढ़ने लगे। कहीं ऊँचे किनारेके ऊपरसे, कहीं नीचे उतरकर, और कहीं बीचमें उस तरफ शरीरको ठंडे जलकी धारामें घुसकर, हमें अत्यन्त कष्टसे नाव ले चलना पड़ा। और फिर बीच-बीचमें बाबूके हुक्केको भरनेके लिए भी नावको रोकना पड़ा। परन्तु बाबू वैसे ही जमकर बैठे रहे—जरा भी सहायता उन्होंने नहीं की। इन्द्रने एक बार उनसे 'रस्सी' पकड़नेको कहा तो जवाब दिया, कि "मैं दस्ताने खोलकर ऐसी ठण्डमें निमोनिया बुलानेको तैयार नहीं हूँ।" इन्द्रने कहना चाहा, "उन्हें खोले बगैर ही..."
—"हाँ, कीमती दस्तानोंको मिट्टी कर डालूँ, क्यों न! ले—जो करना हो कर।"

वास्तवमें मैंने ऐसे स्वार्थपर अकृतज्ञ व्यक्ति जीवनमें थोड़े ही देखे हैं। उनके एक वाहियात शौकको चरितार्थ करनेके लिए, हम लड़कों-जैसे उनसे उम्रमें बहुत छोटे थे—इतना सब कष्ट सहते हुए अपनी [illegible] [illegible]

वे जरा भी विचलित न हुए। कहींसे जरा-सी ठण्ड लगकर उन्हें बीमार न कर दे, एक छींटा जल पड जानेसे कहीं उनका कीमती ओवरकोट खराब न हो जाय, हिलने चलनेमें किसी तरहका व्याघात न हो,—इसी भयसे वे जड होकर बैठे रहे और, चिल्ला चिल्लाकर हुक्मोंकी झड़ी लगाते रहे।

और भी एक आफत आ गई,—गंगाकी रुचिकर हवामें बाबू साहबकी भूख भडक उठी और, देखते ही देखते, अविश्राम बक-झककी चोटोंसे, और भी भीषण हो उठी। इधर चलते-चलते रातके दस बज गये हैं,—थियेटर पहुँचते-पहुँचते रातके दो बज जायँगे, यह सुनकर बाबू साहब प्रायः पागल हो उठे। रातके जब ग्यारह बजे तब, कलकत्तेके बाबू बेकाबू होकर बोले "हाँ रे इन्द्र, पासमें कहीं हिंदुस्थानियोंकी कोई बस्ती-अस्ती है कि नहीं? चिउड़ा इउडा कुछ मिलेगा?"

इंद्र बोला, "सामने ही एक खूब बडी बस्ती है नूतन भइया, सब चीजें मिलती हैं।"

"तो फिर चला चल,—अरे छोकरे, जरा खींच न जोरसे—क्या खानेको नहीं पाता? इंद्र, बोल न तेरे इस साथीसे, थोडा और जोर करके खींच ले चले?"

इन्द्रने अथवा मैंने किसीने इसका जवाब नहीं दिया। जिस तरह चल रहे थे उसी तरह चलते हुए हम थोड़ी देरमें एक गाँवके पास जा पहुँचे। यहाँपर किनारा ढालू और विस्तृत होता हुआ जलमें मिल गया था। नावको बलपूर्वक धक्का देकर, उथले पानीमें करके, हम दोनोंने एक आरामकी साँस ली।

बाबू साहब बोले, "हाथ-पैर कुछ सीधे करना होगा। उतरना चाहता हूँ।" अतएव इन्द्रने उन्हें कन्धेपर उठाकर नीचे उतार दिया। वे ज्योत्स्नाके आलोकमें गंगाकी शुभ्र रेतीपर चहल कदमी करने लगे।

हम दोनों जनें उनकी क्षुधा-शान्तिके उद्देगसे गाँवके भीतर घुसे। यद्यपि हम लोग जानते थे कि इतनी रातको इस दरिद्र खेड़ेमें आहार-संग्रह करना सहज काम नहीं है तथापि चेष्टा किये बगैर भी निस्तार नहीं था। इसपर, अकेले रहनेकी भी उनकी इच्छा नहीं थी। इस इच्छाके प्रकाशित होते ही इन्द्र उसी दम आह्वान करके बोला, "नवीन भइया, अकेले तुम्हें डर लगेगा,—हमारे साथ थोड़ा घूमना भी हो जायगा। यहाँ कोई चोर-ओर नहीं है, नाव कोई नहीं ले जायगा। चले न चलो।"

नवीन भइया अपने मुँहको कुछ विकृत करके बोले, "हट! हम लोग दर्जी-पाड़ेके लड़के हैं,—यमराजसे भी नहीं डरते—यह जानते हो? फिर भी नीच लोगोंकी डर्टी (गंदी) बस्तीमें हम नहीं जाते। सालोंके शरीरकी बू यदि नाकमें चली जाय तो हमारी तबियत खराब हो जाय।" वास्तवमें उनका मनोगत अभिप्राय यह था कि मैं उनके पहरेपर नियुक्त होकर उनका हुक्का भरता रहूँ।

किन्तु उनके व्यवहारसे मन ही मन मैं इतना नाराज हो गया था कि, इन्द्रके इशारा करनेपर भी मैं किसी तरह, इस आदमीके संसर्गमें, अकेले रहनेको राजी नहीं हुआ। इन्द्रके साथ ही चल दिया।

दर्जीपाड़ेके बाबू साहबने हाथ-ताली देते हुए गाना शुरू कर दिया। हम लोगोंको बहुत दूर तक नाकके स्वरकी उनकी जनानी तान सुनाई देती रही। इन्द्र खुद भी मन ही मन अपने भाईके व्यवहारसे अतिशय लज्जित और क्षुब्ध हो गया था। धीरेसे बोला, "ये कलकत्तेके आदमी ठहरे, हमारी तरह हवा-पानी सहन नहीं कर सकते,—समझे न श्रीकान्त?"

मैं बोला, "हूँ।"

तब इन्द्र उनकी असाधारण विद्या बुद्धिका परिचय, शायद श्रद्धा आकर्षित करनेके लिए ही, देते हुए चलने लगा। बातचीतमें यह भी उसने कहा कि वे थोड़े ही दिनोंमें बी० ए० पास करके डिप्टी हो जायेंगे। जो हो, अब इतने दिनोंके बाद भी इस समय वे कहाँके डिप्टी हैं अथवा उन्हें यह पद प्राप्त हुआ या नहीं, मुझे नहीं मालूम। परन्तु, जान पड़ता है कि वे डिप्टी अवश्य हो गये होंगे, नहीं तो बीच बीचमें बंगाली डिप्टियोंकी इतनी सुख्याति कैसे सुन पड़ती? उस समय उनका प्रथम यौवन था। सुनते हैं, जीवनके उस कालमें हृदयकी प्रशस्तता, समवेदनाकी व्यापकता, जितनी बढ़ती है उतनी और किसी समय नहीं। लेकिन, इन कुछ घण्टोंके संसर्गमें ही जो नमूना उन्होंने दिखाया इतने समयके अन्तरके बाद भी वह भुलाया नहीं जा सका। फिर भी, भाग्यसे ऐसे नमूने कभी कभी दिखाई पड़ जाते हैं;—नहीं तो, कबके पहले ही यह संसार बाकायदा पुलिस थानेके रूपमें परिणत हो जाता। पर रहने दो अब इस बातको।

परन्तु, पाठकोंको यह खबर देना आवश्यक है कि भगवान् भी उनपर रुष्ट हो गये थे। उस तरफके घाट-बाट, दूकान-हाट, सब इन्द्रके जाने हुए थे। वह जाकर एक मोदीकी दूकानपर उपस्थित हो गया। परन्तु दूकान बन्द थी और

दूकानदार ठण्डके भयसे दरवाजे-खिडकियाँ बन्द करके गहरी निद्रामें मग्न था। नींदकी वह गहराई कितनी अथाह होती है, सो उन लोगोंको लिखकर नहीं बताई जा सकती जिन्हें खुद इसका अनुभव न हो। ये लोग न तो अम्ल-रोगी निष्कर्मी जमींदार हैं और न बहुत भारसे दबे हुए, कन्याके दहेजकी फिक्रसे त्रस्त बंगाली गृहस्थ। इसलिए सोना जानते हैं। दिनभर घोर परिश्रम करनेके उपरान्त, रातको ज्यों ही उन्होंने चारपाई ग्रहण की कि फिर, घरमें आग लगाये बगैर, सिर्फ चिल्लाकर या दरवाजा खटखटाकर उन्हें जगा दूँगा,—ऐसी प्रतिज्ञा यदि स्वयं सत्यवादी अर्जुन भी, जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञाके बदले कर बैठते तो, यह बात कसम खाकर कही जा सकती है कि उन्हें भी मिथ्या प्रतिज्ञाके पापसे दग्ध होकर मर जाना पड़ता।

हम दोनों जने बाहर खड़े होकर तीव्र कण्ठसे चीत्कार करके, तथा जितने भी कूट-कौशल मनुष्यके दिमागमें आ सकते हैं उन सबको एक एक करके आजमा करके, आध घण्टे बाद खाली हाथ लौट आये। परतु घाटपर आकर देखा तो वह जन-शून्य है। चाँदनीमें जहाँतक नज़र दौड़ती थी वहाँ तक कोई भी नहीं दिखता। 'दर्जीपाड़े' का कहीं कोई निशान भी नहीं। नाव जैसी थी वैसी ही पड़ी हुई है।—फिर बाबू साहब गये कहाँ? हम दोनों प्राणपणसे चीत्कार कर उठे,—'नवीन भइया' किन्तु कहीं कोई नहीं। हम लोगोंकी व्याकुल पुकार, बाईं और दाहिनी बाजूके खूब ऊँचे कगारोंसे टकराकर, अस्पष्ट होती हुई, बार बार लौटने लगी। आसपासके उस प्रदेशमें, शीतकालमें, बीच बीचमें बाघोंके आनेकी बात भी सुनी जाती थी। गृहस्थ किसान इन दलबद्ध बाघोंकी विपत्तिसे व्यस्त रहते थे। सहसा इन्द्र इसी बातको कह बैठा, "कहीं बाघ तो नहीं उठा ले गया रे!" भयके मारे मेरे रोंगटे खड़े हो गये। यह क्या कहते हो? इसके पहले उनके निर-तिशय अभद्र व्यवहारसे मैं नाराज तो सचमुच ही हो उठा था परन्तु, इतना बड़ा अभिशाप तो मैंने उन्हें नहीं दिया था!

सहसा दोनों जनोंकी नजर पड़ी कि कुछ दूर बालूके ऊपर कोई वस्तु चाँदनीमें चमचमा रही है। पास जाकर देखा तो उन्हींके बहुमूल्य पम्प शूकी एक फर्द है? इन्द्र भीगी बालूपर लेट गया—"हाय श्रीकांत! साथमें मेरी मौसी भी तो आई है। अब मैं घर लौटकर न जाऊँगा!" तब धीरे धीरे सब बातें स्पष्ट होने लगीं। जिस समय हम लोग मोदीकी दुकानपर

जाकर उसे जगानेका व्यर्थ प्रयास कर रहे थे, उसी समय, इस तरफ़ कुत्तोंका झुण्ड इकट्ठा होकर आर्त्त चीत्कार करके इस दुर्घटनाकी खबर हमारे कर्णगोचर करनेके लिए व्यर्थ मेहनत उठा रहा था, यह बात अब जल्की तरह हमारी आँखोंके आगे स्पष्ट हो गई। अब भी हमें दूरपर कुत्तोंका भूँकना सुन पड़ता था। अतएव जरा भी संशय नहीं रहा कि बाघ उन्हें खींच ले जाकर जिस जगह भोजन कर रहे हैं, वहीं आसपास खड़े हो ये कुत्ते भी अब भूँक रहे हैं।

अकस्मात् इन्द्र सीधा होकर खड़ा हो गया और बोला, "मैं वहाँ जाऊँगा।" मैंने डरकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "पागल हो गये हो भइया!" इन्द्रने इसका कुछ जवाब नहीं दिया। नावपर जाकर उसने कंधेपर लग्गी रख ली, एक बड़ी लम्बी छुरी खीसेमेंसे निकालकर बायें हाथमें ले ली और कहा, "तू यहीं रह श्रीकान्त, मैं न आऊँ तो लौटकर मेरे घर खबर दे देना—मैं चलता हूँ।"

उसका मुँह बिल्कुल सफेद पड़ गया था, किन्तु दोनों आँखें जल रही थीं। मैं उसे अच्छी तरह चीन्हता था। यह उसकी निरर्थक, खाली उछल-कूद नहीं थी कि हाथ पकड़ कर दो-चार भयकी बातें कहनेसे ही, मिथ्या दम्भ मिथ्यामें मिल जायगा। मैं निश्चयसे जानता था कि किसी तरह भी वह रोका नहीं जा सकता,—वह जरूर जायगा। भयसे जो चिर अपरिचित हो, उसे किस तरह और क्या कहकर रोका जाता? जब वह बिल्कुल जाने ही लगा तो मैं भी न ठहर न सका, मैं भी, जो कुछ मिला, हाथमें लेकर उसके पीछे पीछे चल दिया। इस बार इन्द्रने मुख फेरकर मेरा एक हाथ पकड़ लिया और कहा, "तू पागल हो गया है श्रीकान्त! तेरा क्या दोष है? तू क्यों जायगा?"

उसका कण्ठ-स्वर सुनकर मेरी आँखोंमें एक मुहूर्तमें ही जल भर आया। किसी तरह उसे छिपा कर बोला, "तुम्हारा ही भला, क्या दोष है इन्द्र? तुम ही क्यों जाते हो?"

जवाबमें इन्द्रने मेरे हाथसे बाँस छीनकर नावमें फेंक दिया और कहा, "मेरा भी कुछ दोष नहीं है भाई, मैं भी नवीन भइयाको लाना नहीं चाहता था। परन्तु, अब अकेले लौटा भी नहीं जा सकता, मुझे तो जाना ही होगा।"

परन्तु मुझे भी तो जाना चाहिए। क्योंकि, पहले ही एक दफे कह चुका हूँ कि मैं स्वयं भी बिल्कुल डरपोक न था। अतएव बाँसको फिर उठाकर

मैं खड़ा हो गया और वाद-विवाद किये बगैर ही हम दोनों आगे चल दिये। इन्द्र बोला, "बालूपर दौड़ा नहीं जा सकता,—खबरदार, दौड़नेकी कोशिश न करना। नहीं तो, पानीमें जा गिरेगा।"

सामने ही एक बालूका टीला था। उसे पार करते ही दीख पड़ा, बहुत दूरपर पानीके किनारे छह सात कुत्ते खड़े भूँक रहे हैं। जहाँ तक नजर गई वहाँ तक थोड़ेसे कुत्तोंको छोड़कर, बाघ तो क्या, कोई शृगाल भी नहीं दिखाई दिया। सावधानीसे कुछ देर और अग्रसर होते ही जान पड़ा कि कोई एक काली-सी वस्तु पानीमें पड़ी है और वे उसका पहरा दे रहे हैं। इन्द्र चिल्ला उठा, "नूतन भइया!"

नूतन भइया गलेतक पानीमें खड़े हुए अस्पष्ट स्वरसे रो पड़े, "यहाँ हूँ मैं!"

हम दोनों प्राणपणसे दौड़ पड़े, कुत्ते हटकर खड़े हो गये, और इन्द्र झपसे कूदकर गलेतक डूबे हुए मूर्छित-प्रायः अपने दर्जीपाड़ेके मौसेरे भाईको खींचकर किनारेपर उठा लाया। उस समय भी उनके एक पैरमें बहुमुल्य पम्प शू, शरीरपर ओवरकोट, हाथमें दस्ताने, गलेमें गुलूबन्द और सिरपर टोपी थी। भागनेके कारण फूलकर वे ढोल हो गये थे! हमारे जानेपर उन्होंने हाथ-ताली देकर जो बढ़िया तान छेड़ दी थी, बहुत सम्भव है, उसी संगीतकी तानसे आकृष्ट होकर, गाँवके कुत्ते दल बाँधकर वहाँ आ उपस्थित हुए थे! और इस अभूतपूर्व गीत और आदरपूर्ण पोशाककी छटासे विभ्रान्त होकर इस महामान्य व्यक्तिके पीछे पड़ गये थे। पीछा छुड़ानेके लिए इतनी दूर भागनेपर भी आत्म-रक्षाका और कोई उपाय न खोज सकनेके कारण अन्तमें झपसे पानीमें कूद पड़े; और इस दुर्दान्त शीतकी रातमें, तुषार-शीतल जलमें आधे घण्टे गले तक डूबे रहकर अपने पूर्वकृत पापोंका प्रायश्चित्त करते रहे। किन्तु, प्रायश्चित्तके संकटको दूर करके उन्हें फिरसे चंगा करनेमें भी हमें कम मेहनत नहीं उठानी पड़ी। परन्तु सबसे बढ़कर अचरजकी बात यह हुई की बाबू साहबने सूखेमें पैर रखते ही पहली बात यही पूछी, "हमारा एक पम्प शू कहाँ गया?"

"वह वहाँ पड़ा हुआ है," यह सुनते ही वे सारे दुःख क्लेश भूलकर उसे शीघ्र ही उठा लेनेके लिए सीधे खड़े हो गये। इसके बाद, कोटके लिए; गुलूबन्दके लिए, मोजोंके लिए, दस्तानोंके लिए, पारी-पारीसे एक-एकके लिए

शोक प्रकाशित करने लगे और उस रातको जबतक हम लोग लौटकर अपने घाटपर नहीं पहुँच गये, तबतक यही कहकर हमारा तिरस्कार करते रहे कि क्यों हमने मूर्खोंकी तरह उनके शरीरसे उन सब चीजोंको जल्दी जल्दी उतार डाला था। न उतारा होता तो इस तरह धूल लगकर वे मिट्टी न हो जाते। हम दोनों असभ्य लोगोंमें रहनेवाले ग्रामीण किसान हैं, हम लोगोंने इन चीजोंको पहले कभी आँखसे देखा तक नहीं होगा,—यह सब वे बराबर कहते रहे। जिस देहपर, इसके पहले, एक छींटा भी जल गिरनेसे वे व्याकुल हो उठते थे, कपड़े-लत्तोंके शोकमें वे उस देहको भी भूल गये। उपलक्ष्य वस्तु असल वस्तुसे भी किस तरह कई गुनी अधिक होकर उसे पार कर जाती है, यह बात, यदि इन जैसे लोगोंके संसर्गमें न आया जाय तो, इस तरह प्रत्यक्ष नहीं हो सकती।

रातको दो बजे बाद हमारी डोंगी घाटपर आ लगी। मेरे जिस रैपरकी विकट बूसे कलकत्तेके बाबू साहब, इसके पहले, बेहोश हुए जाते थे, उसीको अपने शरीरपर डालकर,—उसीकी अविश्रान्त निन्दा करते हुए, तथा पैर पोंछनेमें भी घृणा होती है, यह बार बार सुनाते हुए भी—और इन्द्रकी अलवान ओढ़कर, उस यात्रामें आत्म-रक्षा करते हुए घर गये। कुछ भी हो, हम लोगोंपर दया करके जो वे व्याघ्र-कवलित हुए बगैर सशरीर वापिस लौट आये, उनके उसी अनुग्रहके आनन्दसे हम परिपूर्ण हो रहे थे। इतने उपद्रव-अत्याचारको हँसते हुए सहन करके और आज नावपर चढ़नेके शौककी परिसमाप्ति करके, उस दुर्जय शीतकी रातमें, केवल एक धोती-भरका सहारा लिए हुए, काँपते काँपते, हम लोग घर लौट आये।

८

लिखने बैठते ही बहुत दफा मैं आश्चर्यसे सोचता हूँ कि इस तरहकी बेसिलसिले घटनाएँ मेरे मनमें निपुणतासे किसने सजा रक्खी हैं? जिस ढंगसे मैं लिख रहा हूँ इस ढंगसे वे एकके बाद एक शृङ्खलाबद्ध तो घटित हुई नहीं। और फिर साँकलकी क्या सभी कड़ियाँ साबुत बनी हुई हैं? सो भी नहीं। मुझे मालूम है कि कितनी ही घटनाएँ तो विस्मृत हो चुकी हैं,

किन्तु फिर भी तो शृंखला नहीं टूटती। तो कौन फिर उन्हें नूतन करके जोड़ रखता है?

और भी एक अचरजकी बात है। पण्डित लोग कहा करते हैं कि बड़ोंके बोझसे छोटे पिस जाते हैं। परन्तु यदि ऐसा ही होता तो फिर जीवनकी प्रधान और मुख्य घटनाएँ तो अवश्य ही याद रहनेकी चीज होतीं। परन्तु सो भी तो नहीं देखता हूँ। बचपनकी बातें कहते समय एकाएक मैंने देखा कि स्मृति-मन्दिरमें बहुत-सी तुच्छ क्षुद्र घटनाएँ भी, न जाने कैसे, बहुत बड़ी होकर ठाठसे बैठ गई हैं और बड़ी घटनाएँ छोटी बनकर न जाने कब कहाँ झड़कर गिर गई हैं। इस लिए बोलते समय भी यही बात चरितार्थ होती है। तुच्छ बातें बड़ी हो कर दिखाई देती हैं, और बड़ी याद भी नहीं आतीं। और फिर ऐसा क्यों होता है इसकी कैफियत भी पाठकोंको मैं नहीं दे सकता। जो होता है, सिर्फ उसे ही मैंने बता दिया है।

इसी प्रकारकी एक तुच्छ-सी बात है जो मनके भीतर इतने दिनों तक चुपचाप छिपी रहकर, इतनी बड़ी हो उठी है कि आज उसका पता पाकर मैं स्वयं भी बहुत विस्मित हो रहा हूँ। उसी बातको आज मैं पाठकोंको सुनाऊँगा। किन्तु, बात ठीक ठीक क्या है सो, जब तक कि मैं उसका पूरा परिचय न दे दूँ तबतक, उसका रूप किसी तरह भी स्पष्ट न होगा! क्योंकि, यदि मैं प्रारभमें ही कह दूँ कि वह एक 'प्रेमका इतिहास' है,—तो, उससे यद्यपि मिथ्या भाषणका पाप न होगा, किन्तु वह व्यापार अपनी चेष्टासे जितना बड़ा हो उठा है, मेरी भाषा शायद उसको भी उल्लंघन कर जायगी। इसलिए बहुत ही सावधान होकर कहनेकी जरूरत है।

वह बहुत बादकी बात है। जीजीकी स्मृति भी उस समय धुँधली हो गई थी। जिनके मुखकी याद मनमें लाते ही, न मालूम कैसे, प्रथम यौवनकी उच्छृंखलता अपने आप अपना सिर झुका लेती है, उन जीजीकी याद उस समय उस तरह नहीं आती थी। यह उसी समयकी कहानी है। एक राजाके लड़केके द्वारा निमंत्रित होकर मैं उसकी शिकार-पार्टीमें जाकर शामिल हुआ था। उसके साथ बहुत समय तक स्कूलमें पढ़ा था, गुप चुप अनेक बार उसके गणितके सवाल हल कर दिये थे,—इसीलिए वह मुझे खूब चाहता था। इसके बाद एन्ट्रेंस क्लाससे हम दोनों अलग हो गये। मैं जानता हूँ कि राजा-ओंके लड़कोंकी स्मरण-शक्ति कम हुआ करती है, किन्तु यह नहीं सोचा था

कि वह मेरा स्मरण करके पत्र-व्यवहार करना शुरू कर देगा। बीचमें एक दिन उससे एकाएक मुलाकात हो गई। उसी समय वह बालिग हुआ था। बहुत-से जमा किये हुए रुपये उसके हाथ लगे और उसके बा...इत्यादि इत्यादि। राजाके कानोंमें बात पहुँची,—अतिरंजित होकर ही पहुँची, कि राइफल चलानेमें मैं बेजोड़ हूँ, तथा और भी कितनी ही तरहके गुणोंसे मैं, इस बीचमें ही, मण्डित हो गया हूँ कि जिनसे मैं एक मात्र बालिग राजपुत्रका अंतरंग मित्र होनेके लिए सर्वथा योग्य हूँ। आत्मीय बंधु-बान्धव तो अपने आदमीकी प्रशंसा कुछ बढ़ा चढ़ा कर ही करते हैं, नहीं तो सचमुच ही, इतनी विद्याएँ इतने अधिक परिमाणमें मैं उस छोटी-सी उम्रमें ही अर्जित करनेमें समर्थ हो गया था; यह अहंकार मुझे शोभा नहीं देता। कमसे कम कुछ विनय रखना अच्छा है खैर, जाने दो इस बातको। शास्त्रकारोंने कहा है कि राजे-रजवाड़ोंके सादर आह्वानकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हिन्दूका लड़का ठहरा, शास्त्र अमान्य तो कर नहीं सकता था, इसलिए मैं चला गया। स्टेशनसे दस बारह कोस हाथीपर बैठकर गया। देखा, बेशक राजपुत्रके बालिग होनेके सब लक्षण मौजूद हैं! कोई पाँच तम्बू गड़े हुए हैं, एक स्वयं उनका, एक मित्रोंका, एक नौकरोंका और एक रसोईका। इनके सिवाय और एक तम्बू कुछ फासलेपर था,—उसके दो हिस्से करके उनमें दो वेश्यायें और उनके साजिन्दे अड्डा जमाये हैं।

संध्या हो चुकी है। प्रवेश करते ही मैं जान गया कि राजकुमारके खास कमरेमें बहुत देरसे संगीतकी बैठक जमी हुई है। राजकुमारने बड़े आदरसे मेरा स्वागत किया यहाँ तक कि आदरके अतिरेकसे खड़े होनेको तैयार होकर वे तकियेके सहारे लेट गये! मित्र दोस्त, विह्वल-कण्ठसे आइए, आइए, पधारिए, कहकर संवर्धना करने लगे। मैं सर्वथा अपरिचित था। किन्तु वह, उन लोगोंकी जो अवस्था थी उससे, अपरिचयके कारण, रुकनेवाली नहीं थी।

ये 'बाईजी' पटनेसे, बहुत-सा रुपया पानेकी शर्त पर, दो सप्ताहके लिए आई थीं। इस काममें राजकुमारने जिस विवेचना और विचक्षणताका परिचय दिया था उसकी तारीफ तो करनी ही होगी। बाईजी खूब सुन्दर, सुकण्ठ और गानेमें निपुण थीं।

मेरे प्रवेश करते ही गाना थम गया। इसके बाद समयोचित वार्तालाप

और अदब-कायदेका कार्य समाप्त होनेमें भी कुछ समय चला गया। राजकुमारने अनुग्रह करके मुझसे गानेकी फरमाइश करनेका अनुरोध किया। राजाज्ञा पाकर पहले तो मैं अत्यन्त कुण्ठित हो उठा, किन्तु थोड़ी ही देरमे मालूम हो गया कि, सगीतकी उस मजलिसमे, सिर्फ मैं ही कुछ धुँधला-सा देख सकता हूँ और सब ही छछूँदरके माफिक अन्धे हैं।

बाईजी खिल उठीं। पैसेके लोभसे बहुत-से काम किये जा सकते हैं सो मैं जानता था; किन्तु, इन निराट मूर्खोंके दरबारमें वीणा बजाना वास्तवमें ही इतनी देरतक, उसे बड़ा कठिन मालूम हो रहा था। इस दफे एक समझदार व्यक्ति पाकर मानो वे बच गईं। इसके बाद, रातको देर तक, मानो केवल मेरे लिए ही, उन्होंने अपनी समस्त विद्या, समस्त सौन्दर्य और कण्ठके समस्त माधुर्यमें हमारे चारों तरफकी उस समस्त कदर्य मदोन्मत्तताको डुबा दिया और अन्तमे वे स्तब्ध हो गईं।

बाईजी पटनेकी रहनेवाली थी। नाम था 'प्यारी'। उस रात्रिको उन्होंने जिस तरह अपनी सारी शक्ति लगाकर गाना सुनाया उस तरह शायद पहले कभी नहीं सुनाया होगा। मैं तो मुग्ध हो गया था। गाना बन्द होते ही मेरे मुँहसे यही निकला—"वाह, खूब!"

प्यारीने मुँह नीचा करके हँस दिया। इसके बाद दोनो हाथोंको मस्तकपर लगाकर प्रणाम किया,—सलाम नहीं। मजलिस उस रातके लिए, खत्म हो गई।

उस समय दर्शकोंमें कोई सो रहा था, कोई तन्द्रामें था और अधिकांश बेहोश थे। अपने तम्बूमें जानेके लिए बाईजी जब सदलबल बाहर निकल रही थीं, तब मैं आनन्दके अतिरेकसे हिन्दीमें बोल उठा,—"बाईजी मेरा, बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हारा गाना रोज दो सप्ताह तक सुननेको मिलेगा।" बाईजी पहले तो ठिठककर खड़ी हो रहीं, पर दूसरे ही क्षण कुछ नजदीक आकर अत्यन्त कोमल कण्ठसे परिष्कृत बंगलामे बोली, "रुपये लिये हैं, सो मुझे तो गाना ही पड़ेगा; परन्तु क्या आप भी इन पन्द्रह सोलह दिनोंतक इनकी मुसाहबी करते रहेंगे? जाइए, कल ही आप अपने घर चले जाइए।"

यह बात सुनकर हतबुद्धि-सा होकर मैं मानों काठ हो गया और क्या जवाब दूँ, यह ठीक कर सकनेके पहले ही देखा कि बाईजी तम्बूके बाहर हो गई हैं।

सुबह शोर-गुल मचाकर कुमार साहब शिकारके लिए बाहर निकले। मद्य मांसकी तैयारी ही सबसे अधिक थी। साथमे दस-बारह शिकारी नौकर थे।

पन्द्रह बन्दूकें थीं—जिनमें छः राइफलें थीं। स्थान था एक अधसूखी नदीके दोनों किनारे। इस पार गाँव था और उस पार रेतका टीला। इस पार कोस भरतक बड़े बड़े सेमरके वृक्ष थे और उस पार रेतीके ऊपर जगह जगह काँस और कुशोंके झुरमुट। यहाँ ही उन पन्द्रह बन्दूकोंको लेकर शिकार किया जायगा। सेमरके वृक्षोंपर मुझे कबूतरकी जातिके पक्षी दीख पड़े और अधसूखी नदीके मोड़के पास ऐसा जान पड़ा कि दो पक्षी, चकवा-चकई, तैर रहे हैं।

कौन किस ओर जाय, इस बातपर अत्यन्त उत्साहसे परामर्श करते करते सबहीने दो-दो प्याले चढ़ाकर देह और मनको वीरोंकी तरह कर लिया। मैंने बन्दूक नीचे रख दी। एक तो बाईजीके व्यंगकी चोट खाकर रातसेही मन विकल हो रहा था, उसपर यह शिकारका क्षेत्र देखकर तो सारा शरीर जल उठा।

कुमारने पूछा, “ क्यों जी कान्त, तुम तो बड़े गुम सुम हो रहे हो! अरे यह क्या! बन्दूक ही रख दी! ”

“ मैं पक्षियोंको नहीं मारता। ”

“ यह क्या जी? क्यों, क्यों? ”

“ मुँहपर रेख निकलनेके बादमें मैंने छर्रेवाली बन्दूक नहीं चलाई,—मैं उसे चलाना भी भूल गया हूँ। ”

कुमार साहब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। किन्तु उस हँसीका द्रव्य-गुणसे कितना सम्बन्ध था, यह बात अवश्य दूसरी है।

सरजूके आँख-मुँह लाल हो उठे। वे इस दलके प्रधान शिकारी और राजपुत्रके प्रिय पार्श्वचर थे। उनके अचूक निशानेकी ख्याति मैंने आते ही सुन ली थी। वे रुष्ट होकर बोले, “ चिड़ियोंकी शिकार क्या कुछ शर्मकी बात है? ”

मेरा मिजाज भी ठिकानेपर नहीं था, इसलिए जवाब दिया, “ सबके लिए नहीं, परन्तु मेरे लिए तो है! खैर!—कुमार साहब, मेरी तबियत ठीक नहीं है। ” कहकर मैं तम्बूमें लौट आया। इसपर कौन हँसा, किसने आँखें मिचकाईं, किसने मुँह बनाया, सो मैंने नजर उठाकर भी नहीं देखा।

तम्बूमें लौटकर मैं फर्शपर चित लेटा ही था और एक प्याला चाय तैयार करनेका आदेश देकर एक सिगरेट पी ही रहा था कि बैरेने आकर अदबके साथ कहा, “ बाईजी आपसे मिलना चाहती हैं। ” ठीक इसी बातकी मैं आशा कर रहा था और आशङ्का भी। पूछा, “ क्यों मिलना चाहती हैं? ”

“ सो तो मैं नहीं जानता। ”

" तुम कौन हो ? "

" मैं बाईजीका खानसामा हूँ। "

" बंगाली हो ? "

" जी हाँ, जातिका नाई हूँ। नाम मेरा रतन है। "

" बाईजी हिन्दू हैं ? "

रतन हँसकर बोला, " न होतीं तो मैं कैसे रहता बाबू ?"

मुझे साथ ले जाकर और तम्बूका दरवाजा दिखाकर रतन चला गया। पर्दा उठाकर भीतर देखा कि बाईजी अकेली बैठी हुई प्रतीक्षा कर रही हैं। कल रातको पेशवाज और ओढ़नीके कारण मैं ठीक तौरसे पहिचान न सका था, परन्तु आज देखते ही पहचान लिया कि हो कोई; पर बाईजी हैं बंगालीकी ही लड़की। बाईजी गरदकी साड़ी पहिने हुए मूल्यवान् कार्पेटके ऊपर बैठी थीं। भींगे हुए बिखरे बाल पीठके ऊपर फैल रहे थे। हाथोंके पास पान-दान रक्खा था और सामने हुक्का। मुझे देखकर उठ खड़ी हुई और हँसकर सामनेका आसन दिखाते हुए बोलीं, " बैठिए। आपके सामने अब और तमाखू नहीं पीऊँगी,—अरे रतन, हुक्का उठा ले जा। यह क्या खड़े क्यों हैं! बैठ जाइए न ! "

रतन आकर हुक्का ले गया। बाईजी बोलीं, " आप तमाखू पीते हैं यह मैं जानती हूँ; किन्तु दूँ किस तरह ? और जगह आप चाहे जो करें, किन्तु मैं जान-बूझकर तो आपको अपना हुक्का दे न सकूँगी। अच्छा, चुरुट लाये देती हूँ। अरे ओ—"

" ठहरो, ठहरो, जरूरत नहीं। मेरी जेबमें चुरुट है। "

" हैं ? अच्छा तो ठण्डे होकर जरा बैठ जाइए, बहुत-सी बातें करनी हैं। भगवान् कब किससे मिला देते हैं सो कोई नहीं कह सकता, यह स्वप्नमें भी अगोचर है।—शिकारके लिए गये थे, एकाएक लौट क्यों आये ?"

" तबीयत न लगी। "

" न लगनेकीही बात है। कैसी निष्ठुर है यह पुरुषोंकी जात। निरर्थक जीव-हत्या करनेमें इन्हें क्या मजा आता है सो ये ही जानें। बाबूजी तो अच्छे हैं न ? "

" बाबूजीका तो स्वर्गवास हो गया। "

" हैं, स्वर्गवास हो गया !—और माँ ? "

"वे तो उनसे भी पहले चल बसी थीं।"

"ओह,—तभी तो!" कहकर बाईजी एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर मेरी ओर देखती रह गईं। एक दफा तो जान पड़ा मानो उनकी आँखें छलछला आई हैं, किन्तु, शायद वह मेरी भूल हो। परन्तु, दूसरे ही क्षण जब वे बोलीं तब भूलके लिए कोई जगह न रही। उस मुखरा नारीका चंचल और परिहास-लघु कण्ठस्वर सचमुच ही मृदु और आर्द्र हो उठा था। बोलीं, "तो फिर यों कहो कि अब तुम्हारा जतन करनेवाला कोई न रहा। बुआजीके पास ही रहते हो न?—नहीं तो, और फिर कहाँ रहोगे? ब्याह हुआ नहीं, यह तो मैं देख ही रही हूँ। पढ़ते-लिखते हो? या वह भी इसके साथ ही समाप्त कर दिया?"

अब तक तो मैं उसके कुतूहल और प्रश्नमालाको भरसक बरदास्त करता रहा। किन्तु न जाने क्यों पिछली बात मानो मुझे एकाएक असह्य हो उठी। मैं खीझकर रूखे स्वरमें बोल उठा, "अच्छा, कौन हो तुम? तुम्हें जीवनमें कहीं देखा है, यह तो याद आता नहीं। मेरे सम्बन्धमें इतनी बातें तुम जानना ही क्यों चाहती हो और जाननेसे तुम्हें लाभ क्या है?"

बाईजीको गुस्सा न आया, वे हँसकर बोलीं, "लाभ-हानि ही क्या संसारमें सब कुछ है? माया, ममता, प्यार-मुहब्बत कुछ नहीं? मेरा नाम है प्यारी,—किन्तु, जब मेरा मुख देखकर भी न पहिचान सके, तब लड़कपनका नाम सुनकर भी मुझे कैसे पहिचान सकोगे? इसके सिवाय मैं तुम्हारे उस गाँवकी लड़की भी तो नहीं हूँ।"

"अच्छा तुम्हारा घर कहाँ है?"

"नहीं, सो मैं नहीं बताऊँगी।"

"तो फिर, अपने बापका नाम ही बताओ?"

बाईजी जीभ काटकर बोली, "वे स्वर्ग चले गये हैं—राम-राम, क्या उनका नाम इस मुँहसे उच्चारण कर सकती हूँ?"

मैं अधीर हो उठा। बोला, "यदि नहीं कर सकती तो फिर मुझे तुमने पहचाना किस तरह, यही बताओ? शायद यह बतलानेमें कोई दोष न होगा।"

प्यारीने मेरे मनके भावको लक्ष्य करके मुसकरा दिया। कहा, "नहीं, इसमें कुछ दोष नहीं है, परन्तु क्या तुम विश्वास कर सकोगे?"

"कह देखो न।"

प्यारीने कहा, " तुम्हें पहचाना था महाराज, दुर्बुद्धिकी मारसे,—और किस तरह ? तुमने मेरी आँखोंसे जितना पानी बहवाया है, सौभाग्यसे सूर्यदेवने उसे सुखा दिया है। नहीं तो आँखोंके उस जलसे एक तालाब भर गया होता। —पूछती हूँ, क्या इसपर विश्वास कर सकते हो ? "

सचमुच ही मैं विश्वास न कर सका। परन्तु वह मेरी भूल थी। उस समय यह किसी तरह ख्याल भी न आया कि प्यारीके होठोंकी गठन कुछ इस किस्मकी है कि मानों हर बात वह मज़ाकमें ही कहती है और मन ही मन हँसती है। मैं चुप रह गया। वह भी कुछ देर तक चुप रहकर इस बार सच-मुच ही हँस पड़ी। परतु, इतनी देरमें न जाने किस तरह मुझे जान पड़ा कि उसने अपनी लज्जित अवस्थाको मानों सँभाल लिया है। हँसकर कहा, " नहीं महाराज, तुम्हें जितना भोला समझा था उतने भोले तुम नहीं हो। यह जो रंग कहनेका ढंग है, इसे तुमने बराबर समझ लिया है। किन्तु, यह भी कहती हूँ कि तुम्हारी अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् भी इस बातपर अविश्वास नहीं कर सकते। सो यदि आप इतने अधिक बुद्धिमान् हैं तो यह मुसाहबीका व्यवसाय आपने किसलिए ग्रहण किया है ? यह नौकरी तो तुम्हारे जैसे आदमीने होनेकी नहीं। जाओ, यहाँसे चटपट खिसक जाओ ! "

क्रोधके मारे मेरा सर्वांग जल उठा, किन्तु मैंने उसे प्रकट नहीं होने दिया। सहज भावसे कहा, " नौकरी जितने दिन हो, उतने ही दिन अच्छी। बैठेसे बेगार भली,—समझीं न ! अच्छा, अब मैं जाता हूँ। बाहरके लोग शायद और ही कुछ समझ बैठें। "

प्यारी बोली, " समझ बैठें, तो यह तुम्हारे लिए सौभाग्यकी बात है महाराज, यह क्या कोई अफसोसकी बात है ? "

उत्तर दिये विना ही जब मैं द्वारपर आ खड़ा हुआ तब वह अकस्मात् हँसीकी फुहार छोड़कर कह उठी, " किन्तु देखो बाबू, मेरी वह आँखोंके आँसुओंकी बात मत भूल जाना। दोस्तोंमें, कुमार साहबके दरबारमें, प्रकट कर दोगे तो सम्भव है तुम्हारी तकदीर खुल जाय। "

मैं उत्तर दिये विना ही बाहर हो गया, परन्तु उस निर्लज्जाकी वह हँसी और यह कदर्य परिहास मेरे सर्वांगमें व्याप्त होकर बिच्छूके काँटेकी तरह जलने लगा।

अपने स्थानपर आकर, एक प्याला चाय पीकर और चुरुट मुँहमें दबाकर

अपनेको भर-सक ठंडा करके मैं सोचने लगा—यह कौन है? मैं अपनी पाँच-छः वर्षकी उम्र तककी सब घटनाएँ स्पष्ट तौरसे याद कर सकता हूँ। किन्तु अतीतमें जितनी भी दूरतक दृष्टि जा सकती थी उतनी दूर तक मैंने खूब छान-बीनकर देखा, कहीं भी इस प्यारीको नहीं खोज पाया। फिर भी, यह मुझे खूब पहचानती है। बुआ तककी बात जानती है। मैं दरिद्र हूँ, सो भी इससे अज्ञात नहीं है। इसीलिए, और तो कोई गहरी चाल इसमें हो नहीं सकती; फिर भी, जिस तरह हो, मुझे यहाँसे भगा देना चाहती है। परन्तु यह किसलिए? मेरे यहाँ रहने न रहनेसे इसे क्या? बातों ही बातोंमें उस समय इसने कहा था—संसारमें लाभ-हानि ही क्या सब कुछ है? प्यार-मुहब्बत कुछ नहीं? मैंने जिसे पहले कभी आँखसे भी नहीं देखा, उसके मुँहकी यह बात याद करके भी मुझे हँसी आ गई। किन्तु, सारी बात-चीतको दबाकर, उसका आखिरी व्यंग ही मानों मुझे लगातार छेदने लगा।

मध्याह्नके समय शिकारियोंका दल लौट आया। नौकरोंके मुँहसे सुना कि आठ पक्षी मारकर लाये गये हैं। कुमारने मुझे बुला भेजा। तबीयत ठीक न होनेका बहाना करके विस्तरोंपर ही मैं पड़ रहा, और इसी तरह पड़े पड़े रातको देर तक प्यारीका गाना और शराबियोंकी वाहवाह सुनता रहा।

इसके बाद तीन-चार दिन प्रायः एक ही तरहसे कट गये। 'प्रायः' कहता हूँ, क्योंकि, सिर्फ शिकारको छोड़कर और सब बातें रोज़ एक-सी ही होती थीं। प्यारीका अभिशाप मानों फल गया हो,—प्राणी-हत्याके प्रति किसीमें कुछ भी उत्साह मैंने नहीं देखा। मानो कोई तम्बूके बाहर भी न निकलना चाहता हो। फिर भी मुझे उन्होंने नहीं छोड़ा। मेरे वहाँसे भाग जानेके लिए कोई विशेष कारण हो, सो बात न थी; किन्तु इस बाईजीके प्रति मुझे मानों घोर अरुचि हो गई।—वह जब हाजिर होती, तब मानों मुझे कोई मार रहा हो ऐसा लगता,—उठकर वहाँसे जब चला जाता तभी कुछ शान्ति मिलती। उठ न सकता तो फिर और किसी ओर मुँह फिराकर, किसीके भी साथ, बात-चीत करते हुए अन्यमनस्क होनेकी चेष्टा किया करता। इसपर भी वह हर समय मुझसे आँखें मिलानेकी हज़ार तरहसे चेष्टा किया करती, यह भी मैं अच्छी तरह अनुभव करता। शुरूमें दो-तीन दिन उसने मुझे लक्ष्य करके परिहास करनेकी चेष्टा भी की; किन्तु, फिर मेरे भावको देखकर वह बिल्कुल सन्न हो रही।

शनिवारका दिन था। अब किसी तरह भी मैं ठहर नहीं सकता। खा-पी चुकनेके बाद ही आज रवाना हो जाऊँगा, यह स्थिर हो जानेसे आज सुबहसे ही गाने बजानेकी बैठक जम गई थी। थककर बाईजीने गाना बन्द किया ही था कि हठात् सारी कहानियोंसे श्रेष्ठ भूतोंकी कहानी शुरू हो गई। पल-भरमें जो जहाँ था उसने वहींसे आग्रहके साथ वक्ताको घेर लिया।

पहले तो मैं लापरवाहीसे सुनता रहा। परन्तु, अन्तमें उद्‌ग्रीव होकर बैठ गया। वक्ता थे गाँवके ही एक वृद्ध हिन्दुस्तानी महाशय। कहानी कैसे कहनी चाहिए सो वे जानते थे। वे कह रहे थे कि, "प्रेत-योनिके विषयमें यदि किसीको सदेह हो,—तो वह आज, इस शनिवारकी अमावास्या तिथिको, इस गाँवमें आकर, अपने चक्षु-कर्णोंका विवाद भंजन कर डाले। वह चाहे जिस जातिका, चाहे जैसा, आदमी हो और चाहे जितने आदमियोंको साथ लेकर जाय, आजकी रात उसका महाश्मशानको जाना निष्फल नहीं होगा। आजकी घोर रात्रिमें उग्र श्मशानचारी प्रेतात्माको सिर्फ आँखसे ही देखा जा सकता हो सो बात नहीं,—उसका कंठस्वर भी सुना जा सकता है और इच्छा करनेपर उससे बात-चीत भी की जा सकती है।" मैंने, अपने बचपनकी बातें याद करके हँस दिया। वृद्ध महाशय उसे लक्ष्य करके बोले, "आप मेरे पास आइए।" मैं उनके निकट खिसक गया। उन्होंने पूछा, "आप विश्वास नहीं करते?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं करते? नहीं करनेका क्या कोई विशेष हेतु है?"

"नहीं।"

"तो फिर? इस गाँवमें ही दो-एक ऐसे सिद्ध पुरुष हैं जिन्होंने अपनी आँखों देखा है। फिर भी जो आप विश्वास नहीं करते, मुँहपर हँसते हैं सो यह केवल दो पन्ने अँग्रेज़ी पढ़नेका फल है। बंगाली लोग तो विशेष करके नास्तिक म्लेच्छ हो गये हैं।" कहाँकी बात कहाँ आ पड़ी, देखकर मैं अवाक् हो गया। बोला, "देखिए, इस सम्बन्धमें मैं तर्क नहीं करना चाहता। मेरा विश्वास मेरे पास है। मैं भले ही नास्तिक होऊँ, म्लेच्छ होऊँ,—पर भूत नहीं मानता। जो कहते हैं कि हमने आँखोंसे देखा है वे या तो ठगे गये हैं, अथवा झूठे हैं, यही मेरी धारणा है।"

उस भले आदमीने चटसे मेरे दाहिने हाथको पकड़कर कहा, "क्या

आप आज रातको श्मशान जा सकते हैं ?" मैं हँसकर बोला, "जा सकता हूँ: बचपनमें ही मैं अनेक रात्रियोंमें अनेक श्मशानोंमें गया हूँ।" वृद्ध चिढ़कर बोल उठे, "आप शेखी मत बघारिए बाबू।" इतना कहकर उन्होंने उस श्मशानका, सारे श्रोताओंको स्तंभित कर देनेवाला, महा भयावह विवरण विस्तार कहना शुरू कर दिया। "यह श्मशान कुछ ऐसा वैसा स्थान नहीं है। यह महाश्मशान है। यहाँपर हजारों नर-मुण्ड गिने जा सकते हैं। इस श्मशानमें, हर रातको, महाभैरवी अपने साथियों सहित नर-मुण्डोंसे गेंद खेलती है और नृत्य करती हुई घूमती है। उनके खिलखिलाकर हँसनेके विकट शब्दसे कितनी ही दफे, कितने ही अविश्वासी अँगरेज जजों, मजिस्ट्रेटोंके भी हृदयकी धड़कन बन्द हो गई है।"—इस किस्मकी लोमहर्षक कहानी वे इस तरहसे कहने लगे कि इतने लोगोंके बीच, दिनके समय, तम्बूके भीतर बैठे रहनेपर भी, बहुतसे लोगोंके सिरके बालतक खड़े हो गये। तिरछी नजरसे मैंने देखा कि प्यारी न जाने कब पास आकर बैठ गई है और उन बातोंको मानो सारे शरीरसे निगल रही है।

इस तरह जब वह महाश्मशानका इतिहास समाप्त हुआ तब वक्ताने अभिमानके साथ मेरी ओर कटाक्ष फेंककर प्रश्न किया, "क्यों बाबू साहब, आप जायँगे ?"

"जाऊँगा क्यों नहीं ?"

"जाओगे! अच्छा, आपकी मरजी। प्राण जानेपर—"

मैं हँसकर बोला, "नहीं महाशय, नहीं। प्राण जानेपर भी तुम्हें दोष न दिया जायगा, तुम इससे मत डरो। किन्तु बेजानी जगहमें मैं भी तो खाली हाथ नहीं जाऊँगा,—बन्दूक साथ जायगी।"

आलोचना अत्यधिक तेज हो उठी है, यह देखकर मैं वहाँसे उठ गया। "पक्षी मारनेकी तो हिम्मत नहीं पड़ती, बन्दूककी गोलीसे भूत मारेंगे साहब! बंगाली लोग अँगरेजी पढ़कर हिन्दूशास्त्र थोड़े ही मानते हैं,—ये मुर्गीतक तो खा जाते हैं,—मुँहसे ये लोग कितनी ही शेखी क्यों न मारें, कामके समय भाग खड़े होते हैं,—एक धौंस पड़ते ही इनके दन्त कपाट लग जाते हैं!"—इस तरहकी समालोचना शुरू हुई। अर्थात्, जिन सब सूक्ष्म युक्ति-तर्कोंकी अवतारणा करनेमें हमारे राजा रईसोंको आनन्द मिलता है, और जो उनके मस्तिष्कको अतिक्रम नहीं कर जाते,—अर्थात्

वे स्वयं भी जिनमें घुमकर दो शब्द कह सकते हैं—ऐसे ही वे सब युक्ति-तर्क थे।

इन लोगोंके दलमें सिर्फ एक आदमी ऐसा था जिसने स्वीकार किया कि मैं शिकार करना नहीं जानता और जो साधारणतः बातचीत भी कम करता था, शराब भी कम पीता था। नाम था उसका पुरुषोत्तम। शामको आकर उसने मुझे पकड़ लिया और कहा, "मैं भी साथ चलूँगा,—क्योंकि इसके पहले मैंने भी कभी भूत नहीं देखा। इसलिए, आज जब ऐसा अच्छा मौका मिला है, तब मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता,"—ऐसा कहकर वह खूब हँसने लगा। मैंने पूछा, "तुम क्या भूत नहीं मानते?"

"बिल्कुल नहीं।"

"क्यों नहीं मानते?"

"भूत नहीं है, इसलिए नहीं मानता।" इतना कहकर वह प्रचलित तर्क उठा-उठाकर बारबार अस्वीकार करने लगा। किन्तु, मैंने इतने सहजमें उसे साथ ले जाना स्वीकार नहीं किया। क्योंकि, बहुत दिनोंकी जानकारीसे मैंने जाना था कि, यह सब युक्ति-तर्कका व्यापार नहीं,—यह तो संस्कार है। बुद्धिके द्वारा जो बिल्कुल ही नहीं मानते, वे भी भयके स्थानपर आ पड़नेपर भयके मारे मूर्च्छित हो जाते हैं।

पुरुषोत्तम किन्तु इस तरह सहजमें छोड़नेवाला नहीं था। वह लॉग कसकर एक पक्के बाँसकी लकड़ी कंधेपर रखकर बोला, "श्रीकान्त बाबू, आपकी इच्छा हो तो भले ही आप बन्दूक ले चलें; किन्तु, अपने हाथमें लाठी रहते, भूत हो चाहे प्रेत,—मैं किसीको भी पासमें न फटकने दूँगा।"

"किन्तु वक्तपर हाथमें लाठी रहेगी भी?"

"ठीक इसी तरह रहेगी बाबू, आप उस समय देख लेना। कोस-भरका रास्ता है, रातको ग्यारहके भीतर ही रवाना हो जाना चाहिए।"

मैंने देखा, उसका आग्रह मानों कुछ अतिरिक्त सा है।

जानेके लिए उस समय भी करीब घण्टे-भरकी देर थी। मैं तम्बूके बाहर टहलकर इस विषयपर मन ही मन आन्दोलन करके, देख रहा था कि वस्तु वास्तवमें क्या हो सकती है। इन सब विषयोंमें मैं जिसका शिष्य था, उसे भूतका भय बिल्कुल नहीं था। लड़कपनकी बातें याद आ रही थीं,—उस रात्रिको जब इन्द्रने कहा था, "श्रीकान्त, मन ही मन राम-नाम लेता रह;

वह लड़का मेरे पीछे बैठा हुआ है—" केवल उसी दिन भयके मारे मैं बेहोश हो गया था, और किसी दिन नहीं। फिर डरनेका मौका ही नहीं आया। किन्तु आजकी बात सच हो, तो वह वस्तु है क्या? इन्द्र स्वयं भूतमें विश्वास करता था। किन्तु उसने भी कभी आँखोंसे नहीं देखा। मैं भी अपने मन ही मन चाहे जितना अविश्वास क्यों न करूँ, स्थान और कालके प्रभावसे मेरे शरीरमें उस समय सनसनी न पैदा हो, यह बात नहीं। सहसा सामनेके उस दुर्भेद्य अमावास्याके अंधकारकी ओर देखकर मुझे एक और अमावास्याकी रातकी बात याद आ गई। वह दिन भी ऐसा ही एक शनिवार था।

पाँच-छह वर्ष पहले, हमारी पड़ौसिन, हतभागिनी नीरू जीजी बालविधवा होकर भी जब प्रसूति रोगसे पीड़ित होकर और छह महीनेतक दुख भोग भोगकर मरी, तब उनकी मृत्यु-शय्याके पार्श्वमें मेरे सिवा और कोई नहीं था। बागके बीच एक मिट्टीके घरमें वे अकेली रहती थीं। सब लोगोंकी सब तरहसे रोग-शोकमें, सम्पत्ति-विपत्तिमें इतनी अधिक सेवा करनेवाली, निःस्वार्थ परोपकारिणी स्त्री मुहल्ले-भरमें और कोई नहीं थी। कितनी स्त्रियोंको लिखा-पढ़ाकर, सूईका काम सिखाकर और गृहस्थीके सब किस्मके दुरूह कार्य समझाकर, उन्होंने मनुष्य बना दिया था, इसकी कोई गिनती नहीं थी। अत्यन्त स्निग्ध शान्त-स्वभाव और चरित्रके कारण मुहल्लेके लोग भी उन्हें कुछ कम नहीं चाहते थे। किन्तु उन्हीं नीरू जीजीका जब तीस वर्षकी उम्रमें हठात् पाँव फिसल गया, और भगवानने इस अत्यन्त कठिन व्याधिके आघातसे उनका जीवन-भरका ऊँचा मस्तक बिल्कुल मिट्टीमें मिला दिया, तब इस मुहल्लेके किसी भी आदमीने उस दुर्भागिनीका उद्धार करनेके लिए हाथ नहीं बढ़ाया। पाप-स्पर्श-लेश-हीन निर्मल हिन्दू समाजने उस हतभागिनीके मुखके सामने ही अपने सब खिड़की-दरवाजे बन्द कर लिये, और जिस मुहल्लेमें शायद एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिसने कि, किसी न किसी तरह नीरू जीजीके हाथकी प्रेमपूर्ण सेवाका उपयोग न किया हो, उसी मुहल्लेके एक कोनेमें, अपनी अन्तिम शय्या डालकर वह दुर्भागिनी, घृणा और लज्जाके मारे सिर नीचा किये हुए अकेली, एक एक दिन गिनती हुई, सुदीर्घ छः महीने तक बिना चिकित्साके पड़ी पड़ी अपने पैर फिसलनेका प्रायश्चित्त करके, श्रावण महीनेकी एक आधी रातके समय, इस लोकको त्यागकर जिस लोकको चली गई उसका ठीक ठीक ब्यौरा

चाहे जिस स्मार्त पण्डितसे पूछते ही जाना जा सकता है।

मेरी बुआ अत्यन्त गुप्त रीतिसे उनकी सहायता करतीं थीं, यह बात मैं और मेरे घरकी एक बड़ी दासीके सिवा इस दुनियामें और कोई नहीं जानता था। बुआ एक दिन मुझे अकेलेमें बुलाकर बोलीं, "भइया श्रीकान्त, तू तो इस तरह रोग-शोकमें जाकर अनेकोंकी खबर लिया करता है: उन छोकरीको भी एकाध दफे क्यों नहीं देख आया करता?" तबसे मैं बराबर बीच-बीचमें जाकर उन्हें देखा करता और बुआके पैसोंसे यह चीज,—वह चीज,—खरीद कर दे आया करता। उनकी मृत्युके समय केवल मैं ही अकेला उनके पास था। मरण-समयमें ऐसा परिपूर्ण विकार और परिपूर्ण ज्ञान मैंने और किसीके नहीं देखा। विश्वास न करने पर भी, भयके मारे शरीरमें जो सनसनी फैल जाती है, उसीके उदाहरण स्वरूप मैं यह घटना लिख रहा हूँ।

— वह श्रावणकी अमावास्याका दिन था। रात्रिके बारह बजनेके बाद आँधी और पानीके प्रकोपसे पृथ्वी मानो अपने स्थानसे च्युत होनेकी तैयारी कर रही थी। सब खिड़की-दरवाजे बन्द थे,—मैं खाटके पास ही एक बहुत पुरानी आधी टूटी हुई आराम-कुर्सीपर लेटा हुआ था। नीरू जीजीने अपने स्वाभाविक मुक्त स्वरसे मुझे अपने पास बुलाकर, हाथ उठाकर, मेरा कान अपने मुखके पास ले जाकर, धीरेसे कहा, "श्रीकान्त, तू अपने घर जा।"

"सो क्यों नीरू जीजी, ऐसे आँधी पानीमें?"

"रहने दे आँधी पानी। प्राण तो पहले हैं।" वे भ्रममें प्रलाप कर रही हैं, ऐसा समझकर मैं बोला, "अच्छा जाता हूँ, पानी जरा थम जाने दो।" नीरू जीजी अत्यन्त चिन्तित होकर बोल उठीं, "नहीं, श्रीकान्त, तू जा, जा भाई, जा,—अब थोड़ी भी देर मत ठहर,—जल्दी भाग जा।" इस दफा उनके कण्ठ-स्वरके भावसे मेरी छातीका भीतरी भाग काँप उठा। मैं बोला, "मुझसे जानेके लिए क्यों कहती हो?"

प्रत्युत्तरमें मेरा हाथ खींचकर और बन्द खिड़कीकी ओर लक्ष्य करके, वे चिल्ला उठीं, "जायगा नहीं, तो क्या जान दे देगा? देखता नहीं है, मुझे ले जानेके लिए वे काले काले सिपाही आये हैं। तू यहाँपर मौजूद है, इसीलिए वे खिड़कीमेंसे ही मुझे डरा रहे हैं।"

इसके बाद उन्होंने कहना शुरू किया, "वे इस खाटके नीचे हैं, वे सिरके ऊपर हैं। वे मारने आ रहे हैं! यह लिया! वह पकड लिया!" यह चीत्कार रातके अंतिम समयमें तब समाप्त हुआ जब कि उनके प्राण भी प्रायः शेष हो चुके थे। -

उक्त घटना आज भी मेरी छातीके भीतर गहरी जमकर बैठी हुई है। उस रात्रिको मुझे डर तो लगा ही था,—याद-सा आता है कि मानों कुछ चेहरे भी देखे थे। यह सच है कि इस समय उस घटनाकी याद आनेसे हँसी आती है; परन्तु, यदि मुझे उस समय इस बातपर असंशय विश्वास न होता, कि किवाड खोलकर बाहर होते ही मैं नीरू जीजीके काले काले सिपाही-सन्तरियोंकी भीडमें जरूर पड जाऊँगा, तो, उस दिन, अमावास्याके उस घोर दुर्योगको तुच्छ करके भी शायद मैं भाग खडा होता। साथ ही यह सब कुछ भी नहीं है, कुछ भी न था, यह भी जानता था, और मरणासन्न व्यक्ति केवल निदारुण विकारकी बेहोशीमें ही यह प्रलाप कर रहा था, सो भी समझता था। इतनेमें—

"बाबू!"

चौंककर मैं घूमा, देखा, रतन है।

"क्या है रे?"

"बाईजीने प्रणाम कहा है।"

जितना मैं विस्मित हुआ उतना ही खीझा भी। इतनी रातको अकस्मात् बुला भेजना केवल अत्यन्त अपमानकारक स्पर्धा ही मालूम हो, सो बात नहीं, गत तीन-चार दिनोंके दोनों तरफके व्यवहारोंको याद करके भी यह प्रणाम कहला भेजना मानों मुझे बिलकुल बेहूदा मालूम हुआ। किन्तु, इसके फल-स्वरूप नौकरके सामने किसी तरहकी उत्तेजना प्रकट न हो जाय इस आशङ्कासे अपने आपको प्राणपणसे सँभालकर मैंने कहा, "आज मेरे पास समय नहीं है रतन, मुझे बाहर जाना है, कल मिल सकूँगा।"

रतन सिखाया पढाया नौकर था,—अदब कायदेमें पक्का। अत्यन्त आदर भरे मृदु स्वरसे बोला, "बड़ी जरूरत है बाबूजी, एक दफे अपने कदमोंकी धूल देनी ही होगी। नहीं तो, बाईजीने कहा है, वे स्वयं ही आ जायँगी।"

—सर्वनाश! इस तम्बूमें इतनी रातको, इतने लोगोंके सामने—! मैं बोला, "तू समझाकर कहना रतन, आज नहीं; कल सबेरे ही मिल लूँगा। आज तो मैं किसी भी तरह नहीं जा सकता।" रतन बोला, "तो फिर वे ही"

आयेंगी बाबूजी, मै गत पाँच वर्षोंसे देख रहा हूँ कि बाईजीकी बातमें कभी जरा भी फर्क नहीं पड़ता। आप नहीं चलेंगे तो वे निश्चय ही आवेंगी।"

इस अन्याय्य असंगत ज़िदको देखकर मै एड़ीसे चोटी तक जल उठा। बोला, "अच्छा ठहरो, मैं आता हूँ।" तम्बूके भीतर देखा, वारुणीकी कृपासे जागता कोई नहीं है। पुरुषोत्तम भी गंभीर निद्रामें मग्न है। नौकरोंके तम्बूमें सिर्फ दो-चार आदमी जाग रहे हैं। झटपट बूट पहिनकर एक कोट शरीरपर डाल लिया। राइफल ठीक रखी ही थी। उसे हाथमें लेकर रतनके साथ साथ बाईजीके तम्बूमें पहुँचा। प्यारी सामने ही खड़ी थी। मुझे आपादमस्तक बार बार देखती हुई, किसी तरहकी भूमिका बाँधे बगैर ही, क्रुद्धस्वरमें बोल उठी, "मसान-वसानमें तुम्हारा जाना न हो सकेगा,—किसी तरह भी नहीं।"

बहुत ही आश्चर्यचकित होकर मै बोला, "क्यों?"

"क्यो और क्या? भूत-प्रेत क्या हैं नहीं, जो इस शनिवारकी अमावास्याको तुम श्मशान जाओगे? क्या तुम अपने प्राणोंको लेकर फिर लौट आ सकोगे वहाँसे?"

इतना कहकर प्यारी अकस्मात् रोने लगी और आँसुओंकी अविरल धारा बहाने लगी। मैं विह्वल-सा होकर चुपचाप उसकी ओर देखता रह गया। क्या करूँ, क्या जवाब दूँ, कुछ सोच ही न सका। सोच न सकनेमें अचरजकी बात ही क्या थी? जिससे जान नहीं, पहिचान नहीं, वह यदि हिताकांक्षासे आधी रातको बुलाकर ख़ामख़ाह रोना शुरू कर दे,— तो कौन है ऐसा जो हत-बुद्धि न हो जाय! मेरा जवाब न पाकर प्यारीने आँखें पोंछते हुए कहा, "तुम क्या किसी दिन भी शांत-शिष्ट नहीं होओगे? ऐसे हठी बने रहकर ही जीवन बिता दोगे? जाओ, देखूँ तुम कैसे जाते हो? मैं भी फिर तुम्हारे साथ चलूँगी।" इतना कहकर उसने शाल उठाकर अपने शरीरपर डालनेकी तैयारी कर दी।

मैंने संक्षेपमें कहा, "अच्छा है चलो!" मेरे इस छिपे हुए तानेसे जल-भुनकर प्यारी बोली, "आहा! देश-विदेशमें तब तो तुम्हारी सुख्यातिकी सीमा-परिसीमा न रहेगी!—बाबू शिकार खेलनेके लिए आकर, एक नाचनेवालीको साथ लेकर, आधी रातको भूत देखने गये थे! वाह! मै पूछती हूँ, घरसे क्या बिल्कुल ही 'आउट' होकर आये हो? घृणा-विरक्ति

ाज-शरम आदि क्या कुछ भी नहीं रह गई ? " यह कहते कहते उसका
त्र कण्ठ मानो आर्द्र होकर भारी हो गया। बोली, " कभी तो तुम ऐसे
ही थे। तुम्हारा इतना अधःपतन होगा, यह तो किसीने भी कभी सोच
मझा न था।" उसकी पिछली बातपर और कोई समय होता तो मैं इतना
ीझ उठता कि जिसका पार न रहता; परन्तु, इस समय क्रोध नहीं आया।
न ही मन मुझे लगा कि प्यारीको मानों मैंने पहिचान लिया है। ऐसा क्यों
नमें आया सो फिर कहूँगा। उस समय मैं बोला, " लोगोंके सोचने समझ-
का मूल्य कितना है, सो तो तुम खुद भी जानती हो। तुम भी इतने
अधःपतनके रास्ते जाओगी, क्या कभी किसीने सोचा था ? "

क्षण-भरके लिए प्यारीके मुखके ऊपर शरत् ऋतुकी बदलीवाली चाँदनीके
समान हँसीकी एक सहज आभा दिखाई दे गई। किन्तु वह क्षण-भरके लिए
ही। दूसरे ही क्षण उसने डरती हुई आवाजसे कहा, " मेरे विषयमें तुम क्या
जानते हो ? कौन हूँ मैं, बताओ ? "

" तुम हो प्यारी। "

" सो तो सभी जानते हैं। "

" सब जो नहीं जानते, सो भी मैं जानता हूँ,—उसे सुनकर क्या तुम
खुश होओगी ? यदि होती तो खुद ही अपना परिचय दे देती। किन्तु जब
नहीं दिया है, तब मेरे मुँहसे भी कोई बात नहीं सुन पाओगी। तुम बीच
सोचकर देखो, अपने आपको प्रकट करोगी कि नहीं ? किन्तु अब और समय
नहीं है,— मैं जाता हूँ। "

प्यारीने बिजलीकी-सी तेजीके साथ मेरा रास्ता रोककर कहा, " यदि न
जाने दूँ, तो क्या जबरन चले जाओगे ? "

" किन्तु, जाने ही क्यों न दोगी ? "

प्यारी बोली, " जाने दूँ ? सचमुच क्या भूत नहीं होते जो तुम्हारे
' जाने दो ' कहनेहीमें जाने दूँगी ? मैं कहे देती हूँ कि मैं बातकी बातमें
' मैयारी मैया, ' चिल्लाकर हाट लगा दूँगी। " यह कहकर उसने बन्दूक
छीन लेनेकी चेष्टा की। मैं एक कदम पीछे हट गया। कुछ क्षणोंसे मेरी रीस
हँसीके रूपमें परिवर्तित हो रही थी। इस दफे खूब हँसकर कह दिया, " सच-
मुचके भूत होते हैं कि नहीं, सो तो मैं नहीं जानता; परन्तु झूठ-मूठके
भूत हैं, यह जरूर जानता हूँ। ये सामने खड़े होकर बातचीत करते हैं, गन्ध

७

रोकते हैं, ऐसे न जाने कितनी तरहके कीर्तिके काम करते हैं,—और जरूरत पड़नेपर गर्दन दबोचकर खा भी जाते हैं!" प्यारी मलिन हो गई और क्षण-भरके लिए शायद सोच न सकी कि क्या कहे। इसके बाद बोली, "यदि ऐसी बात है, तो जो तुम यह कहते हो कि तुमने मुझे पहचान लिया, सो तुम्हारी भूल है। वे अनेक कीर्तिके काम करते हैं यह सच है, किन्तु दबोचनेके लिए रास्ता रोककर नहीं खड़े होते। उन्हें अपने परायेका बोध होता है।" मैंने फिर भी हँसकर प्रश्न किया, "यह तो हुई तुम्हारी खुदकी बात, किन्तु तुम क्या भूत हो?"

प्यारी बोली, "भूत ही तो हूँ, और नहीं तो क्या? जो लोग मरकर भी नहीं मरते, वे ही तो भूत हैं; यही तो कहनेका मतलब है?" थोड़ी देर ठहरकर वह स्वयं ही फिर कहने लगी, "एक हिसाबसे तो, जो मैं मर चुकी हूँ सो सत्य है। किन्तु, सच हो चाहे झूठ, अपने मरनेकी बात मैंने प्रसिद्ध नहीं की, मामाके जरिये माँने फैलाई थी। सुनना चाहते हो सब हाल?" मरनेकी यह बात सुनते ही मेरा संशय दूर हो गया। मैंने ठीक पहिचान लिया कि यह राजलक्ष्मी है। बहुत दिन पहले यह अपनी माताके संग तीर्थ-यात्रा करने गई थी और फिर लौटकर नहीं आई। माँने गाँवमें आकर यह बात प्रसिद्ध कर दी कि काशीमें हैजेकी बीमारीसे वह मर गई।—उसे मैंने कभी देखा है, यह बात अवश्य ही मुझे याद न आ रही थी किन्तु उसकी एक आदतपर, मैं जबसे यहाँ आया था तभीसे, ध्यान दे रहा था। जब वह गुस्से होती थी तब दाँतोंके नीचे अधर दबा लिया करती थी। कभी कहीं किसीको मानों ठीक इसी तरह करते अनेक बार देखा है, केवल यही बात बार बार मनमें आने लगी। किन्तु वह कौन था, कहाँ देखा था; कब देखा था,—सो कुछ भी याद नहीं आता था। वही राजलक्ष्मी ऐसी हो गई है, यह देखकर मैं क्षण-भरके लिए अचरजसे अभिभूत हो गया। मैं जब अपने गाँवके मनसा पंडितकी पाठशालामें सब छात्रोंका सरदार था, तब इसके दो पुस्तके कुलीन बापने अपना एक और ब्याह करके इसको घरसे निकाल दिया। पतिके द्वारा परित्यक्ता माता, सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मी नामक दोनों कन्याओंको लेकर अपने बापके घर चली आई। उम्र इसकी उस समय आठ-नौकी होगी और सुरलक्ष्मीकी बारह-तेरहकी। इसका रंग अवश्य ही खूब उजला था किन्तु मलेरिया और प्लीहाके मारे पेट मटके जैसा,

हाथ पैर लकड़ीकी तरह, सिरके बाल ताँबेकी सलाइयोंके समान थे और कितने थे सो भी गिने जा सकते थे। मेरी मारके डरसे यह लड़की करोंदोंकी झाड़ीमें घुसकर करोंदोंकी माला गूँथ लाकर मुझे दिया करती थी। यदि वह माला किसी दिन छोटी होती तो, मैं पुराना पाठ पूछकर इसे जी भरकर चपतियाता था। मार खाकर यह लड़की होंठ चबाती हुई गुमसुम होकर बैठ रहती, किन्तु किसी तरह भी यह नहीं कहती कि रोज करोंदे संग्रह करना उसके लिए कितना कठिन है। जो कुछ भी हो, इतने दिनोंतक तो मैं यही समझता था कि वह मेरे भयसे ही इतना क्लेश स्वीकार करती है; किन्तु आज मानो हठात् कुछ संशय उत्पन्न हुआ। खैर जाने दो। उसके बाद इसका विवाह हो गया। वह विवाह भी एक विचित्र व्यापार था। बेचारा मामा भानजियोंके ब्याहकी चिन्ताके मारे मरा जा रहा था। दैवात् कहींसे यह खबर आई कि विरचि दत्तका रसोइया कुलीनकी सन्तान है। इस कुलीनकी सन्तानको दत्त महाशय बाँकुड़ेसे अपनी बदली होते समय साथ ही लिवा लाये थे। विरंचि दत्तके द्वारपर मामा धन्ना देकर पड़ गये।—ब्राह्मणकी जाति-रक्षा करनी ही होगी! इतने दिन तक तो सब यही जानते थे कि दत्त महाशयका रसोइया भोला भाला भला आदमी है परन्तु मतलबके समय देखा गया कि रसोइया महाराजकी सांसारिक बुद्धि किसीसे भी कम नहीं है। सिर्फ इक्यावन रुपये दहेजकी बात सुनकर वह जोरसे सिर हिलाकर बोला, "इतने सस्तेमें नहीं हो सकता महाशय,—बाजार जाँच देखिए। पचास और एक रुपयेमें तो एक जोड़ी बड़े बकरे भी नहीं मिलते—और इतनेमें आप जमाई खोजते हैं! एक सौ और एक रुपये दो, तो एक बार इस पाटेपर और एक बार उस पाटेपर बैठकर दो फूल छोड़ दूँगा। दोनों ही बहिनें एक ही साथ 'पार' हो जायँगी। क्या एक सौ रुपये,—दो साँड़ खरीदनेका खर्च—भी आप न देंगे?" बात कुछ असंगत नहीं थी। फिर भी अनेक मोल-तोल और बड़ी सही सिफारिशके बाद सत्तर रुपयेमें तय होकर एक ही रातमें एक साथ सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मीका विवाह हो गया। दो दिन बाद सत्तर रुपया नकद लेकर वह दो पुश्तका कुलीन जमाई बाँकुड़ा चल दिया। उसके बाद फिर किसीने उसे नहीं देखा। डेढ़ेक वर्ष बाद तिल्लीके ज्वरसे सुरलक्ष्मी मर गई और उसके भी वर्ष डेढ़ वर्ष पीछे इस राजलक्ष्मीने काशीमें जाकर शिवत्व प्राप्त किया। यही है प्यारी बाईजीका संक्षिप्त इतिहास।

बाईजीने कहा, "तुम क्या सोच रहे हो, बताऊँ?"

"क्या सोच रहा हूँ?"

"तुम सोच रहे हो,—आहा! लड़कपनमें मैंने इसे कितना कष्ट दिया है! काँटोंके बनमें भेजकर रोज रोज करौंदे मँगवाया किया हूँ, और उसके बदले केवल मार-पीटही करता रहा हूँ। मार खाकर यह गुप-चुप हमेशा रोया ही करी है, परन्तु चाहा कभी कुछ नहीं। आज यदि यह कुछ बात कहती है तो सुन ही न लूँ। न सही, न गया आज श्मशानको।—यही न?"

मैं हँस पड़ा।

प्यारीने भी हँसकर कहा, "यह तो होना ही चाहिए। बचपनमें जिससे एक दफा प्यार हो जाता है, क्या वह कभी भूलता है? वह यदि अनुरोध करे तो फिर क्या उसे पैरसे ठोकर मारकर टाला जा सकता है? संसारमें ऐसा निष्ठुर कौन है? चलो, थोड़ा बैठ लो, बहुत-सी बातें करनी हैं। रतन, बाबूजीके जूते तो खोल दे।—अरे हँसते हो?"

"हँसता हूँ यह देखकर, कि तुम लोग मनुष्यको भुलाकर किस तरह वशमें कर लिया करती हो।"

प्यारीने भी हँस दिया; बोली, "यह देखकर हँसते हो! दूसरोंको तो बातोंमें भुलाकर वशमें किया जा सकता है; किन्तु, होश सँभालते ही स्वयं जिसके वशमें रही हूँ, उसे भी क्या बातोंमें भुलाया जा सकता है? अच्छा आज तो वैसे मैं बन्द कर लेती हूँ, किन्तु उस समय हर रोज जब काँटोंमें क्षत-विक्षत होकर माला गूँथ देती थी; तब कितनी बात किया करती थी, कहो न? वह क्या तुम्हारी मारके डरसे?—यह बात भूलकर भी मनमें मत लाना। राजलक्ष्मी ऐसी नहीं है।—किन्तु राम राम! तुम तो मुझे बिल्कुल ही भूल गये थे,—देखकर पहिचान भी न सके!" यों कह कर हँसते ही, सिर हिलानेसे उसके दोनों कानोंके हीरे तक हिलकर हँस उठे।

मैंने कहा, "मैंने तुम्हें मनमें स्थान ही कब दिया था, जो भूलता नहीं? वरन् आज मैंने तुम्हें पहिचान लिया, यह देखकर मुझे खुद ही अचरज हो रहा है। अच्छा, बारह बज चुके,—जाता हूँ।"

प्यारीका हँसता हुआ चेहरा पल-भरमें बिल्कुल फीका पड़ गया। तनिक सँभलकर उसने कहा, "अच्छा, भूत-प्रेत मत मानो, किन्तु साँप-बिच्छू-

चाव-भालू, जंगली सूअर आदि भी तो वन-जंगलमें अँधेरी रातमें फिरते रहते हैं, उन्हें तो मानना चाहिए ?"

मैंने कहा, "इनको तो मैं मानता ही हूँ, और इनसे खूब सावधान रहकर चलता हूँ।"

मुझे जानेको उद्यत देखकर वह धीरेसे बोली, "तुम जिस धातके बने आदमी हो, उससे मैं जानती थी कि तुम्हें अटका न सकूँगी। पर भय मुझे खूब ही हो रहा था, फिर भी मैंने सोचा कि रो-धोकर, हाथ पैर जोड़कर, अन्त तक शायद तुम्हें रोक सकूँ। किन्तु, देखती हूँ रोना ही सार रहा।" मुझे जवाब देते न देख वह फिर बोली, "अच्छा जाओ पीछे लौटाकर अब और असगुन न करूँगी। किन्तु, यदि कुछ हो जायगा तो इस विदेशमें, पराई जगह, राजे-रजवाड़े या मित्र-दोस्त कोई काम नहीं आवेंगे, तब मुझे ही भुगतना पड़ेगा। मुझे पहिचान नहीं सकते, यह मेरे मुँहपर ही कहकर तुम तो अपने पौरुषकी डींग हाँककर चल दिये, किन्तु हमारा तो स्त्रियोंका मन है! विपत्तिके समय मैं तो यह कह न सकूँगी कि, "मैं तुम्हें पहिचानती ही नहीं।" यह कहकर उसने एक दीर्घ निःश्वास दबा लिया। जाते जाते मैंने लौटकर, खड़े होकर, हँस दिया। न जाने क्यों मानो मुझे कुछ सुख-सा अनुभव हुआ। मैं बोला, "अच्छा तो है बाईजी, यह तो मुझे एक बड़ा लाभ होगा। मेरा तो कोई कहीं नहीं है, तब ही तो मैं जान सकूँगा कि [illegible] कोई है,—जो मुझे छोड़कर नहीं जा सकता!"

प्यारी बोली, "सो क्या तुम जानते नहीं हो? एक सौ बार 'बाईजी' कहकर तुम मेरा चाहे जितना अपमान क्यों न करो, राजलक्ष्मी तुम्हें छोड़कर न जा सकेगी,—यह बात क्या तुम मन ही मन नहीं समझते हो?—किन्तु यदि मैं छोड़कर जा सकती, तो अच्छा होता। तुम्हें एक सीख मिल जाती। किन्तु, कितनी बुरी है यह स्त्रियोंकी जाति। एक दफा भी किसीको प्यार किया कि मरी!"

मैं बोला, "प्यारी, भले सन्यासीको भी सीख नहीं मिलती, जानती हो, क्यों?"

प्यारी बोली "जानती हूँ। किन्तु तुम्हारे इस व्यंगसे [illegible] नहीं नहीं है कि इससे तुम मुझे [illegible]। यह मेरा ईश्वर-दत्त [illegible] है। और, जब कि मुझे संसारमें भले बुरे तकका ज्ञान नहीं था, उस समयका [illegible] है,—

अगजका नहीं।" मै कुछ नरम होकर बोला, "अच्छी बात है, चाहता हूँ कि आज मुझपर कोई आफत आवे और तब तुम्हारे इस ईश्वर-दत्त धनकी हाथों हाथ जाँच हो जाय।"

प्यारी बोली, "राम राम! ऐसी बात मत कहो। अच्छे-भले लौट आओ,— इस सचाईकी जाँच करनेकी जरूरत नहीं है। मेरे ऐसे भाग कहाँ कि वक्त-मौकेपर अपने हाथ हिला डुलाकर तुम्हे स्वस्थ सबल कर सकूँ। यदि ऐसा हो तो समझूँगी कि इस जन्मके एक कर्तव्यको पूरा कर डाला।" इतना कहकर उसने अपना मुँह फेरकर अपने आँसू छिपा लिये, यह हरीकेनके क्षीण प्रकाशमे भी मैं अच्छी तरह जान गया।

"अच्छा, भगवान् तुम्हारी इस साधको कभी किसी दिन पूरा करे," कहकर और अधिक देर न करके मै तम्बूके बाहर आ खडा हुआ। कौन जानता था कि हँसी हँसीमें ही मुँहसे एक प्रचण्ड सत्य बाहर निकल जायगी।

तम्बूके भीतरसे आँसुओसे रुँधे हुए कण्ठसे निकली हुई 'दुर्गा! दुर्गा!" की कातर पुकार कानमें आई और मै तेज चालसे चल दिया।

मेरा सारा मन प्यारीकी ही बातोंसे ढँक गया। कब मैं आमके बगीचेके बडे अँधियारे मार्गको पार कर गया, और कब नदीके किनारेके सरकारी बाँधके ऊपर आ खड़ा हुआ, यह मैं जान ही न सका। सारी राह सिर्फ यही एक बात सोचता सोचता आया कि स्त्री-जातिका मन भी कैसा विराट् अचिन्तनीय व्यापार है। इस पिलहीके रोगवाली लडकीने अपने मटके जैसे पेट और लकडी जैसे हाथ पाँव लेकर, सबसे पहले किस समय मुझे चाहा था और करोंदोंकी मालासे अपनी दरिद्र-पूजाको सम्पन्न किया था, सो मै बिल्कुल ही न जान सका। और आज जब मैं जान सका, तब मेरे अचरजका पार नहीं रहा। अचरज कुछ इस लिए भी नहीं था,—उपन्यास नाटकोंमें बाल्य-प्रणयकी अनेकों कथाएँ पढ़ी हैं,—किन्तु जिस वस्तुको गर्वके साथ, अपनी ईश्वरदत्त सम्पत्ति कहकर प्रकट करते हुए भी वह कुण्ठित नहीं हुई, उसे उसने, इतने दिनोंतक, अपने इस घृणित जीवनके सैकडों मिथ्या प्रणयाभिनयोंके बीच, किस कोनेमें जीवित रख छोडा था? कहाँसे इसके लिए वह खुराक जुटाती रही? किस रास्तेसे प्रवेश करके वह उसका लालन-पालन करती रही?

"बाप!"

मै एकदम चौंक पडा। सामने आँख उठाकर देखा, भूरे रंगकी बालूका विस्तीर्ण मैदान है और उसे चीरती हुई एक शीर्ण नदीकी वक्र रेखा टेढी-मेढी होती हुई सुदूरमे अंतर्हित हो गई है। समस्त मैदानमें जगह जगह काँसके पेड़ोंके झुण्ड उग रहे हैं। अंधकारमें एकाएक जान पड़ा कि मानों ये सब एक एक आदमी हैं, जो आजकी इस भयंकर अमावास्याकी रात्रिको प्रेतात्माका नृत्य देखनेके लिए आमंत्रित होकर आये हैं और बालूके बिछे हुए फर्शपर मानों अपना अपना आसन ग्रहण करके सन्नाटेमें प्रतीक्षा कर रहे हैं। सिरके ऊपर, घने काले आकाशमें, संख्यातीत ग्रह-तारे भी, उत्सुकताके साथ अपनी आँखोंको एक साथ खोले हुए ताक रहे हैं। वायु नहीं, शब्द नहीं, अपनी छातीके भीतर छोडकर, जितनी दूर दृष्टि जाती थी वहाँ तक कहीं भी, प्राणोंकी जरा-सी भी आहट अनुभव करनेकी गुंजाइश नहीं। जो रात्रि-चर पक्षी 'बाप्' कहकर थम गया, वह भी और कुछ नहीं बोला। मैं पश्चिमकी ओर धीरे धीरे चला। उसी ओर वह महा श्मशान था। एक दिन शिकारके लिए आकर, जिस सेमरके आडांके झाडको देख गया था. कुछ दूर चलनेपर उनके काले काले डाल-पत्र दिखाई दिये। यही थे उस महाश्मशानके द्वारपाल। इन्हींको पार करके आगे बढ़ना होगा। इसी समयमे प्राणोंकी अस्पष्ट आहट मिलने लगी, परन्तु वह ऐसी नहीं थी जिससे कि चित्त कुछ प्रसन्न हो। कुछ और दूर चलनेपर वह कुछ और साफ हुई। किसी माँके 'कुम्भकर्णी निद्रा' मे सो जानेपर उसका छोटा बच्चा, रोते रोते अन्तमें बिल्कुल निर्जीव-सा होकर, जिस प्रकार रह-रह-कर रिरियाना शुरू कर देता है, ऐसा मालूम हुआ कि ठीक उसी तरह श्मशानके एकान्तमे कोई रिरिया रहा है। मैं बाजी लगाकर कह सकता हूँ कि, जिसने इस रोनेका इतिहास पहले कभी जाना-सुना न हो, वह ऐसी गहरी अँधेरी अमावास्याकी रात्रिमें अकेला उस ओर एक पैर भी आगे बढ़ाना नहीं चाहेगा। वह मनुष्यका बच्चा नहीं चमगीदड़का बच्चा था, जो अँधेरेमे अपनी माँको न देख सकनेके कारण रो रहा था:—यह बात, पहलेसे जाने बिना, सम्भव नहीं है कि कोई अपने आप निश्चयपूर्वक कह सके कि यह आवाज मनुष्यके बच्चेकी है। और भी नजदीक जाकर देखा, ठीक यही बात थी। झोरोंकी तरह सेमरकी डाल-डालमें लटके हुए. असंख्य चमगीदड़ रात्रि-यापन कर रहे हैं और उन्हींमेका कोई शैतान बच्चा इस तरह आर्त्त रुदनसे रो रहा है।

झाड़के ऊपर वह रोता ही रहा और उसके नीचेसे आगे बढ़ता हुआ मैं उस महा श्मशानके एक हिस्सेमें जा खड़ा हुआ। सुबह उस वृद्धने जो यह कहा था कि यहाँ लाखों नर-मुण्ड गिने जा सकते हैं,—मैंने देखा, कि, उसके कथनमें जरा भी अत्युक्ति नहीं है—कपाल तो वहाँ असंख्य पड़े हुए थे; फिर भी, खिलाड़ी उस समय तक भी आकर नहीं जुट पाये थे। मेरे सिवाय कोई और अशरीरी दर्शक वहाँ उपस्थित था या नहीं, सो भी मैं इन दो नश्वर चक्षुओंसे आविष्कृत नहीं कर सका। उस समय घोर अमावास्या थी। इसलिए, खेल शुरू होनेमें और अधिक देरी नहीं है, यह सोच करके मैं एक रेतके टीलेपर जाकर बैठ गया। बन्दूक खोलकर, उसके टोंटेकी और एक बार जाँच करके तथा फिर उसे यथास्थान लगाकर, मैंने उसे गोदमें रख लिया और तैयार हो रहा। पर हाय रे टोंटे! विपत्तिके समय, उसने जरा भी सहायता नहीं की।

प्यारीकी बात याद आ गई। उसने कहा था, "यदि निष्कपट भावसे सचमुच ही तुम्हें भूतपर विश्वास नहीं है, तो फिर, वहाँ कर्म-भोग करने जाते ही क्यों हो? और यदि विश्वासमें जोर नहीं है, तो फिर मैं, भूत-प्रेत चाहे हों चाहे न हों, तुम्हें किसी तरह जाने न दूँगी।" सच तो है, यहाँ आया आखिर क्या देखने हूँ? पाप मनसे अगोचर तो है नहीं। मैं वास्तवमें कुछ भी देखने नहीं आया हूँ। केवल यही दिखाने आया हूँ कि मुझमें कितना साहस है। सुबह जिन लोगोंने कहा था, "कायर बंगाली कामके समय भाग जाते हैं," मुझे तो उनके निकट प्रमाणसहित सिर्फ यही बताना है कि बंगाली लोग बड़े वीर होते हैं।

मेरा यह बहुत-दिनोंका दृढ़ विश्वास है कि मनुष्यके मरनेपर फिर उसका अस्तित्व नहीं रहता। और यदि रहता भी हो, तो भी जिस श्मशानमें उसकी पार्थिव देहको पीड़ा पहुँचानेमें कुछ भी कसर नहीं रखी जाती वहाँ, उसी जगह लौटकर अपनी ही खोपड़ीमें लातें मार मारकर उसे लुढ़काते फिरनेकी इच्छा होना उसके लिए न तो स्वाभाविक ही है और न उचित ही। कमसे कम मैं अपने लिए तो ऐसा ही समझता हूँ। यह बात दूसरी है कि मनुष्यकी रुचि भिन्न भिन्न होती है। यदि किसीकी होती हो तो, इस बढ़िया रातको रात्रि-जागरण करके, मेरा इतनी दूरतकका आना निष्फल नहीं होगा। और फिर, आज उस वृद्ध व्यक्तिने इसकी बड़ी भारी आशा भी तो दिलाई है।

एकाएक हवाका एक झोंका कितनी ही रेत उडाता हुआ मेरे शरीरपरसे होकर निकल गया; और वह खतम भी होने नहीं पाया कि दूसरा, और फिर तीसरा भी, ऊपरसे होकर निकल गया। मनमें सोचने लगा कि भला यह क्या है। इतनी देर तक तो लेश-मात्र भी हवा न थी। अपने आप चाहे जितना ही क्यों न समझूँ और समझाऊँ, फिर भी यह संस्कार, कि मरनेके बाद भी कुछ अज्ञात सरीखा रहता है, हमारे हाड-मासमें ही भिदा हुआ है, और जब तक हाड-मास हैं तब तक वह भी है, फिर चाहे मैं उसे स्वीकार करूँ चाहे न करूँ। इसलिए उस हवाके झोंकेने केवल रेत और धूल ही नहीं उडाई, किन्तु मेरे उस मज्जागत गुप्त संस्कारपर भी चोट पहुँचाई। क्रमशः धीरे धीरे कुछ और जोरसे हवा चलने लगी। बहुतसे आदमी शायद यह नहीं जानते कि मृत मनुष्यकी खोपडीमेंसे हवाके गुजरनेसे ठीक दीर्घ श्वास छोडनेका-सा शब्द होता है। देखते ही देखते आस-पास, सामने पीछे, चारों ओरसे दीर्घ उसाँसोंकी झडी सी लग गई। ठीक ऐसा लगने लगा कि मानों कितने ही आदमी मुझे घेरकर बैठे हैं और लगातार जोर जोरसे हाय हाय करके उसाँसें ले रहे हैं, और अँग्रेजीमें जिसे 'अन्कैनी फीलिंग' (अनमना-सा लगना) कहते हैं, ठीक उसी किस्मकी एक अस्वस्ति या बेचैनी सारे शरीरको झनझना गई। चमगीदडका वह बच्चा तब भी चुप नहीं हुआ था। पीछे पीछे मानों वह और भी अधिक रिरियाने लगा। मुझे अब मालूम होने लगा कि मैं स्वप्नहीन हो रहा हूँ। बहुत जानकारीके फलस्वरूप यह खूब जानता था कि जिस स्थानमें आया हूँ वहाँ, समय रहते, यदि भयको दबा न सका, तो मृत्यु तक हो जाना असम्भव नहीं है। वास्तवमें इस तरहकी भयानक जगहमें, इसके पहले, मैं कभी अकेला नहीं आया था। स्वच्छन्दतासे जो यहाँ अकेला आ सकता था, वह था इन्द्र—मैं नहीं। अनेकों बार उसके साथ अनेकों भयानक स्थानोंमें जा-आनेके कारण मेरी यह धारणा हो गई थी कि उसकी तरहसे मैं स्वयं भी उसीके समान ऐसे सभी स्थानोंमें अकेला जा सकता हूँ। किन्तु, यह कितना बड़ा भ्रम था! और मैं केवल उसी जोरमें उसका अनुकरण करने चला था। एक ही क्षणमें आज सब बातें स्पष्ट हो उठीं। मेरी इतनी चोरी कहाँ रही? मेरे पास वह रामनामका अभेद कवच कहाँ? मैं इन्द्र नहीं हूँ जो इस प्रेत-भूमिमें अकेला खडा रहूँ, और आँखें गडाकर प्रेतात्माओंका खेल देखता रहूँ। मनमें लगा कि कोई एकाध जीवित बाघ या भालू ही दिखाई पड़ जाय, तो

मै शायद जीवित बच जाऊँ ! एकाएक किसीने मानो पीछे खड़े होकर मेरे दाहिने कानपर निश्वास डाला। वह इतनी ठंडी थी कि हिमके कणोंकी तरह मानों उसी जगह जम गई। गर्दन उठाये बगैर ही मुझे साफ साफ दिखाई पड़ा कि वह निःश्वास जिस नाकके बृहदाकार नकुओंमेंसे होकर बाहर आ गई है, उसमें न चमड़ा है न मांस,—एक बूँद रुधिर भी नहीं है। केवल हाड़ और छिद्र ही उसमे हैं। आगे-पीछे, दायें-बाएँ अन्धकार था। सन्नाटेकी आधी रात सायँ सायँ करने लगी। आस-पासकी हाय हाय क्रम क्रमसे मानों, हाथोंके पाससे छूती हुई जाने लगी। कानोंके ऊपर वैसी ही अत्यन्त ठंडी उसासें लगातार आने लगीं और यही मुझे सबसे अधिक परवश करने लगीं। मन ही मन ऐसा मालूम होने लगा कि मानो सारे प्रेत-लोककी ठंडी हवा उस गढ़ेमेंसे बाहर आकर मेरे शरीरको लग रही है।

किन्तु, इस हालतमें भी मुझे यह बात नहीं भूली कि किसी भी तरह अपने होश-हवास गुम कर देनेमे काम न चलेगा। यदि ऐसा हुआ, तो मृत्यु अनिवार्य है। मैंने देखा कि मेरा दाहिना पैर थर-थर काँप रहा है। उसे रोकनेकी चेष्टा की, परन्तु वह रुका नहीं, मानों वह मेरा पैर ही न हो।

ठीक इसी समय बहुत दूरसे बहुतसे कण्ठोंकी मिली हुई पुकार कानोंमे पहुँची, "बाबूजी ! बाबू साहब !" सारे शरीरमें काँटे उठ आये। कौन लोग पुकार रहे हैं ? फिर आवाज आई, "कहीं गोली मत छोड़ दीजिएगा !" आवाज क्रमशः आगे आने लगी, तिरछे देखनेसे प्रकाशकी दो क्षीण रेखाएँ आती हुई नजर पड़ीं। एक दफे जान पड़ा मानो उस चिल्लाहटके भीतर रतनके स्वरका आभास है। कुछ देर ठहरकर और भी साफ मालूम हुआ कि जरूर वही है। और भी कुछ दूर अग्रसर होकर, एक सेमरके वृक्षके नीचे आड़में होकर वह चिल्लाया "बाबूजी, आप जहाँ भी हों गोली-ओली मत छोड़िए. मैं हूँ रतन।" रतन सचमुच ही जातका नाई है, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं रहा।

मैंने उल्लाससे चिल्लाकर उत्तर देना चाहा, किन्तु कण्ठसे आवाज़ नहीं निकली। प्रवाद है कि भूत-प्रेत जाते समय कुछ न कुछ नष्ट कर जाते हैं। जो मेरे पीछे था वह मेरा कण्ठ स्वर नष्ट करके ही विदा हुआ था।

रतन तथा और भी तीन आदमी हाथमें लालटेनें और लट्ठ लिये हुए

समीप आ उपस्थित हुए। उनमें एक तो था छट्टूलाल जो तबला बजाया करता था, दूसरा था प्यारीका दरबान, और तीसरा गाँवका चौकीदार।

रतन बोला, "चलिए, तीन बजते हैं।"

'चलो' कहकर मैं आगे हो लिया। रास्ता चलते चलते रतन कहने लगा, "बाबू, धन्य है आपके साहसको। हम चार जने हैं फिर भी जिस तरह डरते डरते यहाँ आये हैं, उसका वर्णन नहीं हो सकता।"

"तुम आये क्यों?"

रतन बोला, "रुपयोंके लोभसे। हम सबको एक एक महीनेकी तनख्वाह जो नकद मिली है!" इतना कहकर वह मेरे पास आया और गला धीमा करके बोला, "आपके चले आनेपर देखा, माँ बैठी बैठी रो रही हैं। मुझसे बोलीं, "रतन, न जाने क्या होनहार है भइया, तुम लोग पीछे पीछे जाओ। मैं तुम सबको एक एक महीनेकी तनख्वाह इनाम दूँगी।" मैं बोला, "छट्टूलाल और गणेशको साथ लेकर मैं जा सकता हूँ माँ, परन्तु रास्ता तो मैंने देखा ही नहीं है।" इसी समय चौकीदारने हाँक दी। माँ बोलीं, "उसे बुला ले रतन, वह जरूर रास्ता जानता होगा।" बाहर जाकर मैं उसे बुला लाया। चौकीदार जब नकद छः रुपये पा गया, तब रास्ता दिखाता हुआ ले आया। अच्छा बाबूजी, "आपने छोटे बच्चेका रोना सुना है?" इतना कहकर काँपते हुए रतनने मेरे कोटके पीछेका छोर पकड़ लिया। कहने लगा, "हमारे गणेश पाँडे ब्राह्मण हैं, इसीसे हम लोग आज बच गये, नहीं तो—"

मैंने कुछ कहा नहीं। प्रतिवाद करके किसीके भ्रमको भंग करने जैसी अवस्था मेरी नहीं थी। आछन्न-अभिभूतकी तरह चुपचाप चलने लगा।

कुछ दूर चलनेके बाद रतनने पूछा, "आज कुछ देखा बाबूजी?"

मैं बोला, "नहीं।"

मेरे इस संक्षिप्त उत्तरसे रतन क्षुब्ध होकर बोला, "हमारे आनेसे आप क्या नाराज हो गये, बाबूजी? किन्तु यदि आप माँका रोना देखते

मैं चटपट बोल उठा, "नहीं रतन, मैं जरा भी नाराज नहीं हुआ।"

तम्बूके पास आ जानेपर चौकीदार अपने घर चला गया, गणेश और छट्टूलाल नौकरोंके तम्बूमें चले गये। रतनने कहा, "माँने कहा था कि जाते समय एक बार दर्शन दे जाइएगा।"

मैं ठिठक कर खड़ा हो गया, आँखोंके आगे साफ साफ दिखाई पड़ा कि

प्यारी दिएके सामने अधीर उत्सुकता और सजल नेत्रोंसे बैठी बैठी प्रतीक्षा कर रही है और मेरा सारा मन उन्मत्त ऊर्ध्व श्वासमें भरता हुआ उस ओर दौड़ा जा रहा है।

रतनने विनयके साथ बुलाया, "आइए।"

क्षण-भरके लिए आँखें मींचकर अपने अन्तरमें डूबकर देखा, वहाँ होश हवासमें कोई नहीं है, सब गले तक शराब पीकर मस्त हो रहे हैं। राम, राम, इन मतवालोंके दलको लेकर मैं उससे मिलने जाऊँ? यह मुझसे किसी तरह न होगा।

देर होती देखकर रतन विस्मयसे बोला, "उस जगह अँधेरेमें क्यों खड़े हो रहे हैं बाबूजी,—आइए, न?"

मैं चटपट बोल उठा, "नहीं रतन, इस समय नहीं,—मैं चलता हूँ।"

रतन कुण्ठित होकर बोला, "माँ, किन्तु, राह देखती बैठी हैं—"

"राह देखती हैं तो देखने दे। उन्हें मेरा असंख्य नमस्कार जताकर कहना, कल जानेके पहले मुलाकात होगी,—इस समय नहीं। मुझे बड़ी नींद आ रही है रतन, मैं चलता हूँ।" इतना कहकर विस्मित, क्षुब्ध रतनको जवाब देनेका अवसर दिये बगैर ही मैं, जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ, उस तरफके तम्बूकी ओर चल दिया।

९

मनुष्यके भीतरकी वस्तुको पहचान कर उसके न्याय-विचारका भार अन्तर्यामी भगवान्के ऊपर न छोड़कर मनुष्य जब स्वयं उसे अपने ही ऊपर लेकर कहता है 'मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ, यह कार्य मेरे द्वारा कदापि न होता, वह काम तो मैं मर जानेपर भी न करता,' आदि,—तब ये बातें सुनकर मुझे शर्म आये बिना नहीं रहती। और फिर केवल अपने मनके ही सम्बन्धमें नहीं, दूसरोंके सम्बन्धमें भी, मैं, देखता हूँ, कि मनुष्यके अहंकारका मानो अन्त ही नहीं, है। एक दफे समालोचकोंके लेखोंको पढ़कर देखो, बिना हँसे रहा ही नहीं जाता। कविको अतिक्रम करके वे काव्यके मनुष्यको चीन्ह लेते हैं और जोरके साथ कहते हैं, "यह चरित्र किसी तरह भी वैसा नहीं हो सकता,—वह चरित्र कभी वैसा नहीं कर सकता,"—ऐसी और कितनी ही बातें हैं। लोग वाहवाही देकर कहते हैं, "वाह इसीको तो कहते हैं क्रिटिसिज़म! इसीको तो कहते हैं चरित्र-समालोचना! सच ही तो कहा! अमुक समालोचकके होते हुए चाहे जो कुछ लिख देनेमें

कैसे चल सकता है ! देखो, पुस्तकमें जो अटसट भूलें और भ्रान्तियाँ थीं वे सभी किस तरह छान-बीनकर रख दी गई हैं !" सो रख देने दो । भूल भला किससे नहीं होती ? किन्तु, फिर भी तो मैं अपने जीवनकी आलोचना करके, —यह सब पढ़कर उन लोगोंकी लज्जाके मारे अपना सिर ऊपर नहीं उठा सकता । मन ही मन कहता हूँ, "हाय रे दुर्भाग्य ! यह जो कहा जाता है कि, मनुष्यकी अन्तरकी वस्तु अनंत है सो क्या केवल कहने-भरकी बात है ! दम्भ प्रकट करनेके समय क्या इसकी कानी कौड़ीकी भी कीमत नहीं है ? तुम्हारे कोटि जन्मोंके न जाने कितने असंख्य कोटि अद्भुत व्यापार इस अनन्तमें मग्न रह सकते हैं और एकाएक जागरित होकर तुम्हारी बहुज्ञता, तुम्हारा पढ़ना लिखना, तुम्हारी विद्वत्ता, और तुम्हारे मनुष्यको जाँच करनेके क्षुद्र ज्ञान-गर्वको एक मुहूर्त्तमें चूर्ण कर सकते हैं, यह बात क्या एक दफा भी तुम्हारे मनमें नहीं आती ?—यह भी क्या तुम नहीं समझ सकते कि, यह सीमाहीन आत्माका आसन है ?'

यही तो मैंने अन्ना जीजीमें अपनी आँखों देखा है । उनकी उज्ज्वल दिव्य मूर्ति इस समय तक भी तो नहीं भूली : जीजी जब चली गईं तब न जाने कितनी गम्भीर स्तब्ध रात्रियोंमें आँखोंके पानीसे मेरा तकिया भीग गया है, और मन ही मन मैंने कहा है कि, जीजी, मुझे अपने लिए अब और कुछ लोभ नहीं है, तुम्हारे पारस-मणिके स्पर्शसे मेरे अन्तर-बाहिरका समस्त लोहा सोना हो गया है । अब कहीं किसी भी तरहकी आबोहवाकी दुष्टतासे जंग लगकर उसके क्षय होनेका डर नहीं है; परन्तु कहाँ गईं तुम जीजी ? जीजी, और किसीको भी मैं अपने इस सौभाग्यका हिस्सा नहीं दे सका, और कोई भी तुम्हें नहीं देख पाया ! अन्यथा तुम्हारा दर्शन पाकर प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति सच्चरित्र साधु हो जाता, इसमें मुझे लेश-मात्र भी सन्देह नहीं है । यह किस तरह सम्भव हो सकता है, इस बातको लेकर मैं उस समय कल्पनाओंकी भी कल्पनाओंमें सारी रात जागकर बिता देता था । कभी मनमें आता कि देवी चौधुरानीके * समान यदि कहींसे मैं सात घड़े मुहरें पा जाऊँ तो अन्ना जीजीको एक बार भारी सिंहासनपर बैठा दूँ, [illegible] देशके लोगोंको बुलाऊँ और उन्हें उनके सिंहासनके सामने [illegible] दूँ । कभी सोचता, [illegible] बड़े भारी [illegible] उन्हें विराजमान करके [illegible]

---

* स्व० बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके प्रसिद्ध उपन्यास 'देवी चौधुरानी' की कथा-नायिका

हुआ उन्हें देश-विदेशमे लिये फिरूँ। इसी तरह न जाने कितने विलक्षण आकाश-कुसुमोंकी मै मालाऍ गूँथता रहता, इस समय उन्हें याद करके भी मुझे हँसी आती है। साथ ही आखोंसे ऑसू भी कुछ कम नहीं गिरते।

उस समय मेरे मनके भीतर यह विश्वास हिमाचलके समान दृढ़ होकर बैठ गया था कि मुझे मुग्ध कर सके ऐसी नारी इस लोकमें तो निश्चयसे नहीं, है,—परन्तु परलोकमें भा है या नहीं इसकी भी मानों मै कल्पना नहीं कर सकता था। सोचता था कि जीवनमें जब कभी किसीके मुँहसे ऐसी कोमल बोली, होठोंमे ऐसी मधुर हँसी, ललाटपर ऐसा अलौकिक तेज, ऑखोंमें ऐसी सजल करुण दृष्टि पाऊँगा, तभी मैं ऑख उठाकर उसकी ओर देखूँगा! जिसे मैं अपना मन दूँगा वह भी मानों ऐसी ही सती साध्वी होगी; उसके भी प्रत्येक कदमपर मानों ऐसी ही अनिर्वचनीय महिमा फूट उठेगी, इसी तरह वह भी मानों संसारका समस्त सुख-दुख, समस्त अच्छा-बुरा, समस्त धर्म-अधर्म त्याग करके ही मुझे ग्रहण कर सकेगी।

मैं वही तो हूँ! तो भी आज सुबह नींद खुलते ही किसीके मुँहकी वाणीने, किसीके होठोंकी हँसीने, किसीके चक्षुओंके जलने, याद आकर, हृदयमे थोड़ी-सी पीड़ा उत्पन्न कर दी। मेरी संन्यासिनी जीजीके साथ कहीं किसी भी अंगमें उसका बिन्दुमात्र भी सादृश्य था? फिर भी ऐसा ही मालूम हुआ। छः सात रोज पहले अन्तर्यामी भगवान भी आकर यदि यह कहते तो, मैं हँसकर उड़ा देता और कहता, "अन्तर्यामी इस शुभ कामनाके लिए तुम्हे हजारों धन्य-वाद! किन्तु तुम अपना काम देखो, मेरी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरे हृदयकी कसौटीपर अमल सोना कसा जा चुका है, वहॉ अब पीत-लकी दूकान खोलनेसे खरीददार नहीं जुटेंगे।"

परन्तु फिर भी खरीददार जुट गया। मेरे अन्तरमें जहॉ कि अन्नदा जीजीके आशीर्वादसे खरा सोना भरा पड़ा था, एक अभागा, पीतलका लोभ नहीं सँभाल सका और उसे खरीद बैठा,—यह क्या कुछ कम अचरजकी बात है!

मैं खूब समझता हूँ कि जो लोग कठोर आलोचक हैं वे मेरी आत्म-कथामे इस स्थानपर अधीर होकर बोल उठेंगे, "इतना फुलाकर—अतिरञ्जित करके आखिर, बाबू, तुम कहना क्या चाहते हो? अच्छी तरह स्पष्ट करके ही कह दो न कि वह कौन है? आज सोकर उठते ही प्यारीका मुँह याद करके तुम व्यथित हो उठे थे,—यही न? जिसे मनके दरवाजेपरसे ही झाड़ू मारकर

बिदा कर देते थे आज उसे ही बुलाकर घरमें बसाना चाहते हो,—यही न ? तो ठीक है। यदि यह सत्य है, तो इसके बीचमें तुम अपनी अन्नदा जीजीका नाम मत लो। क्योंकि, तुम चाहे जितनी बातें, चाहे जिस तरह बना सजाकर क्यों न कहो, हम लोग मानव-चरित्र खूब समझते हैं। हम यह जोर देकर कह सकते हैं कि सती-साध्वीका आदर्श तुम्हारे मनके भीतर स्थायी नहीं हुआ, उसे अपनी सारी शक्ति लगाकर तुम कभी नहीं ग्रहण कर सके। यदि कर सके होते तो इस मिथ्यामें अपनेको न भुला सकते।"

यह ठीक है। किन्तु अब और तर्क नहीं करूँगा। मैंने समझ लिया है कि मनुष्य अन्त तक किसी तरह भी अपना पूरा पूरा परिचय नहीं पाता। वह जो नहीं है, वही अपनेको समझ बैठता है और बाहर प्रचार करके केवल विडम्बनाकी सृष्टि करता है और जो दण्ड इसका भोगना पड़ता है, वह भी बिल्कुल हलका नहीं होता। किन्तु रहने दो, मैं तो खुद जानता हूँ कि जिस नारीके आदर्शपर इतने दिन क्या बात 'प्रीच' (उपदेश) करता फिरा हूँ। इसलिए, मेरी इस दुर्गतिके इतिहासपर लोग जब कहेंगे कि श्रीकान्त 'हम्बग-हिपोक्रेट' है, तब चुपचाप मुझे सुन ही लेना पड़ेगा। फिर भी मैं 'हिपोक्रेट' नहीं था. 'हम्बग' करनेका मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव सिर्फ इतना ही है कि मुझमें जो दुर्बलता अपने आपको छुपाये हुई थी उसकी खबर मैंने नहीं रक्खी। आज जब वह, समय पाकर, सिर उठाकर खड़ी हो गई और जब उसने अपने ही समान और भी एक दुर्बलताको सादर आह्वान करके एकबारगी अपने भीतर बिठा लिया, तब अनन्त विस्मयसे मेरी आँखोंसे आँसू गिर पड़े, किन्तु 'जा' कहकर उसे बिदा करते भी मुझसे नहीं बन पड़ा। यह भी मैं जानता हूँ कि आज लज्जाके मारे अपना मुँह छिपानेके लिए मेरे पास कोई स्थान नहीं है; किन्तु हृदयका कोना कोना पुलकसे आज परिपूर्ण हो उठा है! नुकसान जो होना हो सो हो, हृदय तो इसका त्याग करना नहीं चाहता!

"बाबू साहब!" गद्दाका नौकर आ पहुँचा। हड़बड़ाकर मैं सीधा होकर बैठ गया। उसने आदरपूर्वक कहा, "कुमार साहब तथा और भी बहुतसे लोग आपकी बात शिकारी कहानी सुननेके लिए आपके आनेकी राह देख रहे हैं।"

मैंने पूछा, "उन्हें मालूम कैसे हुआ?" वह बोला, "दरबानने बतलाया है कि आप रातके अन्तमें वापिस लौट आये हैं।"

हाँथ-मुँह धो कपड़े बदल, जैसे ही मैं बड़े तम्बूके अन्दर गया कि सब लोगोंने एक साथ शोर मचा दिया। एक ही साथ मानो एक लाख प्रश्न हो गये। मैंने देखा कि कलके वे वृद्ध महाशय भी वहाँ हैं और एक तरफ प्यारी भी अपने दल बलको लेकर चुपचाप बैठी है। रोजके समान आज उससे चार आँखें नहीं हुईं। मानो वह जान-बूझकर ही और किसी तरफ आँखें फिराये बैठी थी।

आकुल सवालोंकी लहरके शांत होते ही मैंने जवाब देना शुरु किया। कुमारजी बोले, "धन्य है तुम्हारा साहस, श्रीकान्त। कितनी रातको वहाँ पहुँचे थे?"

"बारह और एकके बीच।"

वृद्ध महाशय बोले, "घोर अमावास्या!—साढ़े ग्यारह बजेके बाद अमावस पड़ी थी।"

चारों तरफसे अचरजसूचक ध्वनि उठकर क्रमशः शान्त होते ही कुमारजीने फिर प्रश्न किया, "उसके बाद क्या देखा?"

मैं बोला, "दूरतक फैले हुए हाड-पिंजर और खोपड़ियाँ।"

कुमारजी बोले, "उफ, कैसा भयंकर साहस है! श्मशानके भीतर गये थे या बाहर खड़े रहे थे?"

मैं बोला, "भीतर जाकर एक बालूके ढूहपर जाकर बैठ गया था।"

"उसके बाद—उसके बाद? बैठकर क्या देखा?"

"बालूके टीले सायँ सायँ कर रहे हैं।"

"और?"

"काँसके झुरमुट और सेमरके वृक्ष।"

"और?"

"नदीका पानी।"

कुमारजी अधीर होकर बोले, "यह सब तो जानता हूँ जी! पूछता हूँ कि वह सब कुछ—"

मैं हँस पड़ा और बोला, "और दो एक बड़े चमगीदड़ सिरके ऊपरसे उड़कर जाते हुए देखे थे।"

वृद्ध महाशयने स्वयं उस समय आगे बढ़कर पूछा, "और कुछ नहीं देखा?" मैं बोला, "नहीं।"

उत्तर सुनकर तम्बू-भरके आदमी मानो निराश हो गये। उस समय

वृद्ध महाशय एकाएक क्रुद्ध हो उठे, “ ऐसा कभी हो नहीं सकता। आप गये ही नहीं।” इनके गुस्सेको देखकर मैंने सिर्फ हँस दिया। क्योंकि बात ही गुस्से होनेकी थी। कुमारजी मेरा हाथ दबाकर मिन्नतभरे स्वरसे बोले, “ तुम्हें कसम है श्रीकान्त, क्या क्या देखा, सच सच कह दो।”

“ सच ही कहता हूँ, कुछ नहीं देखा।”

“ कितनी देर ठहरे वहाँपर।”

“ तीनेक घण्टे।”

“ अच्छा, देखा नहीं, कुछ सुना भी नहीं ?”

“ सुना।”

क्षण-भरमें ही सबका मुँह उत्साहसे प्रदीप्त हो उठा। क्या सुना, उसे सुननेके लिए लोग कुछ और भी आगे सरक आये। तब मैंने कहना शुरू किया कि किस तरह रास्तेके ऊपर एक रात्रि-चर पक्षी ‘ आपू ’ कहकर उड़ गया, किस तरह बच्चेकी-सी आवाजमें एक पक्षीके बच्चेने सेमरके वृक्षपर चिरिया-चिरियाकर रोना शुरू कर दिया, किस तरह एकाएक आँधी उठी और मृत मनुष्योंकी खोपड़ियाँ दीर्घ श्वास छोड़ने लगीं और सबके अन्तमें किस तरह मानो कोई मेरे पीछे खड़ा होकर लगातार बरफसरीखी ठंडी साँस दाहिने कानपर छोड़ने लगा। मेरा कथन समाप्त हो गया किन्तु देर तक किसीके मुँहसे एक भी शब्द बाहर न निकला। सारा तम्बू मानो सन्न हो रहा। अन्तमें वह वृद्ध [illegible] उसास छोड़कर मेरे कन्धेपर एक हाथ रखकर, धीरे धीरे बोला, “ बाबूजी, आप सचमुच ही ब्राह्मणके बच्चे हैं, इसीलिए कल अपनी जान लिये लौट आये। नहीं तो और कोई जिन्दा नहीं लौट सकता था। किन्तु, आजसे [illegible] बुड्ढेकी कसम है बाबूजी, फिर कभी ऐसा दुःसाहस न कीजिएगा। आपके माँ-बापके चरणोंमें मेरे कोटि कोटि प्रणाम,—केवल उन्हींके पुण्य-प्रतापसे आप बच गये हैं।” इतना कहकर उसने [illegible] मेरे पैर छू लिये।

पहले कह चुका हूँ कि यह मनुष्य बात करना खूब जानता था। तब उसने बात करना शुरू किया! आँखोंकी पुतलियों और भौंह, कभी [illegible] और कभी फैलाकर, कभी घुमाकर और कभी [illegible] रोनेसे शुरू करके कानपर ठंडी उसाँसके छोड़ने पर्यन्तकी ऐसी [illegible] व्याख्या सुनाई कि, जिसके सबब, रातको हमारे बीच रहते हुए भी, मेरे [illegible]

चाल तक काँटोंकी तरह खड़े हो गये। कल सुबहकी तरह आज भी प्यारी गुप-चुप कब सरक कर समीप आ बैठी, इसपर मेरा ध्यान ही नहीं गया। एकाएक एक उसासके शब्दसे गर्दन घुमाकर मैंने देखा कि वह ठीक मेरी पीठके पीछे बैठी हुई निर्निमेष दृष्टिसे बोलनेवालेके मुँहकी ओर देख रही है और उसके दोनों चिकने उजले गालोंपर झड़े हुए अश्रुओंकी दो धाराएँ सूखकर फूट उठी हैं। कब और किस लिए वह आँखोंका जल बह निकला था, शायद वह बिल्कुल ही जान नहीं सकी; नहीं तो उन्हें पोंछ डालती। किन्तु, उसी अश्रु-कलुषित तल्लीन मुखका पल-भरका दृष्टिपात ही मेरे हृदयमें एक अग्निकी रेखा अंकित कर गया। बात समाप्त होते ही वह उठकर खड़ी हो गई और कुमार-जीको सलाम करके, अनुमति माँगकर, धीरे धीरे बाहर चली गई।

आज सुबह ही मेरे विदा होनेकी बात थी। परन्तु, शरीर स्वस्थ नहीं था, इसलिए कुमारजीका अनुरोध स्वीकार करके मैं उस समय, जाना स्थगित करके, अपने तम्बूमें वापस लौट आया। इतने दिनोंके बाद आज प्यारीके आचरणमें पहले पहल मैंने दूसरा भाव देखा। इतने दिन उसने परिहास किया है, व्यंग किया है, और कलहका आभास तक भी उसके दोनों नेत्रोंकी दृष्टिमें कुछ दिन घनीभूत हो गया है,—यह सब मैंने अनुभव किया है। परन्तु, इस तरहकी उदासीनता पहले कभी नहीं देखी। फिर भी, व्यथित होनेके बदले मैं खुश ही हुआ। क्यों, सो जानता हूँ। यद्यपि युवती स्त्रियोंके मनकी गति-विधिको लेकर माथापच्ची करना मेरा पेशा नहीं है, और न इसके पहले यह काम मैंने कभी किया ही है, पर मेरे मनके भीतर जो बहुत जन्मोंकी अखण्ड धारावाहिकता छिपी हुई मौजूद है, उसके बहुदर्शनकी अभिज्ञतासे रमणी-हृदयका गूढ तात्पर्य स्पष्ट प्रतिभासित हो उठा। वह उसे अपना अपमान समझकर क्षुब्ध नहीं हुआ वरन् उसे प्रणय अभिमान समझकर पुलकित हो उठा। शायद, इसी छिपी हुई धारावाहिकताके गुप्त इशारेसे मैंने अपनी श्मशान-यात्राके यहाँ तकके इतिहासमें, इस बातका उल्लेख तक नहीं किया कि प्यारीने कल-रातको मुझे श्मशानसे लौटा लानेके लिए आदमी भेजे थे और वह स्वयं भी बात पूरी होते ही उसी तरह गुप-चुप बाहर चली गई थी। इसीलिए है यह अभिमान! कल रातको लौटकर उससे मुलाकात करके मैंने यह नहीं कहा कि वहाँ क्या हुआ था। उसे जिस बातको अकेले बैठकर सुननेका सबसे पहले अधिकार था उसीको आज वह सबसे पीछे बैठकर मानों-

दैवात् ही सुन सकी है। परन्तु, अभिमान भी इतना मीठा होता है!—जीवनमें उसके स्वादको उस दिन सबसे पहले उपलब्ध करके मैं बिछौने पर एकान्तमें बैठ गया और लगातार बहुत-बहुत उसका उपभोग करने लगा।

आज दोपहरको मैं सो जाना चाहता था। बिछौनेपर लेटे लेटे बीच बीचमें तन्द्रा भी आने लगी परन्तु रतनके आनेकी आशा बार बार हिला हिलाकर उसे तोड़ देने लगी। इस तरह समय तो निकल गया परन्तु रतन नहीं आया! वह आयगा अवश्य, यह विश्वास मेरे दिलमें ऐसा दृढ़ हो रहा था कि. [illegible] बिस्तर छोड़ कर बाहर आकर मैंने देखा कि सूर्य पश्चिमकी ओर ढल पड़ा है, तब मुझे मन ही मन यह निश्चय हो गया कि जब मैं तन्द्रामें पड़ा हुआ था तब रतन, मेरे यहाँ आया है और मुझे निद्रित समझकर लौट गया है।—मूर्ख! एक दफे पुकार ही लेना तो क्या हो जाता! दोपहरका निर्जन [illegible] यों ही निरर्थक चला गया, यह सोचकर मैं क्रुद्ध हो उठा। परन्तु संध्याके बाद वह फिर आयगा और एक छोटा-सा अनुरोध,—नहीं तो लिखा हुआ एक पुर्जा,—जो कुछ भी हो, चुप-चुप हाथमें थमा जायगा: इसमें मुझे जरा भी संशय नहीं था, किन्तु यह समय कटे किस तरह? सामनेकी ओर देखने ही कुछ दूर पर विशाल जल-राशि एकदम मेरी आँखोंके ऊपर झक् झक् कर उठी। वह किसी विस्मृत जमींदारका विशाल [illegible] था। यह तालाब करीब आध कोस विस्तृत था। उत्तरकी ओरसे यह मिलकर भर गया था और घने जंगलसे ढँक गया था। गाँवके बाहर होनेसे सारा गाँवकी स्त्रियाँ इसके जलका उपयोग नहीं कर पाती थीं। बातों ही बातोंमें सुना था कि यह तालाब कितना पुराना है और किसने बनवाया था, इसका पता किसीको नहीं है। एक पुराना टूटा घाट था, उसीके एकान्त होनेसे जाकर मैं बैठ गया। एक समय इसके चारों ओर बसता हुआ गाँव था जो न जाने कब [illegible] और महामारीके प्रकोपसे उजड़ होकर, फिर अपने वर्तमान स्थानमें, सरक आया है। छोड़े हुए मकानोंके ध्वंसके निशान चारों ओर दिखाई देते हैं। डूबते हुए सूर्यकी तिरछी किरणोंकी छटाने धीरे धीरे [illegible] तालाबके [illegible] पानीमें सोना मथ दिया, मैं एकटक होकर देखता रहा।

इसके बाद धीरे धीरे सूर्य डूब गया। तालाबका काला पानी और भी काला हो गया। पासके ही जंगलमेंसे दो-एक सियार निकल [illegible] निकल कर डरते डरते पानी पीकर चले गये। [illegible] मुझे उठनेका समय हो गया

है,— जिस समयको काटनेके लिए मैं वहाँ गया था वह कट गया है, यह सब अनुभव करके भी मैं वहाँसे उठ न सका,—मानो उस टूटे घाटने मुझे जबरन बिठा रखा !

खयाल आया कि जहाँ पैर रखकर मैं बैठा हुआ हूँ वहींपर पैर रखकर न जाने कितने आदमी कितनी दफा आये हैं, गये हैं। इसी घाटपर वे स्नान करते, मुँह धोते, कपड़े छाँटते और जल भरते थे। इस समय वे कहाँके किस जलाशयमें ये समस्त नित्य-कर्म पूर्ण करते होंगे ? यह गाँव जब जीवित था तब निश्चयसे वे लोग इस समय यहाँ आकर बैठते थे। कितने ही गान गाकर और कितनी ही बातें करके दिन-भरकी थकावट दूर करते थे। इसके बाद अकस्मात् एक दिन जब महाकाल महामारीका रूप धारण करके सारे गाँवको नोच ले गया तब न जाने कितने मरणोन्मुख व्यक्ति प्यासके मारे यहाँ दौड़े आये हैं और इसी घाटके ऊपर अपना अन्तिम श्वास छोड़कर उसके साथ चले गये हैं। शायद उनकी पिपासातुर आत्मा आज भी यहींपर चक्कर काटती फिरती होगी। यह भी कौन जोर देकर कह सकता है कि जो आँखोंसे नहीं दिखाई देता वह है ही नहीं ? आज सुबह ही उस वृद्धने कहा था, "बाबूजी, मनमें यह कभी मत सोचना कि मृत्युके उपरान्त कुछ शेष नहीं रहता,— असहाय प्रेतात्माएँ हमारे ही समान सुख-दुख क्षुधा-तृषा लेकर विचरण नहीं करतीं।" इतना कहकर उसने वीर विक्रमाजीतकी कथा, और न जाने कितनी ही तांत्रिक साधु-सन्यासियोंकी कहानियाँ विस्तारसे कह सुनाई थीं। और कहा था कि, "यह भी मत सोचना कि समय और सुयोग मिलने पर वे दिखाई नहीं देती हैं या बात नहीं कर सकती हैं, अथवा नहीं करती हैं। तुम्हें उस स्थानपर और कभी जानेके लिए मैं नहीं कहता, परन्तु जो लोग यह काम कर सकते हैं उनके समस्त दुःख किसी भी दिन सार्थक नहीं होते, इस बातपर स्वप्नमें भी कभी अविश्वास मत करना।"

उस समय, सुबहके प्रकाशमें, जिन कहानियोंने केवल निरर्थक हँसीका उपादान जुटा दिया था, इस समय वे ही कहानियाँ निर्जन गहरे अंधकारके बीच कुछ दूसरे ही किस्मके चेहरे धारण करके दिखाई दीं। मनमें आने लगा कि जगतमें प्रत्यक्ष सत्य यदि कोई वस्तु है तो वह मृत्यु ही है। भली बुरी सुख-दुखकी ये जीवनव्यापी अवस्थाएँ मानों आतिशबाजी हैं, जो तरह तरहके साज-सरजामके समान केवल किसी एक विशेष दिन जलकर राख हो

जानेके लिए ही इतने यत्न और कौशल्यके साथ बनकर तैयार हुई हैं। तब मृत्युके उस पारका इतिहास यदि किसी तरह सुन लिया जा सके तो उसकी अपेक्षा बडा लाभ और क्या है? फिर उसे कोई भी कहे और कैसे भी कहे।

हठात् किसीके पैरोंके शब्दसे मेरा ध्यान भंग हो गया। पलटकर देखा, केवल अंधकार है, कहीं कोई नहीं है। मै बदन झाडकर उठ खडा हुआ। गत रात्रिकी बात याद करके मन ही मन हँसकर बोला, नही, अब और यहाँ नहीं बैठ रहना चाहिए। कल दाहिने कानके ऊपर उसासा छोड गया था, आज आकर यदि बायें कानपर छोडना शुरू कर दे, तो यह कुछ अधिक सहज न होगा।

वहाँ बैठे बैठे कितनी देर हो गई और अब कितनी रात है, यह मैं ठीक तौरसे निश्चित नही कर सका। मालूम होता है कि आधी रातके आस पासका समय होगा। परन्तु अरे यह क्या? चला जा रहा हूँ तो चला ही जा रहा हूँ, उस सकरी पगडंडीका जैसे अन्त ही नहीं होना चाहता! इतने बहुतसे तम्बुओंमेंसे एक दीपकका भी प्रकाश नजर नहीं आता! बहुत देरसे सामने एक बाँसका वृक्ष नजर रोके खडा था; एकाएक खयाल आया कि इसे तो आते समय देखा नही था! दिशा भूलकर, कहीं और किसी ओर तो नहीं चल दिया हूँ? कुछ और चलनेपर मालूम हुआ कि वह बाँसका वृक्ष नहीं है, किन्तु, कुछ इमलीके पेड, एक दूसरेसे सटे हुए, दिशाओंको ढके जमात बाँधकर खडे हैं और उन्हींके नीचेसे रास्ता टेढा मेढा होकर अदृश्य हो गया है। स्थान इतना अधकारपूर्ण है कि अपना हाथ भी अपनेको नहीं दिखाई देता। छाती धडधडाने लगी।—अरे मैं जा कहाँ रहा हूँ? आँख कान बन्द करके किसी तरह उन इमलीके वृक्षोंके पार जाकर देखता हूँ कि सामने अनन्त काला आकाश, जितनी दूर नजर जाती है उतनी दूर तक, विस्तृत हो रहा है। किन्तु सामने वह ऊँची-सी जगह क्या है? नदीके किनारेका सरकारी बाँध तो नहीं है? दोनो पैर मानों टूटनेसे लगे, फिर भी उन्हें किसी तरह घसीटकर मै उसके ऊपर चढ गया। जो सोचा था ठीक वही हुआ। उसके ठीक नीचे ही वह महा श्मशान था। फिर किसीके कदमोंका शब्द सामनेसे होकर नीचे श्मशानमें जाकर विलीन हो गया। इस बार मै किसी तरह लडखडाता हुआ चला और उसी धूल-रेतीके ऊपर बेहोशकी तरह धपसे बैठ गया। अब मुझे लेश-भर भी सन्देह नहीं रहा कि कोई मुझे एक महा श्मशानसे लेकर दूसरे महा श्मशानतक

रास्ता दिखाता हुआ पहुँचा गया। जिसके पद-शब्द सुनकर, उस फूटे घाट-पर, शरीर झाड़कर मैं उठ खड़ा हुआ था उसीके पद-शब्द, इतनी देर बाद, उस तरफ़, सामनेकी ओर, विलीन हो गये।

१०

हरेक घटनाका कारण जाननेकी जिद मनुष्यको जिस अवस्थामें होती है उस अवस्थाको मैं पार कर गया हूँ। इसलिए, किस तरह उस सूचीभेद्य अन्धकार-पूर्ण आधी रातको मैं अकेला, रास्तेको पहिचानता हुआ, तालाबके टूटे घाटसे इस महा श्मशानके समीप आ उपस्थित हुआ, और किसके कदमोंकी वह आवाज, उस स्थानसे बुलाती और इशारा करती हुई, इतनी ही देरमें सामने विलीन हो गई, इन सब प्रश्नोंकी मीमांसा करने-जैसी बुद्धि मुझमें नहीं है। पाठकोंके समीप अपने इस दैन्यको स्वीकार करनेमें मुझे जरा भी लज्जा नहीं है। यह रहस्य आज भी मेरे समीप उतने ही अन्धकारसे ढँका हुआ है। परन्तु, इसीलिए, प्रेत-योनिको स्वीकार करना भी इस स्वीकारोक्तिका प्रच्छन्न तात्पर्य नहीं है। क्यों कि, अपनी आँखों मैंने देखा है,—हमारे गाँवमें एक पागल था। वह दिनको, घर घर घूमकर, भीख माँगकर खाता था और रातको बाँसके ऊपर कपड़ा डालकर, और उसे सामनेकी ओर ऊँचा करके, रास्ते रास्ते बगीचोंके झाड़ोंकी छायामें, घूमता फिरता था। उसके चेहरेको देखकर अँधेरेमें न जाने कितने लोगोंकी दँतौरी बँध बँध गई हैं। इसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं था, फिर भी यह उसका अँधेरी रातका नित्यका काण्ड था। मनुष्यको व्यर्थ ही डर दिखानेके लिए और भी जितने प्रकारके अद्भुत ढंग वह करता था उनकी सीमा नहीं थी। सूखी लकड़ियोंके गट्ठेको पेड़की डालसे बाँधकर उसमें आग लगा देता, मुखपर काली स्याही पोतकर विशालाक्षी देवीके मंदिरमें बहुत क्लेश सहते हुए खड़ा रहता और उठा-बैठा करता, गहरी रातके समय घरके पिछवाड़े बैठकर नाकके सुरसे किसानोंके नाम ले-लेकर पुकारा करता,—परन्तु, फिर भी, कोई किसी दिन उसे पकड़ न पाया। दिनके समय उसकी चाल-चलन, स्वभाव-चरित्र आदि देखकर उसपर जरा-सा सन्देह करनेकी बात किसीके भी मनमें उदय नहीं हुई। और यह केवल हमारे ही गाँवमें नहीं;—पासके आठ-दस गाँवोंमें भी वह यही करता फिरता था। मरते समय वह अपनी बदमाशी खुद

ही स्वीकार कर गया और उसके मरनेके बाद भूतका उपद्रव भी वहाँ बन्द हो गया। इस क्षेत्रमे भी शायद वैसा ही कुछ था,—शायद नही भी हो। परन्तु जाने दो इस बातको।

हाँ, कह रहा था कि, उस धूल और रेतीसे भरे हुए बाँधके ऊपर जब मैं हतबुद्धि-सा होकर बैठ गया तब केवल दो लघु पद-ध्वनियाँ भीतर जाकर धीरे धीरे विलीन हो गईं। खयाल आया, मानो उसने स्पष्ट करके बता दिया हो,—"राम राम, तूने यह क्या किया? मुझे इतनी दूरतक रास्ता बताकर ले आया, सो क्या वहाँ बैठ जानेके लिए? आ, आ, एक दफा हम लोगोंके भीतर चला आ। इस तरह अपवित्र अस्पृश्यके समान प्रागणके एकान्तमें मत बैठ,—हम सबके बीचमें आकर बैठ।" यह बात मैंने कानोंसे सुनी थी या हृदयके भीतर अनुभव की थी, सो अब याद नहीं कर सकता। परन्तु, उस समय भी जो मुझे होश बना रहा, इसका कारण यह है कि चैतन्यको जबर्दस्ती पकड रखनेसे वह यों ही एक-प्रकारसे बचा रहता है। बिलकुल ही नहीं चला जाता, यह मैंने अच्छी तरह देखा है। इसलिए यद्यपि दोनों ऑखोको खोलकर मै देखता रहा, परन्तु वह मानो तन्द्राका देखना था। वह न तो नींद ही थी और न जागरण ही था। उसमे निद्रितका विश्राम भी नहीं रहता और जाग्रतका उद्यम भी नही आता।

फिर भी मै इस बातको नहीं भूला कि बहुत रात बीत गई है, मुझे तम्बूमें लौटना है और उसके लिए कमसे कम एक बार चेष्टा तो करनी चाहिए; किन्तु, मनमे लगा कि यह सब व्यर्थ है। यहाँपर मैं अपनी इच्छासे तो आया नही हूँ, आनेकी कल्पना भी नही की; इसलिए, जो मुझे इस दुर्गम रास्तेपर रास्ता दिखलाकर लाया है, उसका कुछ विशेष प्रयोजन है। वह मुझे यो ही न लौट जाने देगा। पहले मैंने सुना था कि अपनी इच्छासे इनके हाथोंसे छुटकारा नही मिलता। चाहे जिस रास्ते, चाहे जिस तरह, जोर करके क्यों न निकलो, सब रास्ते गोरखधंधेकी तरह घुमा फिराकर पुरानी जगहपर ही लाकर हाजिर कर देते हैं!

इसलिए, चंचल होकर छटपटाना संपूर्ण तौरसे अनावश्यक समझकर, मैं किसी तरहकी हिलने डुलनेकी भी चेष्टा किये बिना, जब स्थिर होकर बैठ गया तब जो वस्तु अकस्मात् देख पडी, वह मुझे किसी दिन भी विस्मृत नही हुई।

रात्रिका भी स्वतंत्र रूप होता है और उसे, पृथिवीके झाड़-पाले, गिरिपर्वत आदि जितनी भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं उनसे, अलग करके देखा जा सकता है, यह मानों आज पहले मेरी दृष्टिमें आया। मैंने आँख उठाकर देखा कि अन्त-हीन काले आकाशके नीचे, सारी पृथिवीपर आसन जमाये, गम्भीर रात्रि आँखें मूँदे ध्यान लगाये बैठी है और सम्पूर्ण चराचर विश्व मुख बन्द किये, साँस रोके, अत्यन्त सावधानीसे स्तब्ध होकर उस अटल शान्तिकी रक्षा कर रहा है। एकाएक आँखोंके ऊपरसे मानों सौन्दर्यकी एक लहर दौड़ गई। मनमें आया कि किस मिथ्यावादीने यह बात फैलाई है कि केवल प्रकाशका ही रूप होता है, अन्धकारका नहीं? भला, इतनी बड़ी झूठ मनुष्यने किस तरह चुपचाप मान ली होगी? यह तो आकाश और मर्त्य, सबको परिव्याप्त करके, दृष्टिसे भीतर-बाहर अन्धकारका पूर बढ़ा आ रहा है। वाह वाह! ऐसा सुन्दर रूपका झरना और कब देखा है! इस ब्रह्माण्डमें जो जितना गम्भीर, जितना अचिन्त्य, जितना सीमाहीन है,—वह उतना ही अन्धकारमय है। अगाध समुद्र स्याही जैसा काला है, अगम्य गहन अरण्यानी भीषण अन्ध-कारमय है। सर्व लोगोंका आश्रय, प्रकाशका भी प्रकाश, गतिकी भी गति, जीवनका भी जीवन, सम्पूर्ण सौन्दर्यका प्राण-पुरुष भी, मनुष्यकी दृष्टिमें निविड़ अन्धकारमय है। मृत्यु इसीलिए मनुष्यकी दृष्टिमें काली है, और इसीलिए उसका पर-लोक-पंथ इतने दुस्तर अँधेरेमें मग्न है! इसीलिए राधाके दोनों नेत्रोंमें समाकर जिस रूपने प्रेमके पूरमें जगत्को बहा दिया, वह भी घन-श्याम है! मैंने कभी ये सब बातें सोची नहीं, किसी दिन भी इस रास्ते चला नहीं; फिर भी न जाने किस तरह इस भयसे भरे हुए महाश्मशानके समीप बैठकर, अपने इस निरुपाय निःसंग अकेलेपनको लाँघकर, आज सारे हृदयमें एक अकारण रूपका आनन्द खेलने फिरने लगा और बिल्कुल एकाएक यह बात मनमें आई कि कालेमें इतना रूप है, सो पहले तो किसी दिन समझा नहीं! तब तो शायद मृत्यु भी काली होनेके कारण कुत्सित नहीं है; एक दिन जब वह मुझे दर्शन देने आवेगी तब शायद उसके इस प्रकारके, कभी समाप्त न होनेवाले, सुन्दर रूपसे मेरी दोनों आँखें जुड़ा जायँगी। और वह अगर दर्शन देनेका दिन आज ही आ गया हो, तो हे मेरे काले! ओ मेरी समीपस्थ पदध्वनि! हे मेरे सर्व-दुःख-भय-व्यथाहारी अनन्त सुन्दर! तुम अपने अनादि अन्धकारसे सर्वांग भरकर मेरी इन दोनों

आँखोंकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष होओ, मैं तुम्हारे इस अन्ध अन्धकारसे घिरे हुए निर्जन मृत्यु-मंदिरके द्वारपर, तुम्हें निर्भयतासे वरण करके बड़े आनन्दसे तुम्हारा अनुकरण करता हूँ। सहसा मेरे मनमें आया,—तब उसके इस निर्वाक् आह्वानकी उपेक्षा करके अत्यन्त ही अन्तेवासीके समान, मैं यहाँ बाहर किस लिए बैठा हूँ ? एक दफा भीतर बीचमें क्यों न जा बैठूँ !

नीचे उतरकर मैं श्मशानके ठीक बीचों बीच बिल्कुल जमकर बैठ गया। कितनी देरतक इस तरह स्थिर बैठा रहा, इसका मुझे उस समय होश नहीं था। होश आनेपर देखा कि उतना अन्धकार अब नहीं रहा है,—आकाशका एक प्रान्त मानों स्वच्छ हो गया है; और, उसके पास ही शुक्र तारा चमक रहा है। कुछ दबी हुई-सी बातचीतका कोलाहल मेरे कानोंमें पहुँचा। अच्छी तरह निरीक्षण करके देखा, कि दूरपर सेमरके वृक्षकी आड़में, बाँधके ऊपरसे होकर कुछ लोग चले आ रहे हैं, और उनकी दो-चार लालटेनोंका प्रकाश भी आस-पास इधर-उधर हिल-डुल रहा है। फिरसे, बाँधके ऊपर चढ़कर, उस प्रकाशमें ही मैंने देखा कि दो बैलगाड़ियोंके आगे-पीछे कुछ लोग इसी ओर बढ़े आ रहे हैं। समझ पड़ा कि कुछ लोग इस रास्ते होकर स्टेशनकी ओर जा रहे हैं।

मुझे उस समय यह सुबुद्धि सूझ आई कि रास्ता छोड़कर मेरा दूर खिसक जाना आवश्यक है। क्योंकि, आगन्तुकोंका दल चाहे कितना भी बुद्धिमान् और साहसी क्यों न हो, एकाएक इस अँधेरी रात्रिमें, इस तरहके स्थानमें मुझे अकेला भूतकी तरह खड़ा देखकर चाहे और कुछ न करे, परन्तु एक विकट चीख-पुकार अवश्य मचा देगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मैं लौटकर अपनी पुरानी जगहपर जा खड़ा हुआ; और थोड़े समय बाद ही दो चटाई लगी हुई बैलगाड़ियाँ, पाँच छह आदमियोंके पहरेमें, मेरे सामने आ पहुँचीं। एक बार खयाल आया कि आगे चलनेवाले दो आदमी मेरी ओर देखकर, क्षण कालके लिए स्थिर हो, खड़े रहे और अत्यधिक धीमे स्वरमें मानो कुछ कह सुनकर आगे चले गये, और थोड़ी-सी ही देरमें वह सारा दल, बाँधके किनारेकी एक झाड़ीकी ओटमें, अदृश्य हो गया। यह अनुभव करके कि रात अब अधिक बाकी नहीं रही है, जब मैं लौटनेकी तैयारी कर रहा था, ठीक उसी समय उन वृक्षोंकी ओटमेंसे आती हुई खूब ऊँचे कण्ठकी पुकार कानोंमें आई, "श्रीकान्त बाबू—"

मैंने उत्तर दिया, "कौन है रे, रतन ?"

" किसीके कितने ही अनुरोधसे आजकी रात वहाँ न काटोगे, बोलो ? "

" नहीं, नहीं, काटूँगा । "

प्यारीने अपनी अँगूठी उतारकर मेरे पैरोंपर रख दी, गल-वस्त्र होकर प्रणाम किया और पैरोंकी धूल अपने सिरपर लेकर उस अँगूठीको मेरी जेबमें डाल दिया। बोली, " तब जाओ—मैं समझती हूँ कि डेढ़ेक कोस जगह तुम्हें अधिक चलना होगा । "

बैलगाड़ीसे उतर पड़ा । उस समय प्रभात हो गया था ।

प्यारीने अनुनय करके कहा, " मेरी और भी एक बात तुम्हें रखनी होगी । घर लौटते ही मुझे एक पत्र लिखना होगा । "

मैंने मंजूर करके प्रस्थान किया । एक दफा भी लौटकर पीछेकी ओर नहीं देखा कि वे लोग खड़े हैं अथवा आगे चल दिये हैं । परन्तु बड़ी दूर तक अनुभव करता रहा कि उन दो चक्षुओंकी सजल-करुण दृष्टि मेरी पीठके ऊपर बार बार पछाड़ खा-खाकर गिर रही है ।

अड्डेपर पहुँचते प्रायः आठ बज गये । रास्तेके किनारे, प्यारीके उखड़े हुए तम्बूकी, बिखरी हुई परित्यक्त वस्तुओंपर मेरी नजर पड़ते ही एक निष्फल क्षोभ छातीमें मानो हाहाकार कर उठा। मुँह फेरकर जल्दी जल्दी पैर रखते हुए मैंने अपने तम्बूमें प्रवेश किया।

पुरुषोत्तमने पूछा, " आप बड़े भोर ही घूमने बाहर चले गये थे ? "

हाँ-ना किसी तरहका जवाब दिये बगैर ही मैं बिस्तरपर आँखें बंद करके लेट रहा ।

११

प्यारीके निकट जो वादा किया था उसकी मैंने पूरी रक्षा की, घर लौटते ही मैंने यह खबर जताकर उसे एक चिट्ठी लिख दी । जवाब भी जल्द ही आ गया । मैं एक बातपर बराबर ध्यान दे रहा था कि किसी भी दिन प्यारीने मुझे अपने पटनेके मकानके लिए, जोर डालना तो दूर रहा, साधारण तौरसे मौखिक निमन्त्रण भी नहीं दिया । इस पत्रमें भी इसका कोई इशारा न था । सिर्फ नीचेको ओर एक निवेदन था, जिसे कि आज भी मैं नहीं भूला हूँ, " सुखके दिनोंमें नहीं, तो दुखके दिनोंमें मुझे न भूलिए,— यही मेरी प्रार्थना है । "

दिन कटने लगे। प्यारीकी स्मृति धुँधली होकर प्रायः विलीन हो गई। परन्तु एक अचरज-भरी बात बीच-बीचमे मेरी दृष्टिमें पड़ने लगी कि अबकी दफा शिकारसे वापिस लौटनेके बादसे मेरा मन मानो कुछ अनमना-सा रहने लगा है, जैसे मानों एक अभावकी वेदना, दबी हुई सर्दीके समान, शरीरके रोम-रोममें परिव्याप्त हो गई है। बिस्तरोंपर जाते ही वह चुभने लगती है।

याद आता है कि वह होलीकी रात थी। माथेपरसे अबीरका चूर्ण साबुनसे धोकर तबतक साफ नहीं किया था। क्लान्त विवश शरीरसे बिस्तरोंपर पड़ा था। पासकी खिड़की खुली हुई थी, उसीमेंसे सामनेके पीपलके पत्तोंकी फाँकोंमेंसे आकाशव्यापी ज्योत्स्नाकी ओर ताक रहा था। इतना ही याद आ रहा है। परन्तु क्यों दरवाजा खोलकर स्टेशनकी ओर चल दिया और पटनेका टिकिट कटाकर ट्रेनपर चढ़ गया,—वह याद नहीं आता। रात बीत गई। परन्तु दिनको जैसे ही मैंने सुना कि 'बाढ' स्टेशन है और पटना आनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है, वैसे ही एकाएक वहीं उतर पड़ा। जेबमे हाथ डालकर देखा तो घबड़ानेका कोई कारण नजर नहीं आया,—एक दुअन्नी और दसेक पैसे उस समय भी मौजूद थे। खुश होकर दूकानकी खोजमे स्टेशनसे बाहर हो गया। दूकान मिल गई। चिउड़ा, दही और शक्करके संयोगसे अत्युत्कृष्ट भोजन सम्पन्न करनेमे करीब आधा खर्च हो गया। होने दो, जीवनमे इस तरह कितना ही खर्च हुआ करता है,—इसके लिए रंज करना कायरता है।

गाँव घूमनेके लिए बाहर हुआ। घण्टे-भर भी न घूमा था कि, अनुभव हुआ, इस गाँवका दही और चिउड़ा जिस परिमाणमें उपादेय है उसी परिमाणमें पीनेका पानी निकृष्ट है। मेरे इतने प्रचुर भोजनको इतने से समयमे इस तरह पचाकर उसने नष्ट कर दिया कि, ऐसा मालूम होने लगा कि, मानो दस बीस दिनसे अन्नका दाना भी मुँहमे नहीं पड़ा है! ऐसे खराब स्थानमें वास करना एक मुहूर्त-भरके लिए भी उचित नहीं है, ऐसा सोचकर स्थान त्याग करनेकी कल्पना कर ही रहा था कि,—देखता हूँ पास मैं ही एक आमके बगीचेके भीतरसे धुआँ निकल रहा है।

मैंने न्याय-शास्त्र सीखा था। धुएँको देखकर अग्निका निश्चयसे अनुमान कर लिया, इतना ही नही, वरन् अग्निके हेतुका अनुमान करते भी मुझे देर नहीं लगी। इसलिए सीधा उसी ओर चल दिया। पहले ही कह चुका हूँ कि

पानी यहाँका बहुत ही खराब है।

वाह, यही तो चाहिए था! सच्चे संन्यासीका आश्रम मिल गया! बड़ी भारी धूनीके ऊपर लोटेमें चायके लिए पानी चढ़ा है। बाबा आधी आँखें मूँदे सामने बैठे हैं, उनके आसपास गाँजेकी सामग्री रक्खी है। एक सन्यासी बच्चा बकरी दुह रहा है, सेवाके लिए 'चाय' चाहिए। दो ऊँट, दो टट्टू और एक बछड़ेवाली गाय, पास पास वृक्षोंकी डालोंसे बँधे हुए हैं। पासहीमें एक छोटा-सा तम्बू है। झूँककर देखा, भीतर मेरी ही उम्रका एक चेला दोनों पैरोंके बीच पत्थरका खल दबाये नीमके सोंटेसे भंग तैयार कर रहा है। देखकर मैं भक्तिसे सराबोर हो गया और पलक मारते ही बाबाजीके पद-तलमें एक बारगी लोट गया। पद-धूलि मस्तकपर धारण कर हाथ जोड़ मन ही मन बोला, "कैसी असीम करुणा है भगवान् तुम्हारी! कैसे स्थानमें मुझे ले आये! चूल्हेमें जाय प्यारी,—मुक्ति-मार्गके इस सिंह-द्वारको छोड़कर तिलार्ध भी यदि और कहीं जाऊँ तो, मेरे लिए, अनन्त नरकमें भी और जगह न रहे।"

"साधुजी बोले, "क्यों बेटा?"

मैंने निवेदन किया, "मैं गृहत्यागी, मुक्तिपथान्वेषी हतभाग्य शिशु हूँ; मुझपर दया करके अपनी चरण-सेवाका अधिकार दीजिए।"

साधुजीने मृदु हँसी हँसकर दो दफा सिर हिलाकर संक्षेपमें कहा, "बेटा, घर लौट जा, यह पथ अति दुर्गम है।"

मैंने करुण कण्ठसे उसी क्षण उत्तर दिया, "बाबा, महाभारतमें लिखा है, महापापिष्ठ जगाई और माधाई वसिष्ठ मुनिके चरण पकड़कर स्वर्ग चले गये, तो क्या मैं आपके पैर पकड़कर मुक्ति भी नहीं पाऊँगा? निश्चयमे पाऊँगा।"

साधुजी प्रसन्न होकर बोले, "बात तेरा सच्चा हय। अच्छा बेटा, रामजीकी खुसी।" जो दूध दुह रहा था उसने आकर चाय तैयार करके बाबाजीको दी। उनकी 'सेवा' हो गई, हम लोगोंने प्रसाद पाया।

भाँग तैयार हो रही थी सन्ध्याकालके लिए। परन्तु उस समय भी बेला बाकी थी इसलिए और तरहके आनन्दका उद्योग करते हुए 'बाबाने अपने दूसरे चेलेको गाँजेकी चिलम इशारेसे दिखा दी, तथा उसे भरनेमें देर न हो इसके लिए विशेष 'उपदेश' दे दिया।

आध घण्टा बीत गया। सर्वदर्शी बाबाजी मेरे प्रति परम संतुष्ट होकर बोले, "हाँ बेटा, तुममें अनेक गुण हैं। तुम मेरे चेला होनेके अति उपयुक्त पात्र हो।

मैंने, परम आनन्दके साथ, और एक दफा बाबाके चरणोंकी धूलि मस्तक पर धारण कर ली।

दूसरे दिन मैं प्रातःस्नान करके आया। देखा कि गुरुजीके आशीर्वादने अभाव किसी चीजका नहीं है। प्रधान चेला जो थे उन्होंने, एक नया टटका गेरुए कपड़ोंका सट, दस जोड़ी छोटी बड़ी रुद्राक्षकी मालाएँ और एक जोड़ा पीतलके कड़े बाहर निकाल दिये। जहाँ जो वस्तु धारण करनेकी थी उसे उन स्थानपर सजाकर, थोड़ी-सी धूनीकी राख मस्तकपर और मुँहपर मल ली। आँख मीचकर मैंने कहा, "बाबाजी, शीशा-वीसा कुछ है? एक दफा मुँह देखनेकी प्रबल इच्छा हो रही है।" मैंने देखा कि उन्हें भी रसका ज्ञान है। फिर भी उन्होंने कुछ गम्भीर होकर उपेक्षासे कहा, "है एक ठो।"

"तो फिर, छुपाकर ले न आइए एक दफा।"

दो मिनटके बाद आईना लेकर मैं एक वृक्षकी आड़में चला गया। पश्चिमके नाई जिस तरहका आईना हाथमें देकर क्षौर-कर्म संपादित करते हैं, उसी तरहकी वह छोटीसी टीन चढ़ी हुई आरसी थी। खैर जैसी भी हो, मैंने देखा कि वह विशेष तरद्दुद किये जाने और सदा व्यवहारमें आनेके कारण खूब साफ सुथरी थी। चेहरा देखकर हँसे बिना न रहा गया। कौन कह सकता था कि मैं वही श्रीकान्त हूँ जो कुछ ही समय पूर्व राजे-रजवाड़ोंकी मजलिसमें बैठकर बाईजीका गान सुना करता था? खैर, जाने दो।

मैं घण्टे-भरके बाद गुरुमहाराजके समीप दीक्षाके लिए लाया गया। महाराज चेहरा देखकर अतिशय प्रीतिके साथ बोले, "बेटा, एकाध महीना ठहर जाओ।"

मैं धीरे-से 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी पदधूलि ग्रहण करके, हाथ जोड़कर, भक्तिसे भरकर एक तरफ बैठ गया।

आज बातों ही बातोंमें उन्होंने आध्यात्मिकताके अनेक उपदेश दिये। इसकी दुरूहताके विषयमें गंभीर वैराग्य और कठोर साधनाके विषयमें,— आजकलके भण्ड पाखण्डी लोग इसे किस तरह कलंकित करते हैं उसका विशेष विवरण, तथा भगवत्के पाद-पद्मोंमें मतिको स्थिर करनेके लिए क्या क्या करना आवश्यक है,—इस काममें वृक्षजातीय शुष्क वस्तु विशेषके धुएँको बार-बार मुख-विवरके द्वारा शोषण करके नाना-रन्ध्र-पथसे शनैः शनैः विनिर्गत करनेमें कितना आश्चर्यकारी उपकार होता है,—आदि सब उन्होंने

अच्छी तरह समझा दिया, और इस विषयमें मेरी अवस्था अत्यन्त आशाप्रद है, यह इशारेसे बताकर उन्होंने मेरे उत्साहको खूब बढ़ाया! इस तरह उस दिन मोक्ष-पदके अनेक निगूढ़ तात्पर्योंको जानकर मैं, गुरुमहाराजके तीसरे चेलेके रूपमें बहाल हो गया।

गहरे वैराग्य और कठोर साधनाके लिए, महाराजके आदेशसे, हम लोगोंकी सेवाकी व्यवस्था कुछ कठोर किस्मकी थी। परिणाममें वह जैसी थी स्वादमें भी वैसी ही थी। चाय, रोटी, घी, दूध, दही, चिवडा, शक्कर इत्यादि कठोर सात्विक भोजन और उन्हें पचानेके अनुपान। भगवत्पादारविंदोंसे हमारा चित्त विक्षिप्त न हो, इस ओर भी हम लोगोंकी लेशमात्र लापरवाही नहीं थी। इसके फलस्वरूप मेरे सूखे काठमें फूल लग गये और कुछ तोंद बढ़नेके लक्षण भी दिखाई देने लगे।

एक काम था,—भिक्षाके लिए बाहर जाना संन्यासीके लिए सर्वप्रधान कार्य न होनेपर भी प्रधान कार्य था! क्यों कि सात्त्विक भोजनके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध था। किन्तु महाराज स्वयं यह नहीं करते थे, उनके सेवक ही पारी पारीसे किया करते थे। संन्यासीके अन्य दूसरे कर्तव्योंमें तो उनके दूसरे दो चेलोंको मैं बहुत जल्द लाँघ गया; परन्तु केवल इस काममें बराबर लँगड़ाता रहा! इसे किसी दिन भी अपने लिए सहज और रुचिकर न बना सका। फिर भी, एक सुभीता यह था कि, वह हिन्दुस्तानियोंका देश था। मैं भले बुरेकी बात नहीं कहता,—मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि, बंगाल देशकी नाईं वहाँकी औरतें 'बाबा हाथ-जोड़ती हूँ, और एक घर आगे जाकर देखो' कहकर उपदेश नहीं देतीं; और पुरुष भी 'नौकरी न करके तुम भिक्षा क्यों माँगते हो?' यह कैफियत तलब नहीं करते। धनी-निर्धन, बिना किसी भेदभावके सब ही, प्रत्येक घरसे, भिक्षा देते हैं,—कोई विमुख नहीं जाता। इसी तरह दिन जाने लगे, पन्द्रह दिन तो उस ग्रामके बागमें ही कट गये। दिनके समय तो कोई आपत-विपत नहीं थी, केवल रात्रिको मच्छरोंके काटनेकी जलनके मारे मन ही मन लगता था कि, भाड़में जाय मोक्ष-साधना। यदि शरीरके चमड़ेको कुछ और मोटा न किया जायगा, तो अब जान न बचेगी। अन्यान्य विषयोंमें बंगाली लोग चाहे जितने भी श्रेष्ठ क्यों न हों, परन्तु बंगाली चमड़ेकी अपेक्षा हिन्दुस्तानी चमड़ा, इस विषयमें संन्यासके लिए बहुत अधिक अनुकूल है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। उस दिन प्रातः स्नान करके सात्त्विक भोजन प्राप्त करनेके प्रयत्नमें बाहर जा ही रहा

था कि गुरुमहाराजने बुलाकर कहा,

" भारद्वाज मुनि बसहि प्रयागा ! जिनहि रामपद अति अनुरागा ॥ "

अर्थात् " स्ट्राइक दि टेण्ट " (तम्बू उखाड़ लो),—प्रयागकी यात्रा करनी होगी। परन्तु, यह कार्य कुछ महज नहीं था, संन्यासीकी यात्रा जो ठहरी! मचे हुए टट्टुओंको खोजते और उनपर सामान लादते, ऊँटपर महाराजकी जीन कसते, गाय-बकरियोंको साथ लेते, गट्ठे गठरियाँ बाँधते, सिलसिलेसे लगाते लगाते, एक पहर बीत गया। इसके बाद खाना खाकर दो कोस दूर संध्याके पहले ही बिठौरा गाँवके गेवडे एक विराट वटवृक्षके नीचे डेरा जमाया गया। जगह बहुत ही सुन्दर थी, गुरुमहाराजको खूब पसन्द आई। यह तो हुआ, परन्तु भरद्वाज मुनिके उस स्थान तक पहुँचते पहुँचते कितने महीने लग जायँगे, इसका मैं अनुमान नहीं कर सका।

इस बिठौरा गाँवका नाम अभीतक मुझे क्यों याद रहा है सो यहीं कहता हूँ। उस दिन पूर्णिमा तिथि थी; इसलिए, गुरुके आदेशसे हम तीनों जने तीन दिशाओंमें भिक्षाके लिए बाहर निकल पडे थे। अकेला होता तो उदर-पूर्तिके लिए कम कोशिश न करता। परन्तु, आज मेरी वह चाल नहीं थी, इसलिए बहुत कुछ निरर्थक यहाँ वहाँ घूम रहा था। एकाएक एक मकानके खुले दरवाजेके भीतरसे मुझे एक बंगाली लडकीका चेहरा दिखाई पड गया। उसके कपडे यद्यपि देशी करघेपर बुने हुए टाटकी तरह मोटे थे, किन्तु उन्हें पहिननेके विशेष ढंगने ही मेरे कुतूहलको उत्तेजित कर दिया। मैंने सोचा, पाँच-छः दिनसे इस गाँवमें हूँ, करीब करीब सब घरोंमें हो आया हूँ, परन्तु बंगाली स्त्री तो दूरकी बात, बंगाली पुरुषका चेहरा तक भी नजर नहीं आया। साधु-संन्यासियोंके लिए कहीं रोक-टोक नहीं। भीतर प्रवेश करते ही वह स्त्री मेरी ओर देखने लगी। उसका मुँह मैं आज भी याद कर सकता हूँ। इसका कारण यह है कि दस-ग्यारह वर्षकी लडकीकी आँखोंमें इतनी करुण, इतनी मलिन-उदास दृष्टि और कहीं कभी देखी है, ऐसा मुझे याद नहीं आता। उसके मुँहसे, उसके होंठोंसे, उसकी आँखोंसे,—उसके सर्वांगसे मानों दुःख और निराशा फूटी पडती थी। मैंने एकबारगी बँगलामें कहा, " कुछ भिक्षा देना, मा। " पहले तो वह कुछ न बोली। इसके बाद उसके होंठ एक दो बार काँपकर फूल उठे और वह भर-भराकर रो उठी।

मैं मन ही मन कुछ लजाकर रह गया। क्योंकि, सामने कोई न था तो भी, पासके घरमेंसे बिहारी औरतोंकी बातचीत सुनाई पड़ रही थी। उनमेंसे यदि कोई एकाएक बाहर आकर इस अवस्थामें हम दोनोंको देख ले, तो वह क्या सोचेगी, क्या कहेगी यह कुछ भी मैं न सोच सका।— खड़ा रहूँ, या प्रस्थान कर जाऊँ, यह निश्चय कर सकनेके पूर्व ही उस लड़कीने रोते रोते एक साँसमे ही हजार प्रश्न पूछ डाले, "तुम कहाँसे आ रहे हो? कहाँ रहते हो? तुम्हारा घर क्या वर्द्धमान जिलेमें है? तुम वहाँ कब जाओगे? तुम्हें क्या राजापुर मालूम है? वहाँके गौरी तिवारीको चीन्हते हो?"

मैं बोला, "तुम्हारा घर क्या वर्द्धमान जिलेके राजापुरमें है?"

उस लड़कीने हाथोंसे आँखोंका जल पोंछते हुए कहा, "हाँ, मेरे पिताका नाम गौरी तिवारी है और भाईका नाम रामलाल तिवारी है। उन्हें क्या तुम चीन्हते हो? तीन महीने हुए मैं ससुराल आई हूँ, अभीतक एक भी चिट्ठी मुझे नहीं मिली,—पिता, भाई मा गिरिबाला और बाबू कैसे हैं, कुछ भी नहीं जानती। वह जो पीपलका वृक्ष है,—उसके नीचे मेरी बहिनकी ससुरालका मकान है। उस सोमवारको जीजी गलेमें फाँसी लगाकर मर गई,— पर वे लोग कहते हैं कि—नहीं, वे हैजेसे मरी हैं।"

मै विस्मयके मारे हतबुद्धि-सा हो गया। यह क्या बात है? ये लोग, देखता हूँ कि, पूरे हिन्दुस्तानी हैं; परन्तु, लड़की एकबारगी शुद्ध बंगालिन है। इतनी दूर, इन घरोंमें, इन लड़कियोंकी ससुरालें क्यों कर हुईं, और इनके पति, सास-ससुर आदि यहाँ क्या करने आये!

मैंने पूछा, "तुम्हारी बहिनने गलेमें फाँसी क्यों लगाई?

वह बोली, "जीजी राजापुर जानेके लिए रात-दिन रोती थीं, खाती नहीं थीं, सोती नहीं थीं। इसी लिए उनके बाल धन्नीसे बाँधकर उन्हें सारे दिन और सारी रात खड़ा कर रक्खा था। इसीलिए गलेमें रस्सी डालकर मर गई।"

मैंने पूछा, "तुम्हारे भी सास-ससुर क्या हिन्दुस्तानी हैं?"

उस लड़कीने फिर एक बार रोकर कहा, "हाँ। मैं उन लोगोंकी बातचीत कुछ भी नहीं समझ पाती, उन लोगोंका खाना मैं मुँहमें नहीं डाल सकती —मै तो दिन-रात रोया करती हूँ। परन्तु, पिता न तो हमें चिट्ठी ही लिखते हैं और न लिवा ही ले जाते हैं।"

मैंने पूछा, "अच्छा, तुम्हारे पिताने तुम्हें इतनी दूर ब्याहा ही क्यों?"

लड़की बोली, "हम लोग तिवारी जो हैं। हमारी जातिके ब्याह-योग्य लड़के उस देशमें तो मिलते नहीं।"

"तुम्हें क्या वे मारते-पीटते भी हैं?"

"और नहीं तो क्या? यह देखो न।" इतना कहकर उस लड़कीने भुजाओंमें, पीठके ऊपर, मारके निशान दिखाये और फफक फफक कर रोते हुए कहा, "मैं जीजीकी तरह गलेमें फाँसी लगाकर मर जाऊँगी।"

उसका रोना देखकर मेरे भी नेत्र सजल हो उठे और प्रश्नोत्तर या भीखकी अपेक्षा किये बगैर ही मैं बाहर हो गया। किन्तु, वह लड़की मेरे पीछे पीछे चली आई और कहने लगी, "मेरे पिताके पास जाकर तुम कहोगे न? वे मुझे यहाँसे एक दफा ले जायँ, नहीं तो मैं—" किसी तरह थोड़ा-सा सिर हिलाकर स्वीकार करके तेज चालसे अदृश्य हो गया। उस लड़कीका हृदयभेदी आवेदन मेरे दोनों कानोंमें गूँजने लगा।

रास्तेके मोड़के ऊपर ही एक बनियेकी दूकान थी। प्रवेश करते ही दूकानदारने आदरके साथ मेरी अभ्यर्थना की। खाद्य द्रव्यकी भीख न माँगकर जब मैं एक चिट्ठी लिखनेका कागज और कलम दावात माँग बैठा, तब उसने आश्चर्य तो किया, परन्तु इन्कार नहीं किया। उसी जगह बैठकर मैंने गौरी तिवारीके नामपर एक पत्र लिखकर डाल दिया। समस्त विवरण विवृत करनेके बाद अन्तमें यह बात लिखना भी मैं नहीं भूला कि लड़कीकी बहिन हालमें ही फाँसी लगाकर मर गई है और वह खुद भी, मार-पीट अत्याचार सहन न कर सकनेके कारण उसी पथपर जानेका संकल्प कर चुकी है। तुम खुद आकर कुछ उपाय न करोगे तो क्या हो जायगा, सो कहा नहीं जा सकता। बहुत संभव है कि तुम्हारी चिट्ठी-पत्री ये लोग तुम्हारी लड़कीको न देते हों। उसपर ठिकाना लिखा, वर्द्धवान जिलेमें राजापुर ग्राम। मालूम नहीं कि वह पत्र गौरी तिवारीको पहुँचा या नहीं, और पहुँचा भी, तो उसने कुछ किया या नहीं। परन्तु वह घटना मेरे मनपर इस तरह मुद्रित हो गई है कि, इतने समय बाद भी, पूरी तरह याद बनी हुई है, तथा, इस आदर्श हिन्दू समाजके सूक्ष्मातिसूक्ष्म जाति-भेदके विरुद्ध एक विद्रोहका भाव आज भी मेरे मनसे नहीं जाता।

संभव है, यह जाति-भेदका सिद्धान्त बहुत ही अच्छा हो, जब कि इसी उपायसे सनातन हिन्दू जाति आजतक बची हुई है, तब इसकी प्रचण्ड

उपकारिताके सम्बन्धमें संशय करनेके लिए या प्रश्न करनेके लिए और कुछ शेष नहीं रहता। कहीं कोई दो बदनसीब लड़कियाँ दुःख न सह सकनेके कारण गलेमें फाँसी लगाकर मर जायँगी, इस डरसे इसका कठोर बन्धन बिन्दुमात्र शिथिल करनेकी कल्पना करना भी पागलपन है। किन्तु उस लड़कीका रोना जो मनुष्य अपनी आँखों देख आया है उसके लिए यह साध्य नहीं हो सकता कि, वह इस प्रश्नको अपने पासमें आनेसे रोक सके कि किसी तरह टिके रहना,—अपना अस्तित्व मात्र बनाये रखना ही क्या जीवनकी चरम सार्थकता है? इस तरहकी तो बहुत-सी जातियाँ अपना अस्तित्व बनाये हुए मौजूद हैं। कोरकू हैं, कोल भील-संथाल हैं, प्रशान्त महासागरके अनेक छोटे-मोटे द्वीपोंकी अनेक छोटी-मोटी जातियोंकी मनुष्य सृष्टि शुरूसे अभीतक वैसी ही बनी हुई हैं। आफ्रिकामें हैं, अमेरिकामें हैं;—उन जातियोंमें भी इस तरहके सब कठोर सामाजिक आईन-कानून मौजूद हैं जिन्हें सुनकर शरीरका रक्त पानी हो जाता है। उम्रके लिहाजसे वे जातियाँ यूरोपकी अनेक जातियोंके अति वृद्ध पितामहोंकी अपेक्षा भी प्राचीन हैं, और हमसे भी अधिक पुरातन हैं। किन्तु इसलिए ये जातियाँ हमारी अपेक्षा सामाजिक आचार-व्यवहारमें श्रेष्ठ हैं, ऐसा अद्भुत संशय, मैं समझता हूँ, किसीके मनमें न उठता होगा। सामाजिक समस्याएँ झुंड बाँधकर सामने नहीं आतीं। यों ही एकाध क्वचित् कदाचित् ही आविर्भूत होती हैं। अपनी दोनों बंगाली लड़कियोंको हिन्दुस्थानियोंके घर ब्याहते समय गौरी तिवारीके मनमें शायद इस तरहका प्रश्न आया था। किन्तु, वह बेचारा इस दुरूह प्रश्नसे छुटकारा पानेका कोई रास्ता न खोज सकनेके कारण ही अन्तमें, सामाजिक यूपकाठके ऊपर दोनों कन्याओंका बलिदान देनेके लिए बाध्य हुआ था। जो समाज इन दोनों निरुपाय क्षुद्र बालिकाओंके लिए भी स्थान न दे सका, जो समाज अपनेको इतना-सा भी उदार बनानेकी शक्ति नहीं रखता, उस लँगड़े निर्जीव समाजके लिए अपने मनमें मैं किंचित्-मात्र भी गौरवका अनुभव नहीं कर सका। कहीं किसी एक बड़े भारी लेखकके लेखमें पढ़ा था कि हमारे समाजने जिस एक बड़े सामाजिक प्रश्नका उत्तर जगत्‌के सामने 'जाति-भेद' के रूपमें उपस्थित किया है, उसका अन्तिम फैसला आज तक भी नहीं हुआ है।—ऐसा ही कुछ उसमें कहा गया था। किन्तु उस समस्त युक्तिहीन उच्छ्वासका उत्तर देनेकी भी मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। 'हुआ नहीं

है' और 'होगा नहीं' ऐसा प्रबल कण्ठसे घोषित करके जो लोग अपने ही प्रश्नके उत्तरको खुद ही दबा देते हैं उनको जवाब देनेकी भी प्रवृत्ति नहीं होती। खैर, जाने दो।

दुकानसे उठकर और ढूँढ-खोजकर डाक-बक्समें उस बेरंग पत्रको डाल कर जब मैं अपने डेरेपर आ पहुँचा, तब मेरे अन्यान्य सहयोगी आटा, दाल आदि संग्रह करके लौटे न थे।

मैंने देखा कि 'साधु-बाबा' आज मानों कुछ खीझे हुए हैं। कारण भी उन्होंने स्वयं प्रकट कर दिया; बोले, "यह गाँव साधु-संन्यासियोंके प्रति उतना अनुरक्त नहीं है, सेवादिकी व्यवस्था भी वैसी सन्तोषजनक नहीं करता; इस लिए कल ही इस स्थानका त्याग कर देना होगा!" 'जो आज्ञा' कहकर मैंने उसी क्षण उसका अनुमोदन कर दिया। मनके भीतर पटना देखनेका जो प्रबल कुतूहल छिपा था, अपने पास आज मैं उसे और अधिक दबाकर न रख सका।

सिवाय इसके, बिहारके गाँवमें किसी तरहका आकर्षण भी ढूँढे नहीं मिलता था। इसके पहले मैं बंगालके अनेक गाँवोंमें विचरण कर चुका हूँ, किन्तु, उनके साथ इनकी कोई तुलना ही नहीं हो सकती। नर-नारी, पेड़-पौधे, जल-वायु,—कोई भी चीज अपनी सी नहीं मालूम होती थी। सारा मन सुबहसे लेकर रात्रिपर्यंत केवल 'भागूँ भागूँ' किया करता था।

सन्ध्याके समय मुहल्लेसे उस तरह झाँझ-करतालके साथ कीर्तनका सुर कानोंमें नहीं आता। देव-मन्दिरोंमें आरतीके काँसेके घण्टे आदि भी उस तरहका गम्भीर मधुर शब्द नहीं करते। इस देशकी स्त्रियाँ शंखोंको भी वैसी मीठी तरहसे बजाना नहीं जानतीं, तब यहाँ मनुष्य किस सुखके लिए रहते हैं? और मन ही मन ऐसा लगने लगा कि यदि इन सब गाँवोंमें मैं न आ पड़ा होता तो अपने गाँवोंका मूल्य किसी दिन भी इस तरह न जान पाता। हमारे यहाँके पानीमें काई भरी रहती है, हवामें मलेरिया है, प्रायः सभी मनुष्योंके पेटमें पिल्ही बढ़ी हुई है, घर-घर मुकदमे-मामले हुआ करते हैं, महल्ले महल्लेमें दलबन्दियाँ हैं; सो सब रहने दो, परन्तु फिर भी उसके बीच भी कितना रस, कितनी तृप्ति थी। —इस समय मानों, उसके विषयमें कुछ न जानते हुए भी मैं सब कुछ जानने लगा।

दूसरे दिन तम्बू उखाड़कर यात्रा शुरू कर दी गई; और साधु बाबा यथा-

शक्ति भरद्वाज मुनिके आश्रमकी ओर दलबल-सहित अग्रसर होने लगे। किन्तु चाहे रास्ता सीधा पड़ेगा इस खयालसे हो, अथवा मुनिने मेरे मनकी बात जान ली,—इस कारणसे हो, पटनाके दस कोसके भीतर उन्होंने और फिर कहीं तम्बू नहीं गाड़ा। मनमें एक वासना थी।—खैर उसे इस समय रहने दो। पाप-ताप मैंने बहुतसे किये हैं; साधु-संग भी कुछ दिन करके पवित्र हो लूँ।

एक दिन सन्ध्याके कुछ पहले जिस जगह हमारा डेरा पड़ा, उसका नाम था छोटी बगिया। आरा स्टेशनसे यह स्थान आठ कोस दूर है। इस गाँवके एक प्रसिद्ध बंगाली सज्जनसे मेरा परिचय हो गया था। उनकी सदाशयताका यहाँ कुछ वर्णन करूँगा। उनके पैतृक नामको गुप्त रखकर 'राम बाबू' कहना ही अच्छा है, क्योंकि अबतक वे जीवित हैं। और बादमें, अन्यत्र यद्यपि उनसे मेरा साक्षात्कार हुआ था, फिर भी वे मुझे पहिचान नहीं सके थे। इसमें कुछ अचरज भी नहीं है। परन्तु उनका स्वभाव मैं जानता हूँ। गुप्त रूपसे उन्होंने जो सत्कार्य किये हैं उनका प्रकाश्य रूपमें उल्लेख किये जानपर वे विनयसे संकुचित हो उठेंगे, यह मैं अच्छी तरसे जानता हूँ। इस लिए उनका नाम है 'राम बाबू'। किस तरह राम बाबू उस गाँवमें आये थे और किस तरह उन्होंने जमा-जमीन संग्रह करके खेती-बारी की थी,-सो मुझे नहीं मालूम। इतना ही मैं जानता हूँ कि उन्होंने दूसरी दफा विवाह किया था और तीन-चार पुत्र-कन्याओंके साथ वे वहाँ सुखसे वास करते थे।

सुबहके समय सुना गया कि इन्हीं छोटी बगिया और बड़ी बगिया नामक गाँवोंमें उस समय शीतलाने महामारीके रूपमें दर्शन दिये हैं। देखा गया है कि गाँवके दुःसमयमें ही साधु संन्यासियोंकी सेवा विशेप सन्तोषजनक होती है। इसीलिए साधु बाबाने अविचलीत चित्तसे वहाँपर अवस्थान करनेका संकल्प कर लिया।

अच्छी बात है। संन्यासी जीवनके सम्बन्धमें यहाँपरमें एक बात कह देना चाहता हूँ। जीवनमें इनमेंसे मैंने अनेकोंको देखा है। चारेक दफा मैं, उनके साथ ऐसे ही घनिष्ठ भावसे घुल मिलकर भी रहा हूँ। दोप जो उनमें हैं सो हैं ही, मैं तो गुणोंकी बात ही कहूँगा। 'केवल पेटके लिए साधुजी' तो आपमेंसे अनेक जानते होंगे, परन्तु इन लोगोंमें भी ये दो दोप मेरी नजर नहीं आये, और मेरी नजर भी कुछ बहुत स्थूल नहीं है। स्त्रियोंके सम्बन्धमें इन लोगोंका संयम कहो या उत्साहकी स्वल्पता कहो,—खूब अधिक

है, और प्राणोंका भय भी इन लोगोंमें बिल्कुल ही कम होता है। 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्' तो है, परन्तु क्या करनेसे 'बहुदिनं जीवेत्' यह ख्याल नहीं होता। हमारे साधु बाबा भी ऐसे ही थे! पहली वस्तुके याने 'सुख'के लिए दूसरी अर्थात् 'जीवेत्' को उन्होंने तुच्छ कर दिया था!

थोड़ी-सी धूनीकी राख और दो बूँद कमण्डलुके जलके बदलेमें जो सब वस्तुएँ दनादन डेरेमें आने लगीं वह, क्या तो सन्यासी और क्या गृहस्थ, किसीके लिए भी विरक्तिका कारण नहीं हो सकतीं!

राम बाबू स्त्रीसहित रोते हुए आये। चार रोजके बुखारके बाद आज सुबह बड़े लड़केको शीतला दिखाई पड़ी है और छोटा बच्चा कल रातसे ज्वरमें बेहोश पड़ा है। यह जानकर कि वे बंगाली हैं मैंने स्वयं उनके निकट जाकर उनसे परिचय किया।

इसके बाद कथाके सिलसिलेमें मैं महीने-भरका विच्छेद कर देना चाहता हूँ। क्योंकि किस तरह यह परिचय घनिष्ठ होता गया, किस तरह दोनों बच्चे चंगे हुए,—इसकी बहुत लम्बी कथा है। कहते कहते मेरा भी धीरज छूट जायगा, फिर पाठकोंकी बात तो दूर रही। फिर भी, बीचकी एक बात कहे देता हूँ। करीब पन्द्रह दिन बाद, जब कि रोगका प्रकोप बहुत बढ़ा चढ़ा था, साधुजीने अपना डेरा उठानेका प्रस्ताव किया। राम बाबूकी स्त्री रोकर बोल उठीं, "सन्यासी भइया, तुम तो सचमुचके सन्यासी नहीं हो,—तुम्हारे शरीरमें तो दया-माया है। नवीन और जीवनको यदि तुम छोड़कर चले जाओगे, तो वे कभी नहीं बचेंगे। कहाँ, जाओ देखूँ, कैसे जाते हो?" इतना कहकर उसने मेरे पैर पकड़ लिये। मेरी आँखोंमें भी आँसू निकल पड़े। राम बाबू भी स्त्रीकी प्रार्थनामें योग देकर अनुनय-विनय करने लगे। इसलिए मैं नहीं जा सका। साधु बाबासे मैं बोला, "प्रभो, आप अग्रसर हूजिए, मैं रास्तेके बीचमें, नहीं तो प्रयागमें पहुँचकर, आपकी पदधूलि अवश्य ही माथे चढ़ा सकूँगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।" प्रभु कुछ क्षुण्ण हुए। अन्तमें बार बार अनुरोध करके अकारण कहीं विलम्ब न लगा देना, इस सम्बन्धमें बार बार सावधान करके, वे सदल बल यात्रा कर गये। मैं राम बाबूके घरमें ही रह गया। इन थोड़ेसे दिनोंके बीचमें ही मैं इस तरह प्रभुका सबमें अधिक स्नेह-पात्र हो गया था कि, यदि और टिका रहता तो उनकी सन्यास-लीलाके अवसानपर, उत्तराधिकार-सूत्रसे मैं उस टट्टू और दोनों

ऊटोंपर दखल प्राप्तकर सकता, इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया था खैर जाने दो,—हाथकी लक्ष्मी पैरसे ठेलकर, गई बातको लेकर, परिताप करनेमें अब कोई लाभ नहीं है।

दोनों लड़के चंगे हो गये। मारी इस दफे सचमुच ही महामारीके रूपमें दिखाई दी। वह कैसा व्यापार था जिसने अपनी आँखों नहीं देखा वह किसी का लिखा हुआ पढ़कर, कहानी सुनाकर या कल्पना करके हृदयगम कर सके यह असंभव है। अतएव इस असंभव कार्यको संभव करनेका प्रयास मैं नहीं करूँगा। लोगोंने भागना शुरू किया; इसमें और कोई विवेक-विचार नहीं रहा! जिस घरमें मनुष्यका चिह्न दिखाई देता था उसमे झाँककर देखनेसे नजर आता था कि केवल माँ अपनी पीड़ित सन्तानको आगे लिए बैठी है।

राम बाबूने भी अपनी घरू बैलगाड़ीमें माल असबाब लाद दिया। वे तो कई दिन पहले ही ऐसा करना चाहते थे, किन्तु, बाध्य होकर ही न कर सके। पाँच-छः दिन पहलेसे ही मेरी सारी देह एक ऐसे बुरे आलस्यसे भर गई थी कि कुछ भी भला नहीं लगता था। मालूम होता था कि रात्रि-जागरण और परिश्रमके कारण ही ऐसा हो रहा है। उस दिन सुबहसे ही सिर दुखने लगा। बिल्कुल अरुचि होते हुए भी दोपहरके समय जो कुछ खाया शामके वक्त उसे कै कर दिया। रातके ९-१० बजे मालूम हुआ कि बुखार चढ़ आया है। उस दिन सारी रात, उन लोगोंका उद्योग आयोजन चल रहा था, सभी जाग रहे थे। बहुत रात बीते राम बाबूकी स्त्री बाहरसे मेरे कमरेके भीतर झाँककर बोलीं, "संन्यासी भइया, तुम क्या हमारे साथ ही आरातक नहीं चलोगे?"

मैं बोला, "जरूर चलूँगा। किन्तु तुम्हारी गाड़ीमें मुझे थोड़ी-सी जगह देनी होगी।"

बहिनने उत्सुक होकर प्रश्न किया, "सो कैसे संन्यासी भइया? गाड़ियाँ तो दोसे अधिक नहीं मिल सकीं। उनमें तो हम लोगोंभरके लिए भी जगह नहीं है।"

मैंने कहा, "मुझमें तो चलनेकी ताकत नहीं है बहिन, सुबहसे ही खूब बुखार चढा है।"

"बुखार! कहते क्या हो?" इतना कहकर उत्तरकी भी अपेक्षा न करके मेरी नूतन बहिन अपना मुँह श्याम करके चली गईं।

कितनी देरतक मैं सोता रहा, सो नहीं कह सकता। जागकर देखा तो

दिन चढ आया है। मकानके भीतरके सभी कमरोंमें ताला लगा हुआ है, मनुष्य प्राणीका नाम भी नहीं है।

बाहरके जिस कमरेमें मैं था उसके सामनेसे ही इस गाँवका कच्चा रास्ता आरा स्टेशन तक गया है। इस रास्तेपरसे प्रतिदिन कमसे कम ५-६ बैलगाड़ियाँ, मृत्यु-भीत नर-नारियोंका माल-असबाब लादकर, स्टेशन जाया करती थीं। दिन-भर अनेक प्रयत्न करनेके बादमें आमको इनमेंसे एकमें स्थान पाकर जा बैठा। जिन वृद्ध बिहारी सज्जनने दया करके मुझे अपने साथ ले लिया था उन्होंने बड़े तड़के ही मुझे स्टेशनके पास एक वृक्षके नीचे उतार दिया। उस समय बैठनेकी भी मुझमें सामर्थ्य नहीं था। वहीं मैं लेट गया। पासमें ही एक टीनका परित्यक्त शेड था। पहले वह मुसाफिरखानेके काममें आता था; किन्तु, वर्तमान समयमें झड-बादलके दिन गाय-बछड़ोंके उपयोगमें आनेके सिवाय, और किसी काममें नहीं आता था। ये वृद्ध सज्जन स्टेशनसे एक बंगाली युवकको बुला लाये। मैं उसीकी दयासे, कई एक कुलियोंकी सहायतासे, उस शेडके नीचे लाया गया।

मेरा बड़ा दुर्भाग्य है कि मैं उस युवकका कोई परिचय नहीं दे सकता, क्योंकि, मैं उस समय उसकी कुछ भी पूछताछ नहीं कर सका था। पाँच छः महीने बाद, पूछनेका जब सुयोग और शक्ति मिली तब, मालूम हुआ कि शीतलाके रोगसे पीड़ित होकर इस बीचमें ही वह इस लोकसे कूच कर गया है। उसके सम्बन्धमें पूछनेपर इतना ही मालूम हो सका कि वह पूर्वीय बंगालका था और पन्द्रह रुपये महीने वेतनपर स्टेशनमें नौकरी करता था। कुछ देर ठहरकर अपना सैकड़ों जगहसे फटा हुआ बिछौना लाकर उसने हाजिर किया और वह बार बार कहने लगा कि मैं अपने हाथसे पकाकर खाता हूँ और दूसरेके घर रहता हूँ। दोपहरके समय एक कटोरा गरम दूध लाकर उसने जबरन् पिलाकर कहा, "डरनेकी बात नहीं है, आप अच्छे हो जायँगे। परन्तु आत्मीय बन्धु बान्धव आदि किसीको भी यदि खबर देनी हो तो, ठिकाना बतानेपर, मैं तार दे सकता हूँ।"

उस समय मैं खूब होशमें था। इसलिए यह भी अच्छी तरह समझता था कि ऐसी अवस्था बहुत देर तक नहीं रहेगी। इस तरहका ज्वर यदि और भी ५-६ घण्टे स्थायी बना रहा तो होश अवश्य गँवाना पड़ेगा। अतएव, जो कुछ करना है, वह इतने समयके भीतर न करनेपर, फिर नहीं किया जायगा।

सो तो ठीक, परन्तु खबर देनेके प्रस्तावपर मैं सोच विचारमें पड़ गया। क्यों, सो खोलकर बतानेकी जरूरत नहीं। परन्तु सोचा, गरीबका पैसा टेलिग्राममें अपव्यय करनेसे लाभ ही क्या है?

शामके बाद वह भद्र पुरुष अपनी ड्यूटीसे अवकाश लेकर एक घड़ा पानी और एक किरासिनकी डिब्बी लेकर उपस्थित हुआ, उस समय ज्वरकी यंत्रणासे मस्तक क्रमशः बिगड़ रहा था। उसे पासमें बुलाकर मैंने कहा, "जब तक मुझे होश है तबतक बीच बीचमें आकर देख जाना; इसके बाद जो होना हो सो हो, आप और कोई कष्ट न करना।"

वह अत्यन्त मुँह-चोर प्रकृतिका भद्र पुरुष था। बात बनाकर कहनेकी उसमें क्षमता नहीं थी। जवाबमें केवल 'नहीं' कहकर ही वह चुप हो रहा। मैंने कहा, "आपने चाहा था कि किसीको खबर करा दूँ। मैं संन्यासी आदमी हूँ, वास्तवमें मेरा कोई भी नहीं। फिर भी पटनेमें प्यारी बाईके ठिकाने पर यदि एक पोस्ट कार्ड लिख दोगे कि श्रीकान्त आरा स्टेशनके बाहर एक टीन-शेडके नीचे मरणापन्न होकर पड़ा है तो—"

वह युवक अत्यन्त व्यस्त होकर बोल उठा, "मैं अभी दिये देता हूँ।" चिट्ठी और टेलिग्राम दोनों ही भेजे देता हूँ," इतना कहकर वह उठकर चला गया। मैंने मन ही मन कहा, 'भगवान्, वह खबर पा जाय!'

* * * *

होश आनेपर पहले तो मैं अपनी अवस्था अच्छी तरह समझ भी न सका। मस्तकपर हाथ ले जाकर अनुभव किया कि यह तो आईस-बेग है। आँखें मिलमिलाकर देखा कि मकानके भीतर एक खाटपर पड़ा हूँ। सामने स्टूलके ऊपर एक दीपकके पास दो-तीन दवाकी शीशियाँ और उसके पास एक रस्सीकी खाटपर कोई मनुष्य लाल चेकका रैपर शरीरपर लपेटे हुए सो रहा है। बहुत देर तक मैं कुछ भी याद न कर सका। इसके बाद, एक एक करके, जान पड़ने लगा, मानों नींदमें कितने ही स्वप्न देखे हैं। अनेक लोगोंका आना-जाना उठाकर मुझे डोलीमें डालना, मस्तक उठाकर दवाई पिलाना, ऐसे कितने ही व्यापार दिखाई पड़े।

कुछ देर बाद, जब वह मनुष्य उठकर बैठ गया तब, देखा कि कोई बंगाली सज्जन हैं, उम्र: अठारह-उन्नीससे अधिक नहीं। उस समय सिरहानेके निकटसे मृदु-स्वरमें जिसने उसको सम्बोधन किया उसका स्वर मैंने पहचान लिया।

प्यारीने अति मृदु कण्ठसे पुकारा, " बंकू, बरफको एक बार और बदल क्यों नहीं दिया बेटा ? "

लड़का बोला, " बदले देता हूँ, तुम थोड़ा-सा सो लो न माँ। डॉक्टर बाबू जब कह गये हैं कि शीतला नहीं है, तब डरने की कोई बात नहीं है माँ।"

प्यारी बोली, " अरे भइया, डॉक्टरके कहनेसे, कि डरकी कोई बात नहीं हैं, औरतोंका भय कहीं जाता है ? तुझे चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है बंकू, तू तो बरफ बदल कर सो जा,—फिर रातको मत जागना। "

बंकूने आकर बरफ बदल दिया और लौटकर वह फिर उसी खटियापर जा पड़ा। थोड़ी ही देर बाद जब उसकी नाक बजने लगी तब मैंने धीरेसे पुकारा " प्यारी ! "

प्यारीने मुँहके ऊपर झुक पड़कर सिर परके जलबिंदु आँचलसे पोंछते हुए कहा, " मुझे क्या तुम चीन्ह सकते हो ? अब कैसे हो ? कल—"

" अच्छा हूँ। कब आई ? यह क्या आरा है ? "

" हाँ आरा ही है। कल हम लोग घर चलेंगे। "

" कहाँ ? "

" पटने। सिवाय अपने घर ले जानेके, अभी क्या और कहीं, मैं तुम्हें छोड़ जा सकती हूँ ? "

" यह लड़का कौन है, राजलक्ष्मी ? "

" मेरी सौतका लड़का है। किन्तु, बंकू मेरे पेटका लड़का-सा ही है। मेरे पास रहकर ही पटना कालेजमें पढ़ता है। आज अब और बात मत करो। सो जाओ,—कल सब कहूँगी। " इतना कहकर उसने मेरे मुँहपर, हथेली रखकर मेरा मुँह बंद कर दिया।

मैं हाथ बढ़ाकर राजलक्ष्मीके दाहिने हाथको मुट्ठीमें लेकर करवट बदलकर सो रहा।

१२

जिस ज्वरसे पीड़ित होकर मैं बेहोश हो अभ्यागत हो गया था वह शीतलाका नहीं था, कुछ और ही था। डॉक्टरी शास्त्रमें निश्चयसे ही उसका कोई बड़ा भारी कठिन नाम था, परन्तु मुझे वह याद नहीं रहा। खबर पाकर प्यारी, अपने लड़के, दो नौकर और दासीको लेकर, आ उपस्थित

हुई। उसी दिन एक ठहरनेका स्थान किरायेपर लेकर मुझे उसमें स्थानान्तरित कर दिया और शहरके भले बुरे सब चिकित्सकोंको बुलाकर वहाँ इकट्ठा कर लिया। अच्छा ही किया। नहीं तो, और कोई नुकसान चाहे भले ही न होता, परन्तु 'भारतवर्ष' के* पाठक-पाठिकाओंके धैर्यकी महिमा तो संसारमें अविदित ही रह जाती!

सुबह प्यारीने कहा, "बंकू, और देरी मत कर बेटा, इसी समय एक सेकण्ड क्लासका डब्बा रिझर्व करा आ। मैं एक क्षण भी इन्हें यहाँ रखनेका साहस नहीं कर सकती।"

बंकूकी अतृप्त निद्रा उस समय भी उसके दोनों नेत्रोंमें भर रही थी; उसने उन्हें मूँदे ही मूँदे अव्यक्त स्वरमें जवाब दिया, "तुम पगला गई हो माँ ऐसी अवस्थामें क्या रोगीको यहाँसे वहाँ ले जाया जा सकता है?"

प्यारीने कुछ हँसकर कहा, "पहले तू उठ, आँख मुँहपर जल डाल, देखूँ इसके बाद यहाँ-वहाँ ले जानेकी बात समझ ली जावेगी। राजा बेटा मेरे, उठ!"

बंकू और कोई उपाय न देख, शय्या त्याग, मुँह हाथ धो, कपड़े बदल स्टेशन चला गया। उस समय भी बहुत जल्दी थी—घरमें और कोई नहीं था! धीरे धीरे पुकारा, "प्यारी!" मेरे सिरहानेकी ओर एक खटिया सटकर बिछी हुई थी। उसीपर थकावटके कारण, शायद इसी बीच, वह कुछ आँखे मूँदकर लेट गई थी। चट पट उठ बैठी और मेरे मुँहपर झुक गई। कोमल कण्ठसे उसने पूछा, "नींद खुल गई?"

"मैं तो जाग ही रहा हूँ।" प्यारीने उत्कण्ठित यत्नके साथ मेरे सिर और कपालपर हाथ फेरते फेरते कहा, "ज्वर तो इस समय बहुत कम है। आँखें मूँदकर थोड़ा-सा सोनेकी चेष्टा क्यों नहीं करते?"

"सो तो मैं बराबर ही करता हूँ प्यारी, आज ज्वरको कितने दिन हुए?"

"तेरह दिन" कहकर उसने बड़ी बूढी पुरखिनकी तरह गंभीर भावसे कहा, "देखो, लड़के-वालोंके सामने मुझे यह नाम लेकर मत पुकारा करो।

---

* श्रीकान्तका यह भ्रमण-वृत्तान्त पहले बंगालके प्रसिद्ध मासिकपत्र 'भारत-वर्ष' मे धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था।

बहुत दिनोंतक 'लक्ष्मी' कहकर पुकारा किये हो, वही नाम लेकर क्यों नहीं पुकारते?"

दो दिनसे मैं खूब होशमें था। मुझे भी सब बातें याद आ गई थीं। मैंने कहा, "अच्छा।" इसके बाद, जिस बातके कहनेके लिए बुलाया था उसे मन ही मन अच्छी तरह सजाकर कहा, "मुझे ले जानेकी चेष्टा कर रही हो, किन्तु, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं, अब और नहीं देना चाहता।"

"तो फिर क्या करना चाहते हो?"

"मैं सोचता हूँ, अब जैसा मैं हूँ, उससे जान पडता है कि तीन-चार दिनमें ही, अच्छा हो जाऊँगा! तुम लोग चाहे तो इतने दिन और ठहरकर घर चले जाओ।"

"तब तुम क्या करोगे, सुनूँ तो?"

"जो कुछ होना होगा सो हो जायगा।"

'सो हो जायगा' कहकर प्यारी कुछ हँस दी। इसके बाद सामने आकर, खाटपर एक ओर बैठकर, मेरे मुँहकी ओर देखकर, क्षण-भर चुप रहकर फिर कुछ हँसकर बोली, "तीन चार दिनमें तो नहीं, दस-बारह दिनमें यह रोग चला जायगा, यह मैं जानती हूँ; परन्तु असली रोग कितने दिनोंमें दूर होगा, सो क्या मुझे बता सकते हो?"

"असली रोग और क्या?"

प्यारीने कहा, "सोचोगे कुछ, कहोगे कुछ, और—करोगे कुछ, हमेशासे तुम्हें यही एक रोग है। तुम जानते हो कि एक महीनेके पहले मैं तुम्हें आँखोंकी ओट न कर सकूँगी,—फिर भी कहोगे 'तुम्हें कष्ट दिया, तुम जाओ' अरे ओ दयामय! मेरा यदि तुम्हें इतना अधिक दर्द है तो, और चाहे जो होओ पर,—संन्यासी तो तुम नहीं हो—संन्यासी बनकर यह क्या हंगामा खड़ा किया है! आकर देखती हूँ, तो जमीनपर फटी कथरीपर घोर बेहोशीमें पड़े हो, धूल-कीचड़में जटायें बन गई हैं, सारे अंगमें रुद्राक्षकी माला है और दोनों हाथोंमें पीतलके कड़े हैं! भैया री भैया! चेहरा देखकर रोए बिना न रह सकी!" इतना कहते कहते उमड़ा हुआ अश्रुजल उसकी दोनों आँखोंमें झलक आया। चटपट उसे हाथसे पोंछकर वह बोली, "बंकू बोला, ये कौन हैं माँ? मन ही मन बोली—तू बच्चा है, तेरे आगे वह बात क्या कहूँ भइया! ओह, वह दिन भी कैसा विचित्र था, भैया री, कभी हुए वर्षोंमें पाठशालामें हमारी चार आँखें हुई थीं! जो दुःख तुमने मुझे दिया है,

उतना दुःख दुनिया-भरमें किसीने कभी किसीको नहीं दिया होगा,—और न देगा ही। शहरमें शीतला दिखाई दी हैं,—सबको लेकर अच्छी भली भाग जा सकूँ तो जानमें जान आवे।" इतना कहकर उसने एक दीर्घ श्वास छोड़ा।

उसी रातको आरा छोड़ दिया। एक कम उम्रका डाक्टर अनेक तरहकी ओषधियाँ लेकर हम लोगोंको पटनातक पहुँचानेके लिए साथ गया।

पटना पहुँचकर बारह तेरह दिनके भीतर ही एक तरहसे मैं चंगा हो गया। एक दिन सुबह अकेला प्यारीके मकानके प्रत्येक कमरेमें घूम आया। उसका माल-असबाब देखकर मैं कुछ विस्मित हुआ। मैंने इसके पहले वैसा देखा न हो सो बात नहीं थी। चीजें सब अच्छी और कीमती थीं, यह ठीक है; परन्तु इस मारवाड़ी मुहल्लेके बीच, इन सब धनी और अल्पशिक्षित शौकीन मनुष्योंके संसर्गमें, इतनी साधारण चीज़ोंसे वह सन्तुष्ट कैसे रहती थी ? इसके पहले मैंने इस तरहके जितने घरद्वार देखे थे इनके साथ कहीं किसी भी अंशमें इसकी समानता नहीं थी। उनमें अन्दर घुसते ही विचार होता था कि इनमें मनुष्य क्षण भर भी रहते कैसे होगा ? उन मकानोंके झाड़ फानूस, चित्र दिवालगीरी, आइना और ग्लास-केसोंमें आनन्दके बदले आशंका ही उत्पन्न होती थी,—सहज श्वास प्रश्वास तकके लिए भी, मालूम होता था कि, अवकाश न मिलेगा।—बहुतसे लोगोंकी बहुविध कामना-साधनाकी उपहार-राशि इस तरह ठसाठस एकके ऊपर एक भरी हुई नजर आती थी कि देखते ही ऐसा मालूम होता था कि इन अचेतन वस्तुओंके समान ही उनके अचेतन दाता भी मानों इस मकानके भीतर जरा-सी जगहके लिए ऐसी ही भीड़ करके परस्पर एक दूसरेके साथ ठेलमठेल संघर्ष कर रहे हैं। किन्तु, इस मकानके किसी भी कमरेमें आवश्यकीय चीजोंके अतिरिक्त एक भी फालतू चीज नज़र नहीं आई। और जो भी चीजें नजर आईं वे स्वयं गृहस्वामिनीके कामके लिए लाई गई हैं, और उसकी निजी इच्छा और अभिरुचिको लाँघकर, और किसीकी भी प्रलुब्ध अभिलाषासे अनधिकार-प्रवेश करके जगह छेके नहीं बैठी हैं यह बात सहजमें ही मालूम हो गई। और भी एक बातने मेरी दृष्टिको आकर्षित किया। इतनी सुप्रसिद्ध 'बाईजी' के घरमें गाने बजानेका कहीं कोई आयोजन भी नहीं है। इस कमरे, उस कमरेमें घूमता हुआ दूसरी मंजिलके एक कोनेके कमरेके सामने आकर मैं खड़ा हो गया। यह बाईजीका खुदका शयन-मन्दिर है, यह उसके भीतर झाँकते ही मालूम

हो गया। परन्तु मेरी कल्पनाके साथ इसका कितना अन्तर था! जो कुछ सोच रखा था, उसमेंका कुछ भी नहीं था। मेज सफेद पत्थरकी थी, दीवालें दूधकी तरह सफेद चमचमा रहीं थीं। कमरेके एक किनारे एक छोटेसे तख्तके ऊपर बिस्तर बिछे थे, एक लकड़ीकी अरगनीपर कुछ वस्त्र टँके थे और उसके पीछे एक लोहेकी आलमारी थी। और कहीं कुछ नहीं था। जूते पहिने हुए अन्दर प्रवेश करनेमें भी मानों मुझे एक तरहके सङ्कोचका अनुभव हुआ, उन्हें चौखटके बाहर खोलकर मैंने भीतर प्रवेश किया। मालूम होता है, थकावटके कारण ही उसकी शय्यापर मैं जाकर बैठ गया था। यदि कमरेमें और कोई वस्तु बैठनेके लिए होती तो मैं उसीपर बैठता। सामनेकी ओर खुली हुई खिड़कीको ढँके हुए एक बड़ा नीमका पेड़ था। उसीमेंसे छन छन कर हवा आ रही थी। उस ओर देखता हुआ मैं हठात् जैसे कुछ अन्यमनस्क-सा हो गया था। एक मीठी आवाजसे चौंककर मैंने देखा, गुन-गुन गाना गाती गाती प्यारी कमरेमे घुस आई है। वह गंगाजीमें स्नान करने गई थी और अब वहाँसे लौटकर अपने कमरेमे गीले कपडे उतारने आई है। उसने इस ओर एक दफा भी नहीं देखा है। उसके सीधे अरगनीके पास जाकर सूखे वस्त्रपर हाथ डालते ही मैंने व्यक्त होकर आवाज दी, "घाटपर कपड़े लेकर क्यों नहीं जातीं?"

प्यारीने चौंककर हँस दिया। बोली, "एँ! चोरकी तरह मेरे कमरेमें घुसे बैठे हो? नहीं नहीं, बैठे रहो, बैठे रहो,—जाओ मत। मैं उस कमरेमेंसे कपड़े बदल आती हूँ।" इतना कहकर वह हलके पैरों गरदकी धोती हाथमें लेकर बाहर चली गई।

पाँचेक मिनटके बाद वह प्रसन्न मुखसे लौट आई और हँसकर बोली, "मेरे कमरेमें तो कुछ भी नहीं है; तब क्या चुराने आये हो, बोलो तो? मुझे तो नहीं?" मैं बोला, "तुमने क्या मुझे ऐसा अकृतज्ञ समझ रखा है? तुमने मेरे लिए इतना किया, और अन्तमें तुम्हारी ही चोरी करूँ, मैं इतना लोभी नहीं हूँ।"

प्यारीका मुँह मलीन हो गया। बोलते समय मैंने नहीं सोचा था कि इस बातसे उसे व्यथा पहुँचेगी। उसे व्यथा पहुँचानेकी न तो मेरी इच्छा ही थी, और न ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक ही था। लाज तौलने तब तब कि

मैंने दो एक दिनमें वहाँसे प्रस्थान करनेका संकल्प कर लिया था। बिगड़ी हुई बातको किसी तरह बना लेनेकी गरजसे मैंने जबर्दस्ती हँसकर कहा, " अपनी वस्तुकी भी क्या कोई चोरी करने जाता है ? तुममें इतनी भी बुद्धि नहीं है ? "

किन्तु इतने सहजमें उसे भुलाया न जा सका। उसने मलीन मुखसे कहा, " तुम्हें और अधिक कृतज्ञ होनेकी जरूरत नहीं; दया करके तुमने जो उस समय खबर लगा दी, मेरे लिए वही बहुत है। "

उसके शुद्ध स्नात, प्रसन्न हँसते चेहरेको इस धूपसे उज्ज्वल प्रभात-कालमें ही मैंने म्लान कर दिया, यह देखकर हृदयमें एक वेदना-सी जाग उठी। उस थोड़ी-सी हँसीके भीतर जो एक माधुर्य था उसके नष्ट होते ही हानि सुस्पष्ट हो उठी। उसे वापिस लौटानेकी आशासे मैं उसी क्षण अनुतप्त स्वरमें बोल उठा, "लक्ष्मी, तुम्हारे निकट तो कुछ भी छिपा नहीं है—सब कुछ तो जानती हो। तुम वहाँ नहीं गई होती तो मुझे उसी धूल और रेतीके ऊपर ही मर जाना पड़ता, कोई उतनी दूर जाकर एक दफा अस्पताल ले जानेकी भी चेष्टा न करता। वह जो तुमने पत्रमें लिखा था कि, ' सुखके दिनोंमें न सही तो दुःखके दिनोंमें ही मुझे याद कर लेना,' यह बात मुझे मेरी आयु बाकी थी इसीलिए याद आ गई, यह मैं इस समय अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूँ। "

" कर रहे हो ? "

" निश्चयसे। "

" तो फिर कहो कि मेरे ही लिए तुमने पुनः प्राण पाये हैं ! "

" इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। "

" तो क्या मैं उनपर दावा कर सकती हूँ, बोलो ? "

" कर सकती हो। परन्तु मेरे प्राण इतने तुच्छ हैं कि उनपर तुम्हारा लोभ होना ही उचित नहीं है। "

प्यारीने इतनी देर बाद कुछ हँसकर कहा, " फिर भी गनीमत है कि अपने मूल्यको इतने दिनोंमें तुमने समझ तो लिया। " किन्तु दूसरे ही क्षण गंभीर होकर कहा, ' दिल्लगी रहने दो, बीमारी तो एक तरहसे अच्छी हो गई, अब जानेकी कब सोच रहे हो ? "

उसके प्रश्नको अच्छी तरह न समझ सका। मैंने गंभीर होकर कहा, " कहीं जानेकी तो मुझे जल्दी है नहीं। इसलिए यही सोचता हूँ, और भी कुछ दिन ठहर जाऊँ। "

प्यारी बोली, "किन्तु मेरा लड़का आजकल अक्सर बाँकीपुरसे आया करता है। बहुत दिन ठहरोगे तो शायद वह कुछ खयाल करने लगे।"

मैंने कहा, "करने दो न। उससे डरकर तो कुछ तुम चलती नहीं? ऐसा आराम छोड़कर यहाँसे शीघ्र ही तो मैं कहीं जाता नहीं।"

प्यारीने विषण्ण मुखसे कहा, "यह भी कहीं हो सकता है?" इतना कहकर वह एकाएक वहाँसे उठकर चल दी।

दूसरे दिन शामके वक्त मैं अपने कमरेके पश्चिमकी तरफके बरामदेमें एक इजीचेअरपर लेटा हुआ सूर्यास्त देख रहा था। इसी समय बंकू आ उपस्थित हुआ। अभीतक उसके साथ अच्छी तरह बातचीत करनेका सुयोग नहीं मिला था। एक चेअरपर बैठनेका इशारा करके मैं बोला, "बंकू, क्या पढ़ते हो तुम?"

लड़का अत्यन्त सीधा-सादा भलामानुस था। बोला, "गये साल मैंने एन्ट्रेन्स पास किया है।"

"तो अब बांकीपुर कालेजमें पढ़ते हो?"

"जी हाँ।"

"तुम कितने भाई बहिन हो?"

"भाई और नहीं है। चार बहिनें हैं।"

"उनका ब्याह हो गया?"

"जी हाँ, मैंने ही उन्हें ब्याह दिया है।"

"तुम्हारी अपनी माँ जीती हैं?"

"जी हाँ, वे देशके ही मकानमें रहती हैं।"

"तुम्हारी ये माँ, कभी तुम्हारे देशके मकानमें गई हैं?"

"बहुत बार, अभी तो पाँच छः ही महीने हुए, आई हैं।"

"इससे देशमें कोई गड़बड़ नहीं मचती?"

बंकू कुछ देर चुप रहकर बोला, "मचती रहे। हम लोगोंको 'जातिसे अलग' कर रखा है, सो इससे कुछ हम अपनी माँको छोड़ थोड़े ही सकते हैं? और ऐसी माँ भी कितने लोगोंको नसीब होती है!"

मुँहमें आया कि पूछूँ, "माँके ऊपर इतनी भक्ति कैसे हुई?" किन्तु दबा गया।

बंकू कहने लगा, "अच्छा आप ही कहिए, गाने बजानेमें क्या कोई दोष है? हमारी माँ केवल वही करती हैं। कुछ पराई निन्दा, पराई चर्चा तो

करती नहीं ? बल्कि, गाँवमें जो लोग हमारे परम शत्रु हैं उन्हींके आठ दस लड़कोंको पढाई-लिखाईका खर्च देती हैं; शीत कालमें कितने ही लोगोंको कपड़े देती हैं, कम्बल देती हैं, यह क्या बुरा करती हैं ? ”

मैंने कहा, “ नहीं, वह तो बहुत ही भला काम है । ”

बंकूने उत्साहित होकर कहा, “ तब कहिए, हमारे गाँवके समान पाजी गाँव क्या और कोई है ? यही देखो न उस वर्ष ईंटे पकाकर हम लोगोंने मकान बनवाया । गाँवमें पानीकी भयानक तकलीफ देखकर माँ मेरी माँसे बोलीं, जीजी, और कुछ रुपये खर्च करके ईंटें पकानेके भट्टेकी जगह ही एक तालाब ही न बनवा दिया जाय ? तीन-चार हजार रुपये खर्च करके तालाब बनवा दिया । घाट भी बँधवा दिया । किन्तु, गाँवके लोगोंने माँको उस तालाबकी प्रतिष्ठा न करने दी । ऐसा बढ़िया पानी—किन्तु कोई पीएगा नहीं, कोई छुएगा नहीं, ऐसे बदजात आदमी हैं । केवल इसी ईर्षाके मारे सब मरे जाते हैं कि हमारा मकान पक्का बन गया । आप समझे न ? ”

मैंने अचरजसे कहा, “ कहते क्या हो जी, पानीका ऐसा दारुण कष्ट भोगा करेंगे, फिर भी ऐसे पानीका व्यवहार न करेंगे ? ”

बंकूने जरा-सा हँसकर कहा, “ वही तो; किन्तु वह क्या अधिक समय चल सकता है ? पहले साल तो डरके मारे किसीने पानी छुआ नहीं, किन्तु अब छोटी जातिके सभी लोग लेते हैं और पीते हैं,—ब्राह्मण और कायस्थ भी चैत्र वैशाखके महीनोंमें छुक-छिपकर पानी ले जाते हैं,—परन्तु फिर भी उन्होंने तालाबकी प्रतिष्ठा नहीं करने दी । यह क्या माँके लिए कम कष्टकी बात है ? ”

मैंने कहा, “ अपनी नाक काटके पराया अपशकुन करनेकी जो कहावत सुनी जाती है, वह यही है । ”

बंकू जोरसे बोल उठा, “ ठीक यही बात है ; ऐसे गाँवमें अलहदा एक घरसे रहना आपके रूपमें भी वरदानके समान है । आपकी क्या राय है ? ” जवाबमें मैंने भी केवल हँसकर सिर हिला दिया । हाँ या नहीं, कुछ स्पष्ट नहीं कहा । परन्तु इस बंकूके उत्साहमें बाधा नहीं पड़ी । मैंने देखा कि लड़का अपनी विमाताको सचमुच ही प्यार करता है । अनुकूल श्रोता पाकर भक्तिके आवेगमें वह देखते देखते पागल हो उठा और उसके लगातारके स्तुति-वादने मुझे करीब करीब व्याकुल कर दिया ।

हठात् एकाएक उसे होश आया कि इतनी देरमे मैंने उसकी एक भी बातमें योग नहीं दिया। तब वह कुछ अप्रतिभ-सा होकर किसी तरह प्रसंगको दबा देनेकी गरजसे बोला, " आप यहाँपर और कुछ दिन हैं न ? "

मैंने हँसकर कहा, " नहीं, कल सुबह ही चला जाऊँगा।"

" कल ही ? "

" हाँ कल ही।"

" परन्तु आपका शरीर तो अभीतक सबल हुआ नहीं। क्या आप समझते हैं कि बीमारी एकबारगी चली गई ? "

मैंने कहा, " सुबह तक तो मैं यही समझता था कि बीमारी गई, परन्तु अब सोचता हूँ कि नहीं। आज दोपहरसे ही मेरा सिर दुख रहा है।"

" तो फिर क्यो इतने शीघ्र जाते हैं ? यहाँ तो आपको किसी प्रकारका कष्ट है नहीं।" इतना कहकर वह लड़का चिन्तित मुखसे मेरी ओर देखने लगा।

मैंने भी कुछ देर चुप हो, उसके चेहरेकी ओर देखते हुए, उसके मुँहपर उसके भीतरके यथार्थ भाव पढनेकी कोशिश की। जितना भी मैंने उसे पढा उससे उसकी ओरसे सत्य-गोपनकी कोई भी चेष्टा होती हुई मैं अनुभव नहीं कर सका। इसपर लड़का लजा अवश्य गया और उस लज्जाको ढँकनेकी भी उसने कोशिश की। वह बोला, " आप यहाँसे मत जाइए।"

" क्यों न जाऊँ, बताओ ? "

" आपके रहनेसे माँ बड़े आनन्दसे रहती हैं।" यह कह तो दिया,—पर इससे उसका मुँह लाल हो गया। वह चटसे उठकर चल दिया। मैंने देखा, लड़का अत्यन्त भोला और सरल प्रकृतिका जरूर है, परन्तु बेवकूफ नहीं है। प्यारीने कहा था कि " और अधिक दिन रहोगे तो मेरा लड़का क्या खयाल करेगा ? " इस बातके साथ उस लड़केके व्यवहारकी आलोचनाका अर्थ भी मानों मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ ऐसा मुझे मालूम पड़ा; और मातृत्वकी इस एक नई तसवीरके दृष्टिगोचर होनेमे मानों मैंने एक नूतन ज्ञान संपादित किया। प्यारीके हृदयकी एकाग्र वासनाका अनुमान करना हमारे लिए कठिन नहीं है और वह संसारमें सब ओरसे सब तरह स्वाधीन है, यह कल्पना करना भी, मैं समझता हूँ कि, पाप नहीं है। फिर भी, उसने जिस मुहूर्तसे एक दरिद्र बालकके मातृ-पदको स्वेच्छासे ग्रहण किया है तभीसे मानों अपने दोनों पैरोंको डोरेकी साँकलोंसे जकड़ लिया है। वह स्वयं

चाहे जो हो परन्तु उसे, अपनेतईं माताका सम्मान तो अब देना ही होगा! उसकी असंयत कामना, उच्छृंखल प्रवृत्ति, उसे चाहे जितने अधःपातकी ओर क्यों न ठेलना चाहे, परन्तु यह बात भी तो उससे भूली नहीं जाती कि वह एक लड़केकी माँ है! और उस सन्तानकी भक्ति-नत दृष्टिके सामने तो वह उस माँको किसी तरह भी अपमानित नहीं होने देगी! उसके विह्वल यौवनके लालसामत्त वसन्तके दिनोंमें प्यारके साथ किसने उसका नाम 'प्यारी' रखा था यह तो मैं नहीं जानता; किन्तु, यह नाम भी वह अपने लड़केके सामने छुपा रखना चाहती है, यह बात मुझे याद आ गई।

देखते देखते सूर्य अस्त हो गया। उस ओर ताकते ताकते मेरा सारा अन्तःकरण मानों पिघलकर लाल हो उठा। मन ही मन बोला कि राजलक्ष्मीको अब तो मैं नीची निगाहसे देख नहीं सकता। हम दोनोंका बाहरी बर्ताव इतने दिनोंतक चाहे जितने बड़े स्वातंत्र्यकी रक्षा करते हुए क्यों न चलता रहा हो, स्नेह चाहे जितना माधुर्य क्यों न ढाल दे, परन्तु, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि दोनोंकी कामनाएँ एकत्र सम्मिलित होनेके लिए प्रत्येक क्षण दुर्निवार वेगके साथ एक दूसरेकी ओर दौड़ रही हैं। परतु आज मैंने देखा कि यह असंभव है। एकाएक 'बंकूकी माँ' आकाशभेदी हिमालय पर्वतकी नाईं रास्ता रोककर राजलक्ष्मी और मेरे बीच आकर खड़ी है। मन ही मन मैंने कहा, कल सुबह ही तो मैं यहाँसे जा रहा हूँ—किन्तु तब कहीं ऐसा न हो कि मनमें फायदे-नुकसानका हिसाब लगाने जाकर कुछ बचा रखनेकी चेष्टा करने लगूँ। मेरा यह जाना अन्तिम जाना ही हो। देख न पानेका बहाना करके एक अति सूक्ष्म वासनाका बन्धन मैं यहाँ न रख जाऊँ जिसका सहारा लेकर फिर कभी मुझे यहाँ आकर उपस्थित होना पड़े!

अन्यमनस्क होकर उसी जगह बैठा हुआ था। संध्याके समय धूपदानीमें धूप डालकर उसे अपने हाथोंमें लिये हुए राजलक्ष्मी उसी बरामदेमेंसे और एक कमरेमें जा रही थी कि चौंककर खड़ी हो गई और बोली, "सिर दर्द कर रहा है, ओसमें क्यों बैठे हुए हो? कमरेमें जाओ।"

मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा, "अवाक् कर दिया तुमने लक्ष्मी! ओस यहाँ कहाँ है?"

राजलक्ष्मी बोली, "ओस न सही, ठण्डी हवा तो चल रही है। वही क्या अच्छी होती है?"

"नहीं, यह तुम्हारी भूल है। ठण्डी गरम कोई हवा नहीं चल रही है।" राजलक्ष्मी बोली, "मेरी तो सब भूल ही भूल है, परन्तु सिर दर्द कर रहा है यह तो मेरी भूल नहीं है,—यह तो सत्य है न? कमरेमें जाकर थोड़ी देर सो रहो न? रतन क्या करता है? वह क्या थोड़ा ओ' डिकोलन सिरमें नहीं लगा सकता? इस घरके नौकर चाकरोंके समान नवाब नौकर पृथ्वीमें और कहीं नहीं हैं।" इतना कहकर राजलक्ष्मी अपने कामपर चली गई।

रतन जब घबराकर और लज्जित हो ओ'डिकोलन, पानी आदि लेकर हाजिर हुआ और अपनी भूल के लिए बार बार अनुताप प्रकट करने लगा तब मुझसे हँसे बिना न रहा गया।

रतनने इससे साहस पाकर धीरे धीरे कहा, "इसमें मेरा दोष नहीं है बाबू, यह क्या मैं नहीं जानता? परन्तु माँसे यह कहनेका उपाय ही नहीं कि जब तुम्हें गुस्सा आता है, तब झूठ-मूठ ही घर भरके लोगोंके दोष देखने लगती हो।"

कुतूहलसे मैंने पूछा, "गुस्सा क्यों है?"

रतन बोला, "यह जाननेका क्या कोई उपाय है? बड़े लोगोंको गुस्सा, बाबूजी, यों ही आ जाता है और यों ही चला जाता है। उस समय यदि अपना मुँह छिपाकर न रहा जा सके, तो नौकर चाकरोंके प्राण गये समझो।" दरवाजेके समीपसे एकाएक सवाल आया, "तब तुम लोगोंका मैं सिर काट लेती हूँ, क्यों रतन? और फिर बड़े लोगोंके घरमें यदि इतनी मुसीबत है तो और कहीं क्यों नहीं चला जाता?"

मालिकके सवालसे रतन कुण्ठित हो नीचा सिर किये चुपचाप बैठा रहा। राजलक्ष्मीने कहा, "तेरा काम क्या है? उनका सिर दर्द करता है, यह बंकूके मुँहसे सुनकर मैंने तुझसे कहा। इसीने अब रातके आठ बजे यहाँ आकर मेरी बड़ाई कर रहा है। कलसे कहीं और नौकरी खोज लेना, अब यहाँ काम नहीं है। समझा!"

राजलक्ष्मीके चले जानेपर रतन ओ' डिकोलन पानी मिलाकर मेरे सिरपर रखकर हवा करने लगा। राजलक्ष्मीने उसी क्षण लौटकर पूछा, "क्या कल सुबह ही घर जाओगे?" मेरा जानेका इरादा जरूर था, परन्तु घर लौट जानेका नहीं। इसीलिए सवालका जवाब मैंने और ही तरहसे दिया, "हाँ, कल सुबह ही जाऊँगा।"

"सुबह कितने बजेकी गाड़ीसे जाओगे ?"

"सुबह ही निकल पड़ूँगा,—फिर जो गाड़ी मिल जावे।"

"अच्छा। न हो तो टाइमटेबुलके लिए किसीको स्टेशन भेज देती हूँ।" इतना कहकर वह चली गई।

इसके बाद यथासमय रतनने काम समाप्त करके प्रस्थान किया। नीचेसे नौकर चाकरोंका शब्द आना बन्द हो गया। मैं समझ गया कि सभीने इस समय निद्राके लिए शय्याका आश्रय ग्रहण कर लिया है।

मुझे किन्तु किसी तरह नींद नहीं आई। घूम फिरकर केवल एक ही बात बार बार मनमें आने लगी कि प्यारी नाराज क्यों हो गई? ऐसा मैंने क्या किया है जिससे कि वह मुझे रवाना करनेके लिए अधीर हो उठी है? रतनने कहा था कि बड़े आदमियोंको क्रोध यों ही आ जाया करता है। यह बात और और बड़े आदमियोंके सम्बन्धमें ठीक उतरती है या नहीं, सो नहीं मालूम, परन्तु प्यारीके सम्बन्धमें तो किसी तरह भी ठीक नहीं उतरती। वह अत्यंत संयमी और बुद्धिमती है, इसका परिचय मुझे बहुत बार मिल चुका है: और मुझमें भी, और बुद्धि चाहे भले ही न हो, प्रवृत्तिके संबंधमें संयम उससे कम नहीं है,—मैं तो समझता हूँ किसीसे भी कम नहीं है। मेरे हृदयमें चाहे कुछ भी क्यों न हो, उसे मुँहसे बाहर निकालना, अत्यन्त विकारकी बेहोशीमें भी मैं अपने लिए सम्भव नहीं मानता। व्यवहारमें भी किसी दिन ऐसा किया हो, सो भी मुझे याद नहीं। खुदके उसके किसी कार्यके कारण लज्जाका कुछ कारण घटित हुआ हो, वह तो अलग बात है; परंतु मेरे ऊपर गुस्सा होनेका कोई कारण नहीं है। इसलिए, विदाके समयका उसका यह उदासीन भाव मुझे जो वेदना देने लगा, वह अकिंचित्कर नहीं था।

बहुत रात बीते एकाएक तन्द्रा टूट गई और मैंने आँख खोलकर देखा कि राजलक्ष्मी गुपचुप कमरेमें आई और उसने टेबलके ऊपरका लेम्प बुझाकर उसे दरवाजेके कोनेकी आड़में रख दिया। खिड़की खुली हुई थी, उसे बन्द करके, मेरी शय्याके समीप आकर क्षण-भर चुप खड़ी रहकर उसने कुछ सोचा। इसके बाद मशहरीके भीतर हाथ डालकर उसने पहले मेरे सिरका उत्ताप अनुभव किया। इसके बाद कुरतेके बटन खोलकर वह छातीके उत्तापको बार बार देखने लगी! एकान्तमें आनेवाली नारीके इस गुप्त कर-स्पर्शसे पहले तो मैं कुण्ठित और लज्जित हो उठा, परन्तु

उसी समय मनमें आया कि रोगकी बेहोशीकी हालतमें सेवा करके जिसने चैतन्यको लौटाकर ला दिया, उसके नजदीक मेरे लिए लाज करनेकी बात ही कौन सी है ! इसके बाद उसने बटन बंद कर दिये, ओढ़नेका कपड़ा खिसक गया था उसे गलेतक उढ़ा दिया, अन्तमें मसहरीके किनारोंको अच्छी तरह ठीक करके अत्यन्त सावधानीसे किवाड़ बन्द करके वह बाहर चली गई।

मैंने सब कुछ देखा और सब कुछ समझा। जो छिपे छिपे आई थी उसे छिपे छिपे ही जाने दिया। परन्तु इस निर्जन आधी रातको वह अपना कितना मेरे निकट छोड़ गई, सो वह कुछ भी न जान सकी। सुबह जब नींद खुली तब बुखार चढ़ा हुआ था। आँखें और मुँह जल रहे थे, सिर इतना भारी था कि शय्या त्याग करते क्लेश मालूम हुआ। फिर भी जाना ही होगा। इस घरमें मुझे अब अपने ऊपर जरा भी विश्वास नहीं था, न जाने वह किस क्षण धोखा दे जाय। फिर भी डर मुझे अपने लिए उतना नहीं था। परन्तु, राजलक्ष्मीके लिए ही मुझे राजलक्ष्मीको छोड़ जाना होगा, इसमें अब जरा-भी आनाकानी करनेसे काम न चलेगा।

मन ही मन सोच कर देखा कि उसने अपने विगत जीवनकी कालिमाको बहुत कुछ धोकर साफ कर डाला है। आज अनेक लड़के बच्चे माँ माँ कहते हुए उसे चारों ओरसे घेरे खड़े हैं। इस भक्ति और प्रीतिके आनन्द-धामसे उसे अपमानके साथ छीनकर बाहर निकाल लाऊँ?—इतने बड़े प्रेमकी क्या यही सार्थकता अन्तमें मेरे जीवनके अध्यायमें चिरकालके लिए लिपिबद्ध हो रहेगी?

प्यारीने कमरेमें प्रवेश करके पूछा, "इस समय तबीयत कैसी है?"

मैं बोला, "ऐसी कुछ विशेष खराब नहीं है। जा सकूँगा।"

"आज न जानेसे क्या न चलेगा?"

"नहीं, आज तो जाना ही चाहिए।"

"तो, फिर घर पहुँचते ही खबर देना। नहीं तो हम लोगोंको बहुत चिन्ता होगी।"

उसके अविचलित धैर्यको देखकर मैं मुग्ध हो गया। उसी क्षण सजग होकर बोला, "अच्छा, मैं घर ही जाऊँगा और पहुँचते ही तुम्हें खबर दूँगा।"

प्यारीने कहा, "जरूर देना। मैं भी चिट्ठी लिखकर तुमसे [illegible], बातें पूछूँगी।"

जब मैं बाहर पालकीमे बैठने जा रहा था तब देखा कि दूसरे मंजिलके बरामदेमें प्यारी चुपचाप खड़ी है। उसकी छातीके भीतर क्या हो रहा है, सो उसका मुँह देखकर मैं न जान सका।

मुझे अपनी अन्नदा जीजी याद आ गई। बहुत समय पहले एक अन्तिम दिन वे भी मानों ठीक ऐसी ही गम्भीर, ऐसी ही स्तब्ध होकर खड़ी थीं। उस समयकी उनकी दोनों करुण ऑखोंकी दृष्टिको मैं आज भी नहीं भूला हूँ; परन्तु उस दृष्टिमें निकटवर्ती जुदाईकी कितनी बड़ी व्यथा घनीभूत हो रही थी सो मैं उस समय नहीं पढ सका था। क्या जानूँ, आज भी उसी तरहका कुछ उन दोनों निविड़ काली ऑखोंमें है या नहीं।

उसॉस छोड़कर मैं पालकीमें जा बैठा। देखा कि बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, दूर भी ठेल देता है। छोटे-मोटे प्रेमके लिए यह साध्य ही नहीं था कि वह इस सुखैश्वर्यसे भरे-पूरे स्नेह-स्वर्गसे मुझे, मङ्गलके लिए, कल्याणके लिए, एक डग भी आगे बढाने देता। कहार पाल्की लेकर स्टेशनकी ओर जल्दीसे चल दिये। मन ही मन मैं बारंबार कहने लगा कि लक्ष्मी दुःख मत करना। यह अच्छा ही हुआ कि मैं यहाँसे चल दिया। तुम्हारा ऋण इस जीवनमें चुकानेकी शक्ति तो मुझमें नहीं है। परतु जिस जीवनको तुमने दिया है, उस जीवनका दुरुपयोग करके अब मैं तुम्हारा अपमान न करूँगा,—तुमसे दूर रहते हुए भी मैं यह संकल्प सदा अक्षुण्ण रखूँगा।

